प्रकाशक—
पं० शिवशंकर मिश्र
सञ्चालक—
सरस्वती सदन
१२।१ चोरबागान लेन, कलकत्ता।

पुस्तक मंगानेका पता—
पाठक एण्ड कम्पनी,
१२।१ चोरबागान लेन, कलकत्ता।

वक्तव्य

जनन-विज्ञान वहुत ही उपयोगी विषय है। प्रत्येक मनुष्यको इसका ज्ञान होना परमावश्यक है, क्योंकि सन्तानोत्पत्ति हमलोगोका एक तरहसे नित्यकर्म हो पड़ा है। आहारकी चिन्तासे निवृत्त होनेके वाद प्रत्येक मनुष्यका हृदय सन्तानकी आवश्यकता अनुभव करता है और वह सन्तानोत्पादनके कार्यमें प्रवृत्त होता है। हम और आप सभी यह काम करते हैं, परन्तु करनेका ठीक ठीक तरीका नहीं जानते। हमारी स्त्रियां गर्भधारण करती हैं, परन्तु उन्हें गर्भाधारण करना नहीं आता। गर्भ रहनेके वाद किस तरह गर्भ रक्षा करनी चाहिये, किस प्रकारके आचार विचार द्वारा सन्तानको हृष्टपुष्ट और सच्चरित्र वनाना चाहिये —यह सव हम नहीं जानते। हम रोज जिस रास्तेपर चलते हैं, वह रास्ता नहीं जानते। ऐसी अवस्थामें यदि हम पथ-भ्रष्ट हो जायँ—यदि राह भूलकर किसी खंदकमें जा गिरे, यदि कोई दस्युदल हमें लूट ले, या हमारा सर्वनाश हो जाय, तो क्या आश्चर्य है? सन्तान-शास्त्रकी वाते न जाननेके ही

कारण हमलोग जवानीमे बूढ़े हो जाते हैं, हमारी स्त्रियां नाना प्रकारकी व्याधियोंसे पीड़ित रहती हैं और हमारे यहां निकम्मी सन्तान उत्पन्न होती है। जब हम स्त्री पुरुषोंको इस अज्ञानतापर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें यही कहना पड़ता है, कि उनकी अज्ञानताको देखते हुए उन्हें जिन जिन विपत्तियों और कठिनाइयोका सामना करना पड़ता है, वह कुछ नहीं है। जहां अज्ञानताका इतना अन्धकार व्याप्त हो, वहां यदि एक ही दिनमे प्रलय हो जाय, तो किञ्चित भी आश्चर्य न करना चाहिये। अपनी अज्ञानताके कारण नाना प्रकारके अनर्थ करते हुए भी हम, हमारी स्त्रियां और हमारे बच्चे किसी तरह जी रहे हैं यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है।

खैर, जनन-विज्ञानकी उपयोगिताके सम्बन्धमे दो मत नहीं हो सकते। यह विषय प्रत्येक स्त्री पुरुष—खासकर उन स्त्री पुरुषोंके लिये जो माता पिताके पूज्य पदपर अधिष्ठित हो चुके हों, होने जा रहे हों या होना चाहते हों—गीताके समान मनन करने योग्य है। विद्वान और समझदार मनुष्य इसकी उपयोगिता और उपकारिता स्वीकार किये विना नहीं रह सकते। भविष्यमें वह लोग भी स्वीकार करेंगे, जिन्हे इसके अध्ययनसे यत्किञ्चित भी लाभ होगा।

परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दीमे इस विषयका साहित्य नहींके बराबर है। इच्छा करनेपर भी लोगोंको इस विषयकी

वक्तव्य

पुस्तकें पढ़नेको नहीं मिलतीं। हम इस आवश्यकताका अनुभव कर दाम्पत्य-ग्रन्थावली प्रकाशित कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसीका दूसरा पुष्प है। इसे हमने हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला और अंगरेजीकी अनेक पुस्तकोंका अध्ययन करनेके बाद लिखा है, क्योंकि यह एक प्रकारसे डाक्टरी विषय है और हम कोई वैद्य या डाक्टर नहीं हैं, इसलिये बिना अध्ययनके इसका प्रणयन हमारे लिये असम्भव था।

हमने इस विषयके निरूपणमें समाज और लोक-रुचि-विरुद्ध बातोंको स्थान नहीं दिया। जहांतक हो सका, शिष्ट शब्दोंसे काम लिया है। पुस्तकका लेख्य विषय वैज्ञानिक और डाक्टरीका होते हुए भी उन गहन बातोंको इसमें स्थान नही दिया, जिन्हें साधारण पाठक आसानीसे समझ न सकें, क्योंकि यह पुस्तक डाक्टर या वैज्ञानिकोंके लिये नहीं, बल्कि साधारण पाठकोंके लिये लिखी गयी है। जहांतक हो सका, हमने इसमे किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रहने दी, फिर भी दृष्टिदोष या मेरे अध्ययनकी कमीके कारण जो त्रुटियां रह गयी हों, उन्हें दूर करनेके लिये मैं सदैव तैयार रहूंगा। आशा है कि पाठक महोदय और विद्वान बन्धु पुस्तक पढ़नेके बाद मुझे आवश्यक सूचना या सलाह देंगे और इस कृतिको अपनाकर मुझे उत्साहित करेंगे।

—लेखक

विषय-सूची

विषय-सूची

३—सन्तान समस्या।

४—वन्ध्यत्व और नपुंसकत्व।

५—मनचाही सन्तान।

विषय-सूची

विषय-सूची

विषय-सूची

विषय-सूची

विषय-सूची

१९—प्रसवकी द्वितीयावस्था।

२०—प्रसवकी तृतीयावस्था।

२१—जोड़ बच्चे।

विषय-सूची

विषय-सूची

चित्र-सूची

जनन-विज्ञान

विवाहकी आवश्यकता

यह संसार प्रकृतिका रचा हुआ एक मनोहर उद्यान है। उद्यानकी शोभा तबतक नहीं होती, जबतक उसमे भिन्न-भिन्न प्रकारके, अनेकानेक पुष्प अथवा फल-वृक्ष न हो। प्रकृतिने अपने उद्यानकी सजावटके लिये इस बातपर पूरा पूरा ध्यान रक्खा है, कि उसमें हर जगह नवीनता दिखाई दे। समस्त सृष्टि-सौन्दर्यको देख डालिये—हर जगह नवीनता मिलेगी और प्रत्येक स्थलपर एक अभिनव सौन्दर्य दिखाई देगा। इस बातका सबसे

ज्वलन्त प्रमाण यह है, कि किसी वृक्ष, पौधे, फल, फूल, पत्ते अथवा मनुष्य पर दृष्टि डालिये—वे कभी एक समान न दिखाई देंगे, उनमें कुछ न कुछ अन्तर अवश्य मिलेगा। यही प्रकृतिके उद्यानकी सर्वश्रेष्ठ विचित्रता, यही सजावट है; परन्तु प्रकृतिने इस विभिन्नताको उत्पन्न करनेके साथ ही एक ऐसा भाव भी प्रत्येक प्राणीमें उत्पन्न कर दिया है, कि वह अपना एक साथी चाहता है, एक हृदय किसी दूसरे हृदयको अपनानेके लिये सदा लालायित रहता है—सदा ही इसकी खोज किया करता है। जड़ पदार्थमे इस नियमके प्रचलनके सम्बन्धमें कोई जबर्दस्त प्रमाण न मिलने पर भी प्राणी-मात्रमे तो यह नियम सरलता-पूर्वक सब जगह देखा जाता है, कि हृदय किसीकी खोज कर रहा है। अपने मनकी प्रसन्नता प्रकट करनेके लिये, अपने हृदयका भाव व्यक्त करनेके लिये, अपने सुख दुःखका साझीदार बनानेके लिये एक लालसा हृदयमे अनवरत जागरित रहती है, और इसी लिये मनोभावोंका वेग, हृदय-तंत्रोंकी आवाज सर्वदा अपने अनुकूल ही कोई चीज खोजा करती हैं और जबतक वह चीज नहीं मिल जाती, तबतक वह अपनेको पूर्ण नहीं समझती। यह अपूर्णता कैसे दूर हो सकती है—इस प्रश्नको हल करनेके लिये ही विवाहित

जीवनपर दृष्टि डालनेकी आवश्यकता पड़ती है और तभी विवाहका पूरा पूरा मतलब समझ पड़ता है।

तब, प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि क्या दो नरोंके द्वारा यह पूर्णता नहीं प्राप्त हो सकती? नहीं, क्योंकि प्रकृतिने हमारे भावोंको कुछ ऐसा बनाया है, कि जो कार्य अथवा जो सुख हमें अपनी स्त्री-सङ्गिनीसे प्राप्त हो सकता है, वह पुरुषसे नहीं; क्योंकि इस सृष्टिकी वृद्धि और प्रकृतिके उद्यानकी रमणीयता सदा एक समान बनाये रखनेके लिये नवीन पौधोंकी सदा आवश्यकता है, जो दो पुरुषोंके जोड़ेसे कदापि नहीं हो सकता; क्योंकि जीवनकी धारा निश्चित करने, उसे सुचारू पथसे ले जाने और उससे इस सृष्टिकी पृथ्वीको सींचकर उत्तम फल उत्पन्न करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है और यह आवश्यकता स्त्री-संगिनीके बिना पूरी नहीं हो सकती। इन सबके अलावा, सबसे जबर्दस्त बात तो यह है, कि संगी बननेके लिये एक आकर्षणकी आवश्यकता है। जो जितना ही आकर्षक है, जिसमें जितना ही आकर्षण भरा है, वह उतना ही दूसरेको अपने पास खींच लेता है। स्त्रियोंकी रचना कुछ इस ढंगसे की गयी है, उनके बाह्य शरीरकी गठन कुछ ऐसी बनायी गयी है, कि वे जितना शीघ्र एक हृदयको अपनी ओर आकर्षित

कर सकती हैं, एक पुरुष उतना कदापि नहीं कर सकता। नारीके हृदयको प्रकृतिने कुछ ऐसे ढंगका वनाया है, उसमे कुछ ऐसे मसाले भरे हैं, कि वह जितने सहजमे अपने साथी हृदयको अपना लेता है, उतना पुरुषका नहीं। इसके अतिरिक्त काम-कल्पनाकी तृप्तिका प्रश्न सामने आता है। यद्यपि यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके उत्तरमे यह भी कहा जा सकता है, कि इसका निरोध भी तो हो सकता है। परन्तु थोड़ा विचार करनेसे ही यह वात स्पष्ट मालूम हो जाती है, कि हमारे शरीर और मनोभाव कुछ ऐसे ढंगसे गढ़े हुए हैं, कि इनका निरोध सवके लिये एक प्रकारसे घोर असम्भव है—और यह इसलिये, कि यदि सव ही निरोध कर लें, तो थोड़े ही दिनोमे प्रकृतिका उद्यान उजाड़ हो जाय—लीलामयका लीलाक्षेत्र नीरस और हृदय-वेधक मरुभूमि जैसा हो पड़े।

एक वात और भी है—मानव समाजके लिये—खास-कर इस सभ्य युगके लिये—प्रत्येक कार्यमें एक मैनेजरकी आवश्यकता पड़ती है। विना मैनेजरके न तो राज्य या आफ़ि-सकी शोभा ही वढ़ती है न सुचारुरूपसे कोई काम ही होता है। हमलोगोको इस गृह-राज्य और घर-आफिसके लिये भी एक मैनेजरकी जरूरत पड़ती है। अत एक स्त्री संगिनी

मिल जाने पर यह अभाव भी दूर हो जाता है। अब देखिये कि ऐसा मसाला सिवा स्त्रीके दूसरा क्या हो सकता है, जो हृदयकी अपूर्णताको पूर्ण करे, गृह-राज्यके प्रबन्धकके अभावको दूर करे, मनको हर तरहसे आनन्द पहुँचावे, शारीरिक वासनाओंकी तृप्ति करे और फिर प्रकृतिसे युद्ध करनेके लिये अथवा हमारे हृदयके प्रेमकी अभि-वृद्धि करनेके लिये, ईश्वरकी सृष्टिको सदा कायम रखनेके लिये—सन्तान भी उत्पन्न करे। इन बातोंपर विचार करनेसे ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि पुरुषके लिये एक स्त्री-संगिनीकी आवश्यकता है और इसके बिना उसका जीवन भारमय बना रह सकता है।

मनुष्यके यौवनको हम उसके जीवनका वसन्त-काल कह सकते हैं। इस अवस्थामें, जन्मसे ही विकालाङ्ग और रोगी मनुष्योंको छोड़, संसारके समस्त युवक और युवतियों में नाना प्रकारकी अनुरञ्जित कल्पनाओं और यौवनागमके शारीरिक परिवर्त्तनोंके साथ साथ, जातीयवृत्तिकी बहुत सी अभिनव और प्रबल उत्तेजनायें भी खलबली पैदा करने लगती हैं। दोनोंके शारीरिक प्रभेद, इस समय अधिक स्पष्ट और आकर्षक होकर दोनोंकी कल्पनामें, न जाने कितने गुह्य, कितने प्रलोभक और कितने जादू भरे हो जाते

हैं। इस समय दोनों ही कल्पनाके स्वर्गमें विचरण करते और परस्परके मिलनसे आकाशमें न जाने कितने रंगदार हवाई महल बनानेका सुख स्वप्न देखते रहते हैं।

लोग किसी कारणसे अपने इस मनोभावको चाहे जितना छिपावें, परन्तु यह बात छिपी नहीं रह सकती, कि एक पुरुषका हृदय किसी युवतीके साथ आजीवन मिलनका सुख-स्वप्न पूरा होता हुआ देखनेके लिये हदसे ज्यादा लालायित रहता है। हम समझते हैं, कि ऐसा होना एक-दम स्वाभाविक है। नवविवाहिता वधूके चुम्बन और करस्पर्शमे एक ऐसा जादू और एक ऐसी उत्तेजना भरी रहती है, कि जिससे समूचे शरीरमे बिजलीसी दौड़ जाती है। दो प्रेमी जब एक साथ बैठकर टूटे फूटे शब्दोंमें प्रेलालाप करते हैं, तब उनके हृदयकी स्पन्दनध्वनि प्रतिध्वनित हो उठती है। जब वे दोनों एक दूसरेकी ओर देखते हैं, तब परस्परकी आँखोंमे उन्हें समूचे संसारकी सुन्दरता दिखाई देती है। इस स्वर्गीय उल्लासके आवेशमें वे संसारका सर्व श्रेष्ठ सुख अनुभव करते है। यही आध्यात्मिकताकी अन्तिम श्रेणी है। मनुष्यकी यह कल्पनायें, उसकी यह आशायें और उसके यह भाव ही उसे विवाह करनेके लिये प्रेरित करते हैं। विवाह करनेसे एक ऐसा प्रेमी और एक ऐसा

संगी मिलता है, जो मानव जीवनको कर्मण्य और स-रस बनानेमें सहायभूत होता है।

स्त्री और पुरुषका शरीर किसी ऐसी दो चीजोंके समान है, जिनमे भिन्न भिन्न शक्तिवाली विजलियाँ भरी रहती हैं। जबतक यह दोनों चीजें अलग अलग रहती हैं, तबतक उनमें विजलीका प्रवाह रहते हुए भी वह दिखलाई नहीं पड़ता, परन्तु ज्योंही वह दोनों चीजें एक दूसरेसे संलग्न कर दी जाती हैं, त्यो ही उन दोनोकी विद्युत शक्ति रूपान्तरित हो जाती है और उनके भीतरसे चिनगारीकी तरह जलती हुई लौ निकलने लगती हैं। इसीको प्रेम कहते है। स्त्री-संगिनी द्वारा ही यह प्रेम उत्पन्न होता है और सन्तान होने-पर उसमें वृद्धि होती है। सन्तान और प्रेम दोनों ही मनुष्यको आनन्द देनेवाली चीजें हैं, अतः जीवनको मधुर और चिरानन्दमय बनानेके लिये, स्त्री-सङ्गिनो ही सर्वोत्कृष्ट साधन है।

अविवाहित मनुष्योंके जीवनपर ध्यान देनेसे ही आपको मालूम होगा, कि उनमे बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं, जो सबसे बड़े कामकाजी होनेकी योग्यता रखते हैं और बहुतसे ऐसे हैं, जो संसारमें सभी प्रकारसे सफलता प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु एक सुयोग्य सङ्गिनीके बिना उनका जीवन इस

प्रकार निर्जीव और नीरस हो गया है, मानो उन्हें पक्षाघात की व्याधि हो गयी है।

सच बात तो यह संसारमें प्रत्येक मनुष्यका एक ऐसा सङ्गी अवश्य होना चाहिये, जसके सामने हृदय खोलकर रक्खा जा सके—जिससे कुछ लुकाने छिपानेकी जरूरत न हो, जिसके शरीरका प्रत्येक अङ्ग अपने ही अंग प्रत्यंगके समान प्यारा हो, जिसके साथ अपने परायेका भाव न रहे, चिन्ता और विचारमें पूरी समता हो—दोनोंके मस्तिष्कमें एक ही विचार-धारा प्रवाहित होती हो, जिसके साथ सांसारिक अनुभव और सुख दुःखमे स्वभाविक सहानुभूति हो—दोनो ही एक दूसरेके सुख दुःखके साथी हो। ऐसी एक आत्मा प्राप्त करनेकी प्रत्येक मनुष्यको लालसा होती है और यह कहना व्यर्थ है, कि ऐसी आत्मा स्त्रीके लिये पुरुष और पुरुषके लिये स्त्री ही हो सकती हैं। इस आवश्यकताको—इस शारीरिक अपूर्णताको पूर्ण करनेके लिये ही अपने अनुरूप रमणीका पाणिग्रहण किया जाता है ताकि दुःखमे सहारा और सुखमे एक साथी रहे तथा संसारके समस्त कार्य दोनो एक दूसरेके सहयोग द्वारा सुचारुरूपसे सञ्चालित कर सकें।

मानव इतिहासमे अनेकबार ऐसा हुआ है, कि कुछ

व्यक्तियोंने, न केवल अपनी ही स्त्री संसर्गकी आकांक्षाको दमन किया है, बल्कि सर्वसाधारणमें भी अविवाहित जीवनके आदर्शका दृढ़ताके साथ प्रचार किया है। अपने उच्चतम और सबसे अधिक विस्तृत अर्थमे अविवाहित जीवनका आदर्श संकीर्ण व्यक्तिगत प्रेमके बदले विस्तृत विश्वप्रेमका आदर्श घोषित करता है। कितने ही साधु महात्मा, समाज सुधारक और नेतागण अपने जीवनको इस आदर्शके सांचेमे ढालते हैं, परन्तु ऐसे आदर्शवादी मानव समाजके लिये आदर्श या स्टैण्डर्ड नहीं हो सकते। वे साधारण धाराके केवल छिटके हुए सोते हैं—वे समाज-रूपी वृक्षकी वह डालियां हैं, जो सदा हरीभरी रहती हैं, परन्तु कभी फलफूल नही देती।

मनुष्य संसारमे इसलिये नहीं भेजा गया, कि वह पशु-ओंकी तरह मूकभावसे कालयापन करे और चुपचाप मृत्युके अधीन हो। वह संसारमे इसलिये भेजा गया है, कि अपनी शक्तियोंका पूर्ण विकास करे, अपनी बुद्धि और विवेकके सहारे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करे। जो ब्रह्मचर्यके बाद गृहस्थाश्रम और गृहस्था-श्रमके बाद त्यागकी ओर अग्रसर होते हैं, उन्हें ऐसा करने-का अवसर मिलता हैं, वे धर्म अर्थ और कामका साधन

करते हुए अन्तमे परमपद प्राप्त करते हैं, परन्तु जो इस कर्त्तव्यको पूरा न कर प्रकृतिसे ही युद्ध छेड़ते हैं, वे निःसन्देह उस सुन्दर अमृतधाराको खो देते हैं, जिससे अभिनव सृष्टिके अमूल्य रत्नोंकी प्राप्ति होती हैं।

हमलोग मनुष्य हैं। हमारी शक्तियोंका विकास तभी होता है, जब हम लोग वैज्ञानिक, शारीरिक और आध्यात्मिक नियमोपर ध्यान रखते हुए आचरण करते हैं। मनुष्य जातिके अनन्त अनुभवने सिद्ध कर दिया है, कि बिना एक सुयोग्य संगीके मनुष्य न तो अपनी शक्तियोंका विकास ही कर सकता हैं, न इस संसारमे आगे ही बढ़ सकता हैं। इसके विपरीत एक संगी मिलनेपर वह उसके प्रेम द्वारा अपने जीवनको न केवल मधुर ही बना सकता हैं, बल्कि उसके सहयोगसे मोक्ष तक प्राप्त कर सकता है। इसलिये अपनी प्रकृतिके अनुकूल किसी जीवन संगिनीको खोजकर, अपने जीवनको अधिक पूर्ण और शोभन बनाते हुए परमात्माकी सृष्टिके पवित्रतम कार्यको योग्यताके साथ सफलता पूर्वक सम्पन्न करना—यही हमारे जीवनका ध्येय और लक्ष्य होना चाहिये।

अर्द्धं भार्य्या मनुष्यस्य भार्य्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्यावन्तः क्रियावन्तो भार्यावन्तः श्रियाऽन्विताः॥

सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ।
पितरो धर्म्मकार्य्येषु भवन्त्यार्त्तस्य मातरः ॥ *

---

* संसारमें स्त्री पुरुषकी अर्द्धाङ्गना व परम मित्र रूपा है। जिनके भार्या है, उन्हींकी सब धर्मकार्योंमें सफलता व श्रीवृद्धि हुआ करती है। एकान्तमें प्रियवादिनी सखा, धर्म कार्यमें पिताके समान सहायता देनेवाली और रोगादि क्लेशोंके समय माताकी तरह शुश्रूषा करनेवाली भार्या ही हुआ करती है।

विवाह सम्बन्ध

विवाह तो हम सभी लोग करते हैं, परन्तु विवाह करनेके बाद दाम्पत्य-जीवन किस तरह बिताना चाहिये—यह हम लोग नहीं जानते। पाश्चात्य देशोंमें विवाह एक सामाजिक बन्धन (Social contract) समझा जाता है, अतः स्त्रियोंको पुरुषोंके समान ही अधिकार मिलते हैं। यदि पुरुष स्त्रीके साथ जरा भी अन्याय करता है, तो वह न केवल उसके लिये शिकायत ही करती है, बल्कि तलाक़ देकर झट अलग भी हो जाती है, परन्तु हमारे यहाँ विवाह एक धार्मिक बन्धन गिना जाता हैं। यहां स्त्रियोंको सिखाया जाता है, कि पति ही तुम्हारा देव, पति ही गुरू और पति ही तीर्थ तथा व्रत है, अतः सबको छोड़कर पतिकी ही पूजा करनी चाहिये। * यहां एकबार

---

* भर्त्ता देवो गुरुर्भर्त्ता भर्त्ता तीर्थ व्रतानि च।
तस्मात्सर्व्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्च्चयेत् ॥ —महर्षि भृगु

विवाह हो जाने पर पतिपत्नी फिर अलग नही हो सकते। विवाहके समय जो गांठ बंधती है, वह फिर इस जन्ममें नहीं छूटती। पुरुष स्त्रियोको अर्द्धाङ्गनाके रूपमे ग्रहण करते हैं और स्त्रियां उनके निकट दासी भावसे रहना स्वीकार करती हैं। इसके लिये दोनो विवाहके समय प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं और अग्निको साक्षी मान कर कहते हैं, कि हम एक दूसरेको समान भावसे देखेगे और कभी एक दूसरेका अप्रिय न करेगे।

नि:सन्देह भारतवासियोकी यह विवाह प्रथा सराहनीय है। विवाहका ऐसा ऊंचा आदर्श संसारमें और कहीं नही दिखाई देता। परन्तु खेदकी वात है, कि जो लोग इतने बड़े आदर्शको सामने रखकर विवाह करते हैं, वही पशुओसे भी गयाबीता जीवन व्यतीत करते हैं। जो विवाह, संसारमे कल्पलताका मूल होना चाहिये, वही विष-वल्लरी हो पड़ता है। जिस विवाहमे प्रेम और उल्लासके फल लगने चाहिये, उसीसे दुःख, गृहकलह और भोषण मनो-मालिन्यके विषम फल उतरते हैं। क्या आपने कभी इस वातपर विचार किया हैं, कि ऐसा क्यो होता है? जो काम सुखके लिये किया जाता है, वह दुःखका कारण क्यों हो पड़ता है? नहीं, इन वातोपर कोई विचार नहीं करता।

शायद् लोगोंका ध्यान ही अभी इस ओर आकर्षित नहीं हुआ, परन्तु अब अधिक समय तक यह अवस्था नहीं रह सकती। लोगोंको इस प्रश्नपर विचार करना ही होगा। जो जाति इस प्रश्नपर विचार करनेके लिये तैयार न होगी, उसका अस्तित्व सदाके लिये धरती तलसे लोप हो जायगा।

भारतकी मन्द्भागिनी स्त्रियां जन्मसे ही दासताके संस्कार लेकर भूमिष्ट होती हैं। शिक्षा दीक्षा भी उन्हें वैसी ही मिलती है, अतः वे अपने पतिको—वह चाहें जैसा हो—प्राणाधार कहकर अपना लेती हैं और उसके चरणोंमें अपना तनमन और जीवन तक समर्पण कर देती हैं। हम इसे अनुचित नहीं समझते, परन्तु खेद यही है, कि परम स्वार्थी पुरुष स्त्रियोंके इस सेवाभावको लातसे ठुकरा देते हैं। वे उनके इस स्वर्गीय भावकी कद्र नहीं करते। कद्र करना तो दूर रहा, वे उलटा उनके इस आत्मसमर्पणसे अनुचित लाभ उठाते हैं—उसका दुरुपयोग करते हैं। वे समझते हैं, कि स्त्रियां हमारी दासी हैं और केवल हमारी काम पिपासा तृप्त करनेके लिये ही उनकी सृष्टि हुई है। क्या यह पुरुषोंका अन्याय नहीं है? क्या स्त्रियोंके प्रति यह विश्वास-घात नहीं है? क्या यह स्त्री जातिपर अत्याचार नहीं है? इन्हीं पापोंके कारण विवाह गृहकलहका कारण हो रहा है

और इसीलिये दाम्पत्य-जीवनमे सुख और शान्तिके वदले दुःख और अशान्ति दिखाई देती है।

जो स्त्रियां पुरुषोंको प्राणाधार और जीवन सर्वस्व समझती हैं, उन्हीं स्त्रियोंपर पुरुषोंकी ओरसे उन्हे कामयन्त्र समझकर इतना अत्याचार किया जाता है, कि वे वेचारी नाना प्रकारकी यातनाओंको सहन करती हुई असमयमें ही अपनी इहलोक यात्रा समाप्त करती हैं। स्त्रियोंमे वन्ध्यत्व, गर्भस्राव और नाना प्रकारको जो व्याधियां दिखाई देती हैं, देशमें दिनप्रतिदिन दीन हीन और दुर्बल प्रजाकी जो वृद्धि होती जा रही है, चारो ओर वेश्याओंकी जो दिन दूनी और रात चौगुनी संख्या बढ़ती जा रही है तथा भ्रूण हत्या आदि जो अनर्थ हो रहे है, उनका मूल कारण पुरुष ही हैं। यदि आज वे स्त्री जातिपर यह पाशविक अत्याचार करना छोड़ दे तो इन क्लेशोंका एक वारही अन्त आ सकता है और संसार स्वर्गकी तरह सुख शान्तिका आगार वन सकता है।

प्रेम और सन्तान—यही दो विवाहके प्रधान हेतु हैं, परन्तु इस समय पुरुष पाशविक अत्याचारको ही अपना वैवाहिक अधिकार समझते हैं। इस धारणाके कारण स्त्री सेवन विवाहित पुरुषोंका एक नित्यकर्म हो पड़ता है। उनके

हृदयमे जरा भी विकार उत्पन्न हुआ, कि वे उसे चरितार्थ करनेको तैयार हो जाते हैं और विचारी स्त्रियां तो उनकी दासी ठहरीं, अतः उन्हें उस पशुवृत्तिके सम्मुख शिर झुकाना ही पड़ता है। अपना स्वास्थ्य, अपनी सुविधायें और अपने समस्त उद्देश्योको जलाञ्जलि दे, उन्हें अपने प्राणाधारका अत्याचार सहना ही पड़ता है। ऐ कामी पुरुषो। क्या स्त्रियोपर यह तुम्हारा अत्याचार नहीं है? क्या तुम कभी यह कार्य अवलाओंकी सम्मतिसे करते हो? क्या यह अत्याचार करते समय तुम्हे भूल कर भी उनके स्वास्थ्य, इच्छा, सामर्थ्या या सुविधाका विचार आता है? क्या तुम यह समझते हो, कि स्त्री जाति तुम्हारे लम्पटताके विकारोंको तृप्त करनेका एक यन्त्र मात्र है?

स्त्रियोके सम्बन्धमे कहा जाता है, कि उनमे पुरुषोकी अपेक्षा आठगुना काम होता है।* सम्भव है, कि यह बात सच हो, परन्तु आपने कभी क्या यह अनुभव किया है, कि उनमे आत्म दमनकी कितनी शक्ति है? क्या आपने कभी उन्हें अपनी ओरसे अनुचित प्रस्ताव करते सुना है? यदि आठगुना काम रखनेवाली स्त्रियां ऐसा आत्मसंयम और

---

* स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जाचापि चतुर्गुणा।
साहसं षड्गुणा चैव कामश्चाष्ट गुणाः स्मृतः॥

चित्र नं० १
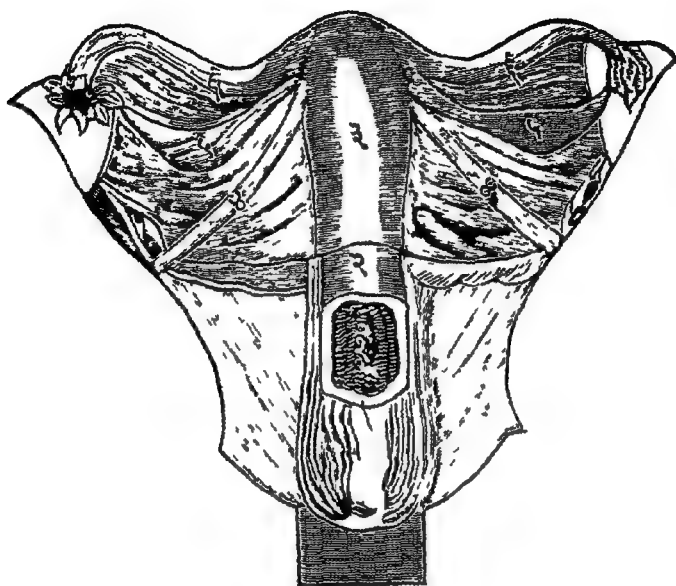
स्त्रीके प्रजनन अङ्ग

१—जननेन्द्रियका बाह्यद्वार। २—जननेन्द्रियका अन्तर्द्वार। ३—गर्भाशय। ४—गर्भाशयके बन्धन। ५—अण्डाशय। ६—फल वाहिनी किंवा डिम्ब प्रणाली।

देखो पृष्ठ ७७—७८

नैतिक बल दिखला सकती हैं, तो कोई कारण नहीं, कि पुरुष जो अपनेमें केवल दोही आने भर कामुकता होना स्वीकार करते हैं, वह आत्मसंयम न कर सके। उन्हें तो इस सम्बन्धमें स्त्रियोंकी अपेक्षा आठगुनी क्षमता प्रदर्शित करनी चाहिये। यदि वे ऐसा नहीं करते और स्त्रियों पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं, तो वह उनका सरासर अन्याय है, उनकी पशुता और दुराचार-प्रियता है, नीचताकी परमावधि है। इसके लिये उनकी कड़ेसे कड़े शब्दोंमें भर्त्सना की जा सकती है।

विवाहके पवित्रतम कार्य द्वारा प्रकृति यह पाशविक अत्याचार नहीं चाहती। वह चाहती है—नवदम्पतियोंमे प्रेम और उसके फलस्वरूप उत्तम सन्तान, कि जिससे परमात्माके सृष्टिकार्यमे सहायता मिले। सन्तानोत्पत्तिका यह कार्य स्त्री और पुरुष दोनोंको सम्मिलित चेष्टासे सम्पन्न होता है, अतः विवाह करनेके बाद स्त्री तथा पुरुषको एक दूसरेकी सुविधानुसार, एक दूसरेके हिताहितका विचार कर इस प्रकार दाम्पत्य सम्बन्धको निभाना चाहिये, कि जिससे दोनोंका जीवन आनन्द और उल्लासमय बना रहे, कभी एकके कारण दूसरेको कष्ट न हो और सभी कार्य सुचारु रूपसे चलते रहें।

जनन-विज्ञान

वास्तविक विवाहमें आध्यात्मिक मिलनके साथ साथ शारीरिक मिलन भी होता है। स्त्री और पुरुष एक दूसरेके प्रेममे पूरित होकर आकांक्षा करते हैं—चाहे वह आकांक्षा अतर्कित ही क्यो न हो, कि उनके प्रेमका एक सजीव निदर्शन दृष्टिगोचर हो। इस प्रकार वे स्वाभाविक उपायसे मिलित होते हैं। दाम्पत्य प्रेमको दृढ़ करनेके लिये जो वृत्ति मनमे उच्चाकांक्षाके रूपमे परिणत होती है, हृदयमे वही बादको प्रवेश कर व्यसनका रूप धारण करती है और वही शरीरमें प्रवेश कर मिलनकी लालसाके रूपमे परिणत होती है।

परन्तु पुरुष गर्भाधान कर अलग हो जाता है और बादको गर्भधारणसे लेकर प्रसव और सन्तान पालन तकका भार स्त्रियोंके सिर आ पड़ता है। अतः इस सम्बन्धके सभी विचारोका निर्णय स्त्रीके विचार पूर्ण निर्णयो पर ही निर्भर रहना चाहिये। उनके सभी अधिकारोंमे यही अधिकार सबसे अधिक निर्विवाद और आपत्ति रहित है। यदि पुरुष यह स्वीकार कर ले तो हमारा विश्वास है, कि वे अपने स्वास्थ्य और सुख पर ध्यान रखते हुए पुरुषकी प्रवृत्तियोसे भी सहानुभूति रख सकती हैं और अपने अधिकारके सदुपयोग द्वारा अनेक अनर्थोंका भी मूलोच्छेद कर सकती है।

मिताचार स्त्री और पुरुषोके इस दाम्पत्य सम्बन्धको मधुर बनानेकी सबसे अच्छी पेटन्ट दवा है। इससे न तो स्त्रियोका ही स्वास्थ्य नष्ट होता है, न पुरुषोको ही असन्तुष्ट होनेका कारण मिलता है। यदि दाम्पत्य जीवनमें इस दवासे काम नहीं लिया जाता, तो प्रेम इतनी जल्दी असभ्यताका नमूना हो जाता है और अपनापन इतनी जल्दी उदासीनता एवम् घृणाके रूपमे परिणत हो जाता है, कि फिर उसे सुधारनेका अवसर ही नहीं मिलता।

कभी कभी स्त्रियोंको वारंवार सन्तान-प्रसवके लिये वाध्य किया जाता है। इसे हम पुरुषोकी निष्ठुरताके अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं? जब किसी स्त्री पर इस प्रकारका अत्याचार किया जाता है, तब उसकी अवस्था इतनी खराब हो जाती है, कि इष्टमित्रो और अड़ोसीपड़ोसियोंको भी इस प्रकारकी निर्दयताको रोकनेके लिये पुरुषको विना मांगे सलाह देनी पड़ती है। यह अवस्था पुरुषोंके लिये बहुत ही लज्जाजनक है, अतः उन्हें भूलकर भी ऐसा अवसर न आने देना चाहिये।

परन्तु मिताचारका नियम सब स्त्री पुरुषोंके लिये एक समान नहीं हो सकता, क्यो कि सबको शारीरिक अवस्था एक समान नहीं होती। हमारे धर्म और वैद्यक शास्त्रोंमे केवल

ऋतुकालमे अर्थात् रजस्राव बन्द होनेके बाद केवल बारह दिन तक सहवास करनेकी आज्ञा दी गई है। लोग इस नियमको ताकमें रख सम्प्रति नित्य स्त्री सेवन करते हैं, परन्तु यह किसी तरह वाञ्छनीय नहीं। यदि स्वास्थ्य और यौवनको चिरकाल तक स्थायी रखना हो, तो इस अनियमितताको दूर कर मिताचारी बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। सहवासकी अवधि शनैः शनैः बढ़ाते रहनेसे कुछ ही दिनोमे मनुष्य मिताचारी बन सकता है। विलासमय जीवन, बहुमूल्य और उत्तेजक आहार, शराब, भंग और गांजा प्रभृति मादक द्रव्योंका सेवन, थियेटर और खेल तमाशे देखना, उपन्यास पढ़ना, आलस्य करना आदि सभी बाते ऐसी हैं, कि जिनसे रक्त उत्तेजित हो उठता है और सहवासकी अधिकताके लिये प्रेरित करता है। इसलिये जो लोग मिताचारी होना चाहे, उन्हें ऐसे उत्तेजक कामोसे सदा दूर रहना चाहिये।

अतिविहार और अमिताचारके कारण स्त्री पुरुषोकी जीवनी शक्तिका ह्रास होता है, पारस्परिक स्नेह और आदरमे आप ही आप कमी आ जाती है, झुंझलाहट और निरुत्साहताके चिन्ह दिखाई पड़ते हैं और वृद्धावस्था शीघ्र ही अपना प्रभाव जमाने लगती है। इसके विपरीत सम्पूर्ण

रूपसे काम वर्जन करनेसे भी स्वामी और स्त्रीमें उदासीनता और विराग आनेकी सम्भावना रहती है। कभी कभी एक दूसरेके प्रति अविश्वास भी हो जाता है, इसलिये बिना किसी असाधारण कारणके कामवर्जन करना उचित नहीं कहा जा सकता।

इन्द्रियवृत्तिको उचित रूपसे दलन और आयत्ताधीन करनेसे वह मनुष्यकी सबसे बड़ी शारीरिक सम्पत्ति हो सकती है, क्योंकि यह बात कभी भूलनेकी नहीं और न अविश्वास ही करनेकी है, कि मस्तिष्क और शारीरिक शक्तियां जिस आवरणके भीतर रहकर काम करती हैं, वह शरीर-मन्दिर इसीके संचय—इसीकी नीवपर निर्भर करता है।

उद्योग और अध्यवसायसे ही धर्म और कला कौशलमें सुन्दरता लायी गयी है। जिस प्रकार शब्दोंको सजानेसे सुन्दर कविता तैयार होती है, पत्थरको गढ़नेसे मनोहर मूर्त्ति बन जाती है, और भिन्न भिन्न तंतुओंकी योजनासे वीणामें संगीतका गौरव घोषित होता है, उसी प्रकार जब सारा शरीर उचित आदर और यत्नसे व्यवहृत होता है और उसमें शक्तियोंका संचय किया जाता है, तब वह उस तेजको प्रकट करता है जो उसके अन्दर निवास करता है और कभी कभी अन्दरसे झलक मारता है।

जनन-विज्ञान

मानव शरीर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक त्रिविध उपादानोंसे गठित है। जो लोग दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करनेका तरीका नहीं जानते अथवा जो मिताचारके बदले अतिविहारमे प्रवृत्त होते हैं, वे अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी शक्तियां खो बैठते है। इन तीनमेंसे एककी भी कमी पड़ जानेसे मनुष्यका शरीर चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष—अपूर्ण हो जाता है और वह अच्छी सन्तान उत्पन्न करने लायक नहीं रहता।

इसके विपरीत इन शक्तियोंका संचय करनेसे मनुष्य कैसा शक्तिशाली और सम्पन्न हो सकता है, यह बतलाते हुए राल्फ वाल्डो ट्राइन (Ralph Waldo Trine) नामक एक विख्यात तत्वज्ञानी अपने एक ग्रन्थमें लिखते हैं कि :—

"It is the all-round, fully-developed we want—not the ethereal, pale-blooded man and woman, but the man and woman of flesh and blood, for action and service here and now—the man and woman strong and powerful, with all the faculties and functions fully unfolded and used, all in a royal and bounding condition, but all rightly subordinated The man and the woman of this kind, with the imperial

hand of mastery upon all—standing, moving thus like a king, nay, like a very God—such is the man and such is the woman of power Such is the ideal life anything else is one-sided, and falls short of it. अर्थात् हम पीले और दुर्बल शरीरवाले स्त्री पुरुष नहीं चाहते। हम ऐसे स्त्री पुरुष चाहते हैं, जिनके शरीरमे खून और मांस हो, जिनमे काम करनेकी शक्ति हो, जिनकी सभी शरीर शृंखलाये छूटी हुई हों, परन्तु उन्हें रोक रखनेकी शक्ति हो और जो राजाकी तरह शानके साथ चलतेफिरते व रुआव रखते हो। शक्तिशाली पुरुष और शक्तिशालिनी स्त्रियां ऐसी ही होती हैं। यही जीवनका आदर्श है। इसके अतिरिक्त जोकुछ है वह अपूर्ण और भ्रमोत्पादक है।
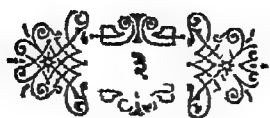
सन्तान-समस्या

गर्भाधान और सहवासका सम्बन्ध कब और किस प्रकार होना चाहिये—इस प्रश्नकी मीमांसा आरोग्य-शास्त्रके नियमोंपर ध्यान रखते हुए प्रत्येक स्त्री पुरुषको स्वयं कर लेनी चाहिये। हमारे ऋषि मुनिओंकी तरह कितने ही बड़े बड़े पाश्चात्य सिद्धान्तवादियोंका भी यही मत है, कि केवल गर्भाधानके लिये ही सहवास समर्थित हो सकता है अर्थात् सहवासका एक मात्र उद्देश्य सन्तानोत्पादन ही होना चाहिये। वास्तवमे यदि देखा जाय, तो स्त्री पुरुषके शरीरमे कामवृत्ति रख छोड़नेमे प्रकृतिका प्रधान और स्वाभाविक उद्देश्य यही प्रतीत होता है। प्रकृतिने सन्तानोत्पादनकी इस गोलीपर कामवासनाका सुनहला रंग चढ़ाकर उसे इतनी सुन्दर और चमकीली बना रक्खा है, कि मनुष्य उसे देखते ही निगल जाना चाहता है। इसी तरह प्रकृति प्रजा

सृष्टिका कार्य करती हैं। परन्तु सन्तानोत्पत्ति सहवासका प्राकृतिक उद्देश्य होते हुए भी यह बड़े खेदकी बात है, कि व्यवहारिक जगतमें सर्वसाधारण मनुष्य न तो ऐसे सिद्धान्तसे लाभ ही उठाते हैं और न ऐसे आदर्श मतपर विश्वास ही करते हैं। वे लालची बच्चोंकी तरह पेटभर मिठाई खाना पसन्द करते हैं, चाहे उससे उन्हें फायदा हो, चाहे बदहजमीसे बीमारही होना पड़े। परन्तु जो लोग बुद्धिमान होते हैं, वे मिताचारकी आवश्यकता समझ कर इस विषयमे भी संयमसे काम लेते हैं।

बहुत लोग इस बात पर विश्वास ही नही करते, कि कामवृत्तिकी परिचालना केवल सन्तानोत्पत्तिके उद्देश्यसे ही होना वैध हैं। कितने ही लोग स्वभावत: यह दलील पेश करते हैं, कि मनुष्य बच्चा पैदा करनेका यन्त्र नहीं है, कि वह बराबर बच्चा पैदा करनेके लिये ही कामचालना करे। बहुत लोग ऐसे भी हैं, जो यह जानते और मानते हुए भी, कि कामवृत्तिकी एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिये—उसे समय असमय, अनियमित और अस्वाभाविक रूपसे परिचालित करते रहते हैं। ऐसी अवस्थामे जब कि सर्वसाधारणका मनोभाव इस प्रकारका हैं, बहुत कम लोग यह व्यवस्था माननेको तैयार होंगे, कि गर्भसञ्चार होनेके बाद

गर्भावस्था और स्तनंधयावस्थाके अठारह महिनों तक फिर सहवास नहीं होना चाहिये। इस अवधिके वाद फिर सहवास आरम्भ किया जा सकता हैं, परन्तु फिर गर्भसंचार होते ही अठारह महिनेके लिये वन्द कर देना होगा। लोग इस नियमानुसार आचरण करे या न करें, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वास्तविक नियम यही है। इससे न केवल स्त्री और पुरुषहीका स्वास्थ्य और यौवन चिरस्थायी हो सकता है, वलिक दोनोंके योगसे उत्पन्न होनेवाली सन्तान भी सुन्दर और तेजस्विनी हो सकती है।

यद्यपि सन्तानोत्पादन वृत्ति स्वास्थ्य और सवल जीवनका एक स्वाभाविक अंग है, परन्तु जव स्वास्थ्य खराव हो जाता है, तव यह वृत्ति भी सांघातिक और अस्वाभाविक हो जाती है। इसलिये प्रत्येक स्त्री पुरुषका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये, कि उनके शरीरमे यदि किसी प्रकारकी व्याधि हो, तो जहांतक हो सके जल्दी उसका इलाज करायें अन्यथा विलम्वसे वहुत अनर्थ हो सकता है। रुग्नावस्थामें सहवास करना एकदम अवैध है, क्योंकि कभी कभी रोग और व्याधिके कारण स्त्री या पुरुष किसी एकका अङ्ग विकृत या रक्त दूषित हो जानेपर उसके संसर्गसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह भी उत्तराधिकार सूत्रसे उन रोगोंको लेकर जन्मती है और

आजन्म रोगी बनी रहती है। देश और जातिके ऊपर इस प्रकार पापका बोझ लादनेकी अपेक्षा यही अच्छा है, कि समय रहते समुचित औषधोपचार और स्वास्थ्यकर जीवन-चर्याद्वारा रोगोंको दूर करनेकी चेष्टा की जाय।

हमारे यहां सन्तानोत्पत्तिका कार्य भी धर्मका एक अङ्ग माना गया है। कहा गया है, कि सन्तान उत्पन्न करनेसे पितृऋणसे मुक्ति मिलती है, परन्तु सब लोग इस विचारसे सन्तानोत्पत्ति नहीं करते। सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा मनुष्य मात्रको होती है और उसके कई प्रधान कारण हैं। सबसे पहला कारण है—छोटे छोटे हाथ पैर वाले शिशुको गोदमें लेने, उसे खिलाने पिलाने और उसके नन्हे नन्हें हाथोसे सभी काम देखनेकी उत्कट लालसा। दूसरा कारण है—बुढ़ापेमें सुख और आराम मिलनेकी आशा और तीसरा कारण है—अपना और अपने वंशका नाम रखनेकी अभिलाषा, जो कि गौण भावसे प्रकृतिका प्रजासृष्टिका कार्य्य है।

नारी जीवनका तबतक पूर्ण विकास नहीं होता, जबतक वह मातृत्वके दुःख, कष्ट और पीड़ासे पूरी तरह अभिज्ञ नहीं होती। गुलाब वृक्ष तभी पूर्णताको प्राप्त होता है, जब उसमें कलियां लगने लगती हैं। गोदमें शिशु लिये हुई युवती माताके चित्रको हो भावुक समालोचक ईश्वरकी

समूची सृष्टिमे सबसे अधिक पवित्र और सुन्दर ठहराते है।

जब किसी माता पिता पर नये शिशुकी देखरेखका भार आ पड़ता है, तब स्वतः उनका जीवन स्थिर, नियमित और स्वार्थ रहित हो जाता है। शिशुको प्यार करते हुए उसके चरित्र गठन और शिक्षा दीक्षाका आदर्श सामने रखते हुए वे सर्वदा अपनी जीवनचर्याको उन्नत बनानेकी चेष्टा करते है, क्योंकि उन्हें सदैव यह आशंका बनी रहती है, कि उनमे कोई ऐसी कमजोरी न प्रकट हो जाय, जिससे उनके कोमल स्वभाव बालकका चरित्र भी प्रभावित हो जाय। राजासे रंक तक जिस किसीको सन्तान उत्पन्न होती है, सभीके शिरपर समान ही दायित्वका भार पड़ता है। परन्तु इससे किसीको रंज और दुःख नहीं होता, बल्कि सभी अपनेको शिशुके माता पिता समझ कर अपनेको अहो-भाग्य और सुखी समझते है।

मानव प्रेम और इतर जीवोका प्रेम—यद्यपि दोनो, हृदयकी एक ही वृत्तिसे उत्पन्न हुए हैं, तथापि उन दोनोमे बड़ा अन्तर है। कुतिया अपने बच्चेको पालपोसकर छोड़ देती है, फिर उसकी खोज ख़बर भी नहीं रखती, परन्तु वही कुतिया जिस मनुष्य-प्रभुका अन्न खाती है, जिन्दगी

भर उसके नमककी हलाली करतीहैं। भेड़िया एक दिन अपने बच्चेके लिये अपनी जान खतरेमे डाल देता है, परन्तु कुछ दिन बीतते न बीतते थोडेसे मुखरोचक शिकारके लिये वह अपने बच्चे पर भी भीषण आक्रमण कर बैठता है। बच्चेका साथ छूटने पर बहुतसे पशु उसे इस तरह भूल जाते हैं, कि फिर कभी उससे भेट होनेपर भी उसे नहीं पहचानते। जब तक पशु-शावक अपनी माताके संरक्षणमे रहता है, जबतक उसमे आत्म-निर्भरताकी शक्ति नहीं आ जाती, तबतक बच्चेकी माता अपनी तीक्ष्ण बुद्धिके अनुसार हृदयके उस संकेत, प्रकृतिके उस नीरव आदर्शका पालन करती है, जिसके बिना शिशुकी रक्षा होना असम्भव है। पशुओंकी इसी वृत्तिद्वारा, जो कि मानव-समाजमे ज्ञानके नामसे प्रसिद्ध है, उस पूत पवित्र निःस्वार्थ और अनन्त प्रेमकी सृष्टि हुई है, जिसमें ब्रह्म और ब्रह्माण्ड सभी व्याप्त है—जिसे हम मातृ-प्रेमके नामसे सम्बोधित करते हैं।

इस तरह सन्तान उत्पन्न होनेसे घर मातृ प्रेमके अलौकिक आलोकसे आलोकित हो उठता हैं। परन्तु कितने ही परिवारोंमे दरिद्रता अथवा किसी अन्य कारणसे बच्चे माता पिताओंके आनन्दका कारण न बन कर दुःखका कारण हो पड़ते हैं। इसे हम उनके दुर्भाग्यके अतिरिक्त और क्या कह

सकते हैं। यदि ऐसा न होता, तो जो बात पशुपक्षियों तकके लिये आनन्ददायक है, वह उनके लिये दुःखजनक क्यों हो पड़ती ?

संसारमे प्रत्येक मनुष्यको कितने बच्चे उत्पन्न करने चाहिये—यह प्रश्न भी परम विचारणीय है। यदि इसपर विचार करते समय हमलोग मानव समाजकी परिस्थितिपर दृष्टिपात करेंगे, तो हमें मालूम होगा, कि जिन स्त्रियोंका शिशु परिवार न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा बल्कि परिमित आकारका होता है, उन्हें उन स्त्री-रोगोंसे पीड़ित नहीं होना पड़ता, जिनसे निःसन्तान युवतियां और कुसन्तानवती प्रौढ़ायें बहुधा पीड़ित रहती हैं। हमारी समझमें सभी विषयोंकी तरह इसमे भी मध्यम पथ और मिताचार ही सबसे अधिक सुविधाजनक है।

हम यह जानते और मानते हैं, कि मिताचारका नियम भी सबके लिये एक समान नहीं हो सकता। परन्तु इस सम्बन्धमे अधिक न लिखकर केवल इतना ही कहना हम पर्याप्त समझते हैं, कि लोगोंको इस बातपर ध्यान रखना चाहिये, कि बाल बच्चोंसे न तो परिवार एकदम खाली ही रहे न ऐसा ही हो, कि अधिकताके कारण वे भाररूप हो पड़ें।

पारिवारिक अवस्थाके साथ साथ सन्तान उत्पन्न करते

समय प्रत्येक स्त्री पुरुषको अपने शारीरिक स्वास्थ्य, आर्थिक आय और सन्तानके पालन पोषण तथा रक्षण आदिके सामर्थ्य पर भी भली भांति विचार कर लेना चाहिये। किसी भी स्त्री पुरुषको दूसरेके शक्ति और सहायता पर निर्भर कर बाल बच्चोंके मातापिता होना कभी उचित नहीं है, क्योंकि जो मनुष्य आप ही असमर्थ और भार स्वरूप है, उसे समाजके ऊपर अयोग्य सन्तानका भार लादनेका क्या अधिकार है?

इसके अतिरिक्त कभी कभी मानव जीवन इतना अशान्त और अक्षम होता है, कि वैसी अवस्थामें सन्तानोत्पादन न करना ही अच्छा है। खासकर स्त्री या पुरुषमें जब कोई अंग विकार या रोग भीषण रूप धारण करे तब सन्तान उत्पन्न करना एक प्रकारसे पाप ही समझा जा सकता है। क्योंकि माता पिताकी रुग्नावस्थाके कारण उत्तराधिकारसूत्रसे सन्तान और फिर उसकी सन्तान भी उसी प्रकारका रोग और अयोग्यता लेकर जन्मती है, फलतः समूचे परिवार और कभी कभी समूचे देशमें वह व्याधि और अयोग्यता फैल जा सकती हैं। हां, यह खुशीकी बात है, कि ऐसे भयानक रोग भी समुचित चिकित्सा और स्वास्थ्यकर जीवनचर्यासे अच्छे किये जा सकते हैं।

४

वंध्यत्व और नपुंसकत्व

हमारे यहां जिन लोगोंको सन्तान नहीं होती, वे अपने भाग्यको कोसा करते हैं। कहते हैं, कि विधाताने हमारे भाग्यमे यह सुख नही लिखा। इसके अतिरिक्त बहुत लोग इसे ग्रहदशाका फेर समझते हैं और बहुत लोग भूतप्रेतका उपद्रव मानते है, परन्तु वैद्यक और विज्ञान शास्त्रसे इन बातोंको पुष्टि नहीं मिलती। डाक्टर, वैद्य और वैज्ञानिकोंके मतानुसार स्त्री पुरुषोकी दोषपूर्ण शारीरिक रचना और विविध रोगोंके ही कारण ऐसा होता है। हमलोग इन बातोंको न जाननेके कारण ही उपरोक्त बातें कहते है। इस अज्ञानताके कारण सबसे बड़ा अनर्थ यह होता है, कि लोग चिकित्सक द्वारा अपने रोगोका इलाज करानेके बदले इधर उधर भटकते और रुपया बरबाद करते फिरते हैं। कोई जपतप कराता है, कोई गण्डा ताबीजकी खोजमे भटकता है और कोई दरगाहोमे फूल

चित्र नं० २
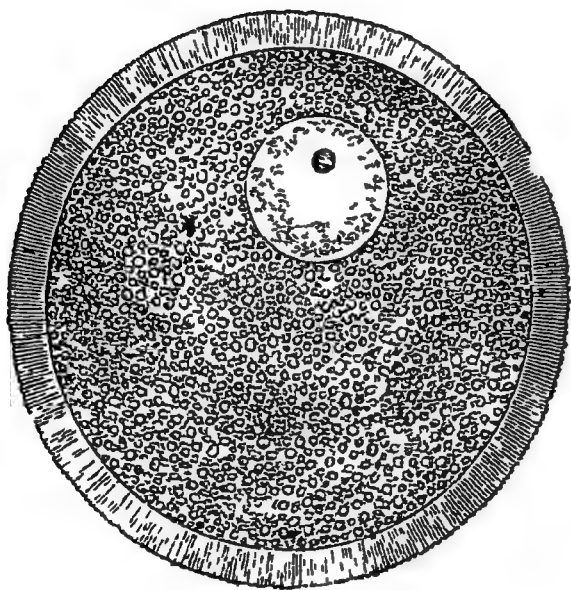
स्त्रीका डिम्ब किंवा बीज ।

[देखो पृष्ठ ७६]

चद्दर चढ़ाता फिरता है। स्त्रियां सण्डे मुसण्डे फकीरों व योगीयतियोंके पास लड़के मांगने जाती हैं और पुरुष जन्मपत्री दिखाते फिरते है। परन्तु इन बातोंसे कोई लाभ नहीं होता। लाभ केवल उसी हालतमें होता है, जब इन बातोंके साथ साथ जड़ी बूटियां खाई जाती हैं या किसी प्रकारकी चिकित्सा भी कराई जाती है।

ईश्वरने मनुष्यमात्रको जननेन्द्रियाँ दी हैं और प्रकृति उनका उपयोग करना सिखलाती है। जिस तरह खेतमे बीज बोने पर उसका अंकुरित होना स्वाभाविक है, उसी तरह जननेन्द्रियोका उपयोग करने पर सन्तान होना स्वाभाविक है। हाँ, क्षेत्र निःसत्व होने, भली भाँति जुताई या परिचर्या न होने, कुऋतुमे बोने या बीज खराब होनेके कारण जिस प्रकार पौधा नही जमता, उसी तरह शारीरिक दोष किंवा त्रुटियोंके कारण सन्तान भी उत्पन्न नही होती। बीज अंकुरित न होने पर जिस प्रकार हमलोग उसका प्रकृत कारण खोज निकालते हैं और उसे दूर करनेकी चेष्टा करते हैं उसी तरह सन्तान न होने पर वास्तविक कारण खोज कर उसका समुचित उपचार करना चाहिये। यदि उपचार करने पर भी सफलता न मिले तो आजन्म खिन्न रहनेकी अपेक्षा भाग्यको दोष देते हुए सन्तोष मान

लेना अधिक अच्छा है, क्योंकि सन्तोषके इस बराबर संसारमें और कुछ नहीं है।

अस्तु कहनेका तात्पर्य यह है, कि सन्तान न होनेका कारण दोषपूर्ण शारीरिक रचना और रोगोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शारीरिक रचनाके बहुतसे दोष ऐसे होते हैं जो सुधारे जा सकते हैं और बहुतसे ऐसे होते हैं जो नहीं सुधारे जा सकते। रोग भी साध्य और असाध्य दो प्रकारके होते हैं। साध्य रोग चिकित्सा कराने पर अच्छे हो जाते हैं और असाध्य अच्छे नहीं होते। इसके अतिरिक्त सन्तानोत्पत्ति-का कार्य स्त्री और पुरुष-दोनोंकी सम्मिलित चेष्टासे सम्पन्न होता है। जब तक दोनोंका मिलन नहीं होता तब तक सन्तान उत्पन्न नहीं होती। सन्तानोत्पत्तिके लिये दोनोंका शरीर निरोग और दोष रहित होना चाहिये। यदि दोनोंसे एकमें भी कोई दोष होता है, तो सन्तान नहीं होती, इसलिये सन्तान न होने पर केवल स्त्रियोंको ही दोषभागी न ठहरा कर पुरुषोंको भी अपने शरीरकी जाँच करानी चाहिये। यदि स्त्री-से दोष दिखाई दे तो स्त्रीको और पुरुषमें दोष दिखाई दे तो पुरुषको स्वयं अपनी चिकित्सा करानी चाहिये। यदि रोग असाध्य न होगा तो ऐसा करने पर सन्तान अवश्य होगी। स्त्रियोंको वंध्यत्व प्राप्त होनेके प्रधान कारण यह हैं :—

(१) जनन सम्बन्धी अङ्गोंकी अपूर्णता। किसी किसी स्त्रीके गर्भाशय ही नहीं होता। किसीका इतना छोटा होता है, कि वह किसी काम नहीं आता। किसीके अण्डाशय नहीं होता और किसीके प्रसव द्वारका मार्ग ही बन्द होता है। ऐसी स्त्रियोंके बहुधा स्तन भी नहीं होते। वे बड़ी होने पर भी देखनेमें छोटी मालूम होती हैं। कभी कभी ऐसी स्त्रियोंमें पुरुषके समान विपरीत लक्षण दिखाई देते हैं। किसी किसी स्त्रीका प्रसवद्वार बहुत ही छोटा होता है और किसीकी फलवाहिनी दोषपूर्ण किंवा अपूर्ण होती है। इस प्रकार गर्भस्थान किंवा उसके भिन्न भिन्न अंश अपूर्ण किंवा भलीभाँति विकसित न होनेके कारण स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(२) स्त्रियोंका प्रसवद्वार किंवा गर्भाशयका मुँह संकीर्ण होनेके कारण भी गर्भ संचार नहीं होता। अनेक स्त्रियोंको इसी दोष किंवा बीचमें पड़दा रहनेके कारण युवावस्था प्राप्त होनेपर रजोदर्शनके समय पीड़ा होती है, परन्तु रज बाहर न निकलकर भीतर ही संचित हुआ करता है और उसके कारण रक्तकी गाँठ, सूजन और पीड़ा प्रभृति अनेक व्याधियाँ हो जाती है। इस दोषवाली स्त्रियोंको सहवासके समय भी बड़ा कष्ट होता है। वंध्यत्वके यह

दोनो कारण स्त्रियोंमें जन्मसे ही होते हैं और बहुधा माता-पिताकी ओरसे उन्हें उत्तराधिकारमे मिलते है। इनमेसे पहला दोष तो चिकित्सा कराने पर भी दूर नहीं होता, इसलिये जिसकी शारीरिक रचनामे यह दोष हो, उसे सन्तानकी आशा छोड़ अपनी चित्त वृत्तिको किसी दूसरे काममें लगाना चाहिये।

(३) गर्भाशय किंवा जरायुके विचलित हो जानेसे भी स्त्रियोको गर्भ नहीं रहता। गर्भ संचार होनेके लिये जरायुका मुँह प्रसवद्वारके समीप, उससे मिला हुआ होना चाहिये। जरायु विचलित किंवा टेढ़ा हो जाता है, तो वीर्य ठिकानेपर नहीं पहुचता और इसलिये गर्भ संचार नहीं होता।

जरायु विचलित होनेके अनेक कारण है। उसके बन्धन ढीले पड़ने, उसके आकार किंवा वजनमे वृद्धि होने, उसके अन्दर रक्त संचित होने, प्रसव द्वार बाहर निकल आने या उसके अन्दर सूजन किंवा फोड़े फुन्सी हो जानेसे वह किसी ओर हट जाता है या टेढा हो जाता है। यदि सहवासके समय वेदना हो, रजस्राव पीड़ाके साथ अधिक किंवा कम होता हो, गर्भस्थान नीचे खिसका हुआ मालूम हो, सूजन दिखाई दे, गर्भसंचार न हो, पेशाब बन्द हो जाय

या बूंद बूंद हो, पेटमे कब्जियत रहे, बवासीरकोसी बीमारी हो जाय, चलने फिरनेसे कमर, पीठ व शिरमे पीड़ा हो और गर्भपात किंवा अकाल प्रसव हो, तो समझना चाहिये, कि जरायु विचलित हो गया है। यह सब लक्षण सब स्त्रियोमे एक साथ नहीं दिखाई देते, किन्तु इनमेंसे यदि कई लक्षण दिखाई दें तो समझना चाहिये, कि जरायु विचलित हो गया है। विचलित जरायु उङ्गलियोंके सहारे घुमाकर ठीक किया जाता है, परन्तु यह साधारण दाइयोंका काम नहीं है। इसके लिये किसी लेडी डाक्टरकी शरण लेनी चाहिये।

(४) अनेक स्त्रियोंमें जननेन्द्रियकी विषमताके कारण सहवास करनेकी क्षमता नहीं होती, इसलिये उन्हें वन्ध्यत्व भोग करना पड़ता हैं। सहवासकी क्षमता न होनेके अनेक कारण हैं। स्त्रियोंकी जननेन्द्रियमें एक पड़दा होता है। उसे योनिपटल कहते हैं। अनेक स्त्रियोका यह पड़दा आसानीसे फट जाता है किन्तु अनेकका इतना कठिन और मजबूत होता है, कि उसके कारण सहवास और रजस्रावमें बाधा पड़ती है। इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त सहवासकी क्षमता न होनेके और भी कई कारण हैं। अनेक स्त्रियोंका प्रसव द्वार

बहुत ही संकीर्ण होता है, अनेक स्त्रियोंके गुह्यांगमें किसी प्रकारका जख्म हो जाता है और अनेक स्त्रियोंका अंग बहुत छोटा या तंग होता है। इन दोषोंके कारण स्त्रियोंमें सह-वास सहन करनेकी जरा भी क्षमता नहीं रहती। उन्हें इससे बड़ा कष्ट होता है और कभी कभी सहवासके समय उन्हे मूर्च्छा तक आ जाती है।

इन दोनोंमेंसे योनिपटल तो बहुधा समागम करनेपर आप हीसे फट जाता है, यदि न फटे तो कटवाना पड़ता है। यदि अन्दर जख्म हो गये हों तो उन्हें आराम करनेके लिये दवा लगानी होती है और यदि प्रसव द्वार तंग होता है तो एक यन्त्र पहना कर प्रशस्त किया जाता है। जबतक यह दोष किंवा दोषके कारण दूर न हो जायें, तबतक सहवास करना मना है।

(५) गर्भाशयमें गांठ बँधने या चर्बी भर जानेसे भी गर्भसंचार नहीं होता। चतुर चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करानेपर यह रोग भी दूर हो जाता है।

(६) जिस प्रकार प्रसवद्वार संकीर्ण होता है, उसी प्रकार अनेक स्त्रियोंके गर्भाशयका द्वार भी संकीर्ण होता है, फलतः गर्भसंचार नहीं होता। गर्भाशयका द्वार संकीर्ण होनेके प्रधान कारण दो हैं—एक तो अनेक स्त्रियोंके गर्भाशय

का मुंह जल्दमे तो बन्द होता है और दूसरे कोई दख्म होनेके कारण वह बन्द हो जाता है। पहला दोष शस्त्र क्रियासे और दूसरा औषधोपचारसे दूर होता है।

(७) जो स्त्रियाँ बहुत मोटी हो जाती हैं, उन्हे भी गर्भ नहीं रहता और यदि रहता है तो बीचहीमे पतित हो जाता है। मुटाईके दो कारण हैं—एक तो भली भांति रजस्रावका न होना और दूसरा आलसी स्वभाव—दिनको सोना, काम धन्धा न करना आदि। ऐसी स्त्रियोका पेडू बढ़जाता हैं और कमर बड़ी मोटी हो जाती है। वे सदा वादी और कब्जियतकी शिकायत करती हैं। रजस्राव भली भांति नही होता, शिर घूमा करता है और हाथ पैरोमे सूजनसी मालूम होती है। अनेक स्त्रियोकी कमर और अनेक स्त्रियोकी जांघें मोटी हो जाती हैं। अनेक स्त्रियोके समूचे शरीरमे चरबी बढ़ जाती है परन्तु वे देखनेमे मोटी ताजी होनेपर भी शक्तीहीन होती हैं। ऐसी स्त्रियोको गर्भ नहीं रहता, परन्तु जिन स्त्रियोका समूचा शरीर एक समान मोटा, गठीला और बलवान होता हैं, वे मोटी होनेपर भी गर्भ धारण कर सकती हैं।

(८) स्त्री किंवा पुरुषोको प्रमेह किंवा गरमीकी बीमारी होनेसे भी बहुधा स्त्रियोको वन्ध्या रहना पड़ता है।

यह रोग संक्रामक होनेके कारण स्त्रियोंसे पुरुषको और 'पुरुषसे स्त्रियोंको हो जाते हैं। जिन स्त्रियोंके यह रोग होता है उन्हें गर्भसंचार तो होता हैं, परन्तु उनका रक्त दूषित हो जानेके कारण गर्भको भलीभांति पोषण नहीं मिलता। इस रोगसे ग्रसित अनेक स्त्रियोंको अकाल प्रसव होता है और यदि पूरे समयमें होता है. तो बच्चा रोगी होता है। किसीकी नाक सड़ जाती हैं, किसीके हाथ पैर और उंगलियां गल जाती हैं, किसीका मुंह फदफदा उठता है, किसीकी जननेन्द्रियां सड़ जाती हैं और किसीके समूचे शरीरमें चकत्ते पड़ जाते हैं। कभी कभी बहुत अच्छा और सुन्दर बच्चा उत्पन्न होता हैं, किन्तु कुछ ही घण्टे या दिनोंमें उसके समूचे शरीरमें गरमी फूट निकलती है और बादको वह बडे कष्ट पूर्वक प्राण त्याग करता है। यह सब गरमीके कारण और गरमी माता पिताकी अज्ञानता व पाशविक अत्याचारके कारण होती हैं। जिन लोगोंको यह निन्द्य व्याधि हो उन्हे भली भांति औषधोपचार कराये विना सन्तानोत्पत्तिके काममे न पड़ना चाहिये। औषधोपचारसे भी यह व्याधि दब जाती है, परन्तु निर्मूल नहीं होती, इसलिये इस व्याधिवालोंके लिये सन्तानोत्पत्ति कर रोगी और कुत्सित बच्चों ो न उत्पन्न करना ही वाञ्छनीय है।

इसके अतिरिक्त रजोदर्शनके समय सर्दी लगने, अनियमित रूपसे सहवास करने, प्रसवके समय कुप्रवन्ध व गड़वड़ होने, प्रसूतिग्रहमे ज्वर आने या ऐसे ही अन्यान्य कारणोंसे स्त्रियोंको गर्भाशयकी वीमारी हो जाती हैं, फलतः उन्हे वन्ध्यत्व भोग करना पड़ता है। किन्तु यदि जन्मसे ही शारीरिक रचनामे कोई दोप न हो, तो यह सव दोप समुचित उपचारो द्वारा दूर किये जा सकते हैं। स्त्रियोंको पुष्टिकारक भोजन देने, अच्छे जलवायुमे रखने और व्यायाम तथा औपधोपचार करानेसे उनके अपूर्ण अंग भी विकसित हो जाते है और उनमे गर्भ धारणकी क्षमता आ जाती है। जो लोग निःसन्तान हो उन्हे इन सव वातोपर विचार कर तदनुसार आचरण करना चाहिये।

नपुंसकता—पुरुपोंमें पुरुपत्वकी कमी या त्रुटिको नपुंसकता कहते है। नपुंसकता दो प्रकारसे होती है—एक जन्मसे और दूसरी कर्मसे। माता पिताके दोप या किसी शारीरिक दोपके कारण जो जन्मसे ही नपुंसकता प्राप्त होती है, वह कभी अच्छी नहीं होती। ऐसे पुरुप किसी कामके नही होते, परन्तु अधिकांश पुरुप अपने कर्मसे ही नपुंसक होते हैं। कर्म द्वारा प्राप्त नपुंसकता कई प्रकारकी होती हैं, जिसमेसे कई

प्रकारकी साध्य और कई प्रकारकी असाध्य गिनी जाती है।

कितने ही पुरुषोंमें स्तंभन शक्ति बहुत ही कम होती है और कितने ही पुरुषोंको वीर्यपात ही नहीं होता। यह सब दोष नपुंसकताके ही अन्तर्गत हैं और दुराचरणसे ही इनका उद्भव होता है। कितनी ही बार अतिविहारके कारण पुरुषोंकी शारीरिक शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है, कि उनके वीर्यमें सन्तानोत्पादनकी शक्ति ही नहीं रहती। ऐसे मनुष्य धातुपुष्टकी औषधियोंके फेरमें रुपये नष्ट करते हैं, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता। इस प्रकारकी दुर्बलताको दूरकर पुरुषत्व प्राप्त करनेका सबसे अच्छा और वास्तविक उपाय यही है, कि अत्याचार द्वारा पीडित श्रान्त एवम् निस्तेज नसोंको कुछ दिन विश्रान्ति दी जाय और साल दो सालतक उनसे जरा भी काम न लिया जाय। इतने समय तक नियमित आहार, विहार और ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए कालयापन करनेसे बहुत कुछ श्रेय होनेकी सम्भावना रहती है। अत्याचार बन्द न करनेसे चाहे जितना औषधोपचार किया जाय, उससे कोई लाभ नही होता।

कभी कभी मानसिक श्रम, चिन्ता और भय प्रभृति

आकस्मिक किंवा क्षणिक घटनाओंके कारण भी नपुंसकता या शिथिलता प्राप्त होती हैं। इस अवस्थामें मानसिक परिश्रम घटाकर मनको समुचित विश्राम देनेसे वीर्यवाहिनी नसे पुनः शक्ति सम्पन्न बनती हे। और अश्रद्धा किंवा घृणाका भाव उत्पन्न होनेसे भी कभी कभी यह अवस्था प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त आंत उतरने, अण्डवृद्धि होने या वृषणकी नसें फूल जानेसे भी नपुंसकता प्राप्त होती है। इन रोगोका समुचित उपचार करते हुए खानपान और दिन चर्यामे नियमितता रखनेमे बड़ा लाभ होता है। कभी कभी मूत्रद्वारमे गांठ पडनेसे स्त्री सम्बन्धमे किसी प्रकारकी बाधा नही पड़ती, परन्तु गांठके कारण वीर्य एक साथ ही बाहर न निकल कर बूंद बूंद टपकता हैं। यह दोष गांठका उपचार किये विना दूर नही होता।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार मेदवृद्धिके कारण स्त्रियोंको वन्ध्यत्व प्राप्त होता है, उसी प्रकार पुरुषोंका भी पुरुषत्व नष्ट हो जाता है। इस अवस्थामे पौष्टिक औषधियां और पौष्टिक भोजन खानेसे लाभके बदले जल्दी हानि होती है। ऐसे मनुष्योंको प्रतिदिन शरीर मलकर खूब स्नान करना चाहिये और खुली हवामे खूब घूमना चाहिये। उन्हें केवल वही खाना चाहिये जो खूब हलका और सादा हो।

ऐसा करनेसे कुछ दिनोमे मेद कम हो जाता है और पुरुषत्व की पुनः प्राप्ति होती है।

वैद्यक ग्रन्थोके रचयिता भिन्न भिन्न ऋषियोंने नपुंसको-को भिन्न भिन्न भागोंमे विभाजित किया है। महामुनि चरकके मतानुसार नपुंसक चार प्रकारके होते हैं। सुश्रुतने उन्हें पांच भागोमें विभक्त किया है और भाव मिश्रने सात भेद निर्धारित किये हैं। चरक संहितामे वर्णित नपुंसकोंके नाम व लक्षण इस प्रकार हैं :—

(१) बीजोपघात नपुंसक—ठंढी, रूखी, खट्टी, कठिन और खराब चीजोंके सेवन करनेसे, अजीर्ण होने पर भी भोजन करनेसे, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, विषयलम्पटता और स्त्रीकी इच्छा न होनेपर उसके साथ संयोग करनेसे, रसादि सप्त धातुओंका क्षय होनेसे, वातादि दोषसे, शारी-रिक शक्ति घट जानेसे, उपवासादि कठिन व्रत करनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, काम-विज्ञानकी अज्ञानतासे तथा वमन वोरेचनादि पञ्चकर्मके अप्रचारसे पुरुषोका वीर्य क्षय होता है। इस अवस्थामे उनका शरीर पोला पड़ जाता और रूप, रङ्ग तथा बल नष्ट हो जाता है। ऐसे पुरुषके वीर्यसे शायद ही सन्तान उत्पन्न होती है। उसे सहवास पर रुचि भी नही रहती। कभी कभी ऐसे मनुष्यको

कमला, पाण्डु और श्वास सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। चरक मुनिने ऐसे मनुष्योंको बीजोपघात नपुंसकके नामसे सम्बोधित किया है।

(२) ध्वजभङ्ग नपुंसक—बहुत खट्टा, नमकीन या विरुद्ध भोजन करनेसे, अजीर्ण होनेपर भी भोजन करनेसे, खूब जल पीनेसे, बहुत बारीक पिसा हुआ अन्न खानेसे, भारी किंवा जड़ पदार्थोंका सेवन करनेसे, किसी व्याधिके कारण दुर्बलता बढ़नेसे, कन्या अर्थात् जिसे ऋतु दर्शन न हुआ हो उस स्त्रीके साथ संयोग करनेसे, गुदमैथुन और हस्तमैथुनसे, जिस स्त्रीकी जननेन्द्रियपर बड़े बड़े बाल हो, जिस स्त्रीने बहुत दिनोंसे सहवास न किया हो, जिस स्त्रीके शरीर किंवा जननेन्द्रियमें दुर्गन्ध आती हो और जो स्त्री प्रदरादिक व्याधि-ओंसे ग्रस्त हो उसके साथ संयोग करनेसे, पशुयोनिमैथुनसे, जननेन्द्रियपर चोट लगनेसे, उसे साफ न रखनेसे, उसे बढ़ानेके विचारसे लेप, पट्टी और हानिकारक तिलाओंके व्यवहारसे तथा वीर्य स्खलित होनेके समय उसे रोकनेकी चेष्टा करनेसे जननेन्द्रियकी नसें कमजोर पड़ जाती है, फलतः पुरुषोंको नपुंसकता प्राप्त होती है।

ध्वजभङ्ग नपुंसककी जननेन्द्रियमें पीड़ा, सूजन और लाली दिखाई देती है। कभी कभी विषैली फुन्सियां निकल

जाती है और नाड़ीको पक जाती है। इन फुन्सियोंसे चावलके धोवनके समान रसी निकलती है और जननेन्द्रिय कम किंवा कड़ा हो जाता है। इस रोगके कारण ज्वर, तृषा, भ्रम, मूर्च्छा, दाह और खुजली आदि चिह्न दिखाई देते हैं। कभी कभी जननेन्द्रिय पर जो जख्म होते हैं उनमें कीड़े तक पड़ जाते हैं। इन जख्मोंसे जो रक्त निकलता है उसमें बहुत दुर्गन्ध आता है। यह विकार बढ़ जानेसे जननेन्द्रियका निरोत्थान, जननेन्द्रिय या अण्डकोष नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य सदाके लिये बेकार हो जाता है।

(३) जरासंभव नपुंसक—मनुष्योंकी तरुण, मध्यम और वृद्ध—यह तीन अवस्थायें होती हैं। वृद्धावस्थामें मनुष्यका वीर्य कम हो जाता है और जो रहता है, उसमें भी सन्तानोत्पादक कीटाणुओंका अभाव हो जाता है। उपयुक्त शुक्रकीटोंके अभावसे, सप्त धातुओंके क्षीण हो जानेसे, पौष्टिक औषधियोंका सेवन न करनेसे, शारीरिक शक्ति रूप और इन्द्रियोंकी क्षीणतासे, उपवास और शारीरिक परिश्रम करनेसे तथा वृद्धावस्थाके कारण जरासंभव नपुंसकता प्राप्त होती है। जरासंभव नपुंसक वीर्य और बल रूप हीन हो जाता है।

(४) क्षयज नपुंसक—अत्यन्त चिन्ता, शोक, क्रोध,

भय, ईर्ष्या और उद्वेगके कारण, युवावस्थामें भी शरीर दुर्बल रहनेसे, रूक्ष खानपान और औषधियोंका सेवन करनेसे, शरीर कृश होनेपर भी उपवासादि व्रत कर निराहार रहनेसे, मनको तृप्ति न हो ऐसा भोजन करनेसे तथा बहुत कम खानेसे शरीरकी सप्तधातुयें क्षीण हो जाती हैं। ऐसे क्षीण-धातु पुरुषको क्षयज नपुंसक कहते हैं।

भावमिश्रने कर्मसे नपुंसक होनेवाले पुरुषोंके जो सात भेद अपने भावप्रकाश नामक ग्रन्थमें वर्णन किये हैं, वह यह हैं :—

(१) मानस नपुंसक—सहवासके समय भय, शोक, क्रोध, लज्जा किंवा ग्लानि उत्पन्न होनेसे तथा मैली कुचैली और हाव भाव विहीन स्त्रीके साथ सहवास करते समय अप्रसन्नता उत्पन्न होनेसे कामवृत्ति नष्ट होकर जिसे शिथि-लता प्राप्त होती है, उसे मानस नपुंसक कहते हैं।

(२) पित्तज नपुंसक—कड़वी, खट्टी, नमकीन और गरम तासीरकी चीजोंके अत्यन्त सेवनसे पित्तवृद्धि होकर जिस पुरुषका वीर्य नष्ट हो जाता है, उसे पित्तज नपुंसक कहते है।

(३) शुक्रक्षय नपुंसक—जो पुरुष सदैव स्त्री संग करता है, परन्तु वीर्य वृद्धिका कोई उपाय नहीं करता, उसे

वीर्य क्षयके कारण नपुंसकता प्राप्त होती है, अतः उसे शुक्र-क्षय नपुंसक कहते हैं।

(४) लिंग रोगज नपुंसक—गुह्येन्द्रियमे उपदंश प्रभृति रोग होनेके कारण जो पुरुष नपुंसक हो जाता है, उसे लिंग-रोगज नपुंसक कहते हैं।

(५) वीर्य वाही शिराच्छेदज नपुंसक—जिन शिराओंमे वीर्य रहता है, उन शिराओंमे छिद्र होजानेके कारण जिन्हें नपुंसकता प्राप्त होती है, उन्हें वीर्यवाही शिराच्छेदज नपुंसक कहते हैं।

(६) शुक्रस्तंभज नपुंसक—सहवास करनेका सामर्थ्य और इच्छा होने पर भी जो सहवास न कर ब्रह्मचर्य पालन करता है, उसकी कामवृत्ति नष्ट हो जाती है फलतः ऐसे पुरुषको शुक्रस्तंभज नपुंसक कहते है।

(७) सहज नपुंसक—जिस पुरुषमे जन्मसे ही सहवास करनेकी शक्ति नही होती, उसे सहज नपुंसक कहते हैं।

हम पहले ही कह चुके, कि जन्मसे उत्पन्न होनेवाली नपुंसकता दूर नही होती, परन्तु कर्म द्वारा प्राप्त नपुंसकता—यदि असाध्य न हो गई हो तो—समुचित उपचार करनेसे थोड़ी बहुत अवश्य दूर होती है। परन्तु ध्यान रहे

चित्र नं० ३ और ४

पुरुषका वीर्यविन्दु और शुक्रकीट।

[देखो पृष्ठ ८०]

क औषधोपचार सब शर्म छोड़कर किसी चतुर और अनुभवी वैद्य किंवा डाक्टर द्वारा ही कराना चाहिये। बाजारू और अखबारी दवाओंसे लाभके बदले उलटी हानि होती है और रहासहा पुरुषत्व भी मिट्टीमें मिल जाता है। इसलिये इस सम्बन्धमे खूब सावधान रहना चाहिये।

वैद्यक ग्रन्थोंमें जन्मसे प्राप्त होनेवाली नपुंसकताका सबसे बड़ा कारण विपरीत रति बतलाया गया है। स्त्रीको ऊपर रखकर रति करनेको विपरीत रति कहते हैं। इस प्रकार रति करनेसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसमे विपरीत याने पुरुषमें स्त्रीके और स्त्रीमे पुरुषके लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले पुरुषमें वीर्य नही होता। वह स्त्रियोंके समान हाव भाव करता है। लोग ऐसे मनुष्य-को जनाना या हीजड़ा कहते हैं। अतः जो अपनी सन्तानको इस प्रकार हीन न बनाना चाहते हों, उन्हें भूल कर भी विप-रीत रतिके फेरमे न पड़ना चाहिये।

इन कारणोंके अतिरिक्त अजीर्ण किंवा तीसो दिनकी बदहजमी, पक्षाघात, प्रमेह, गुरदेका वरम प्रभृति कारणोंसे भी नपुंसकत्व किंवा वन्ध्यत्व प्राप्त होता है। पाठकोको इन सब कारणोंपर विचार करनेसे विश्वास होगा, कि अधिकांश स्त्री पुरुषोंको अपने कर्मसे और कुछ स्त्री पुरुषोंको माता

पिताके दोषके कारण जन्मसे वन्ध्यत्व या नपुंसकत्व प्राप्त होता है। इसमें भाग्य किंवा ईश्वरको दोष देने योग्य कोई बात दिखाई नहीं देती। संसारमें जैसे सर्वत्र कर्मकी तूती बोलती है, उसी तरह इस विषयमे भी उसका अटल नियम कार्य करता है। "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।" दुष्कर्मका फल अवश्य भोग करना पड़ता है। यदि अपने ही कर्मसे, अपनी ही भूल या अज्ञानतासे वन्ध्यत्व किंवा नपुंसकत्व प्राप्त हुआ हो, तब तो शिकायत करनेका स्थान ही नहीं है, किन्तु जिन्हें माता पिताकी ओरसे यह रोग उत्तराधिकारमे मिला हो, उन्हें उसे अपने पूर्व संस्कारका फल समझ कर सन्तोष माननेके सिवा और कोई उपाय नहीं हैं। अपनी सन्तानको इस प्रकार हीनवीर्य बनानेके लिये माता पिता जिम्मेदार हैं और इसके लिये उन्हें ईश्वरको उत्तर अवश्य देना होगा।

एक वार फिर हम यह बात दोहरा देना उचित समझते हैं, कि वन्ध्यत्व किंवा नपुंसकत्व बहुधा अपने कर्मसे ही प्राप्त होता हैं, इसलिये संसार सुख और सन्तानकी इच्छा रखनेवाले विवाहित और खासकर तरुण स्त्री पुरुषोंको आहार विहारकी मर्यादा उल्लंघन कर विलासिताके फेरमे कदापि न पड़ना चाहिये। भोजन जहां तक हो सादा,

हलका और निरामिष हो। पुष्टईके लिये घी और दूध यही चीजें अपनी शारीरिक अवस्थाके अनुसार उचित परिमाणमें ग्रहण करनी चाहिये। उन्हें समझ रखना चाहिये, कि खानेके लिये जिया नहीं जाता, बल्कि जीनेके लिये खाया जाता है। खानपानमें इस प्रकार नियमितता रखनेके अतिरिक्त आरोग्य सम्बन्धी अन्यान्य नियमोंपर भी ध्यान रखना चाहिये। हवा, धूप और प्रकाशवाले स्थानमें सोना, बैठना व रहना, एक दो बार भलीभांति शरीर मलकर नहाना, अनीति, दुराचार और व्यभिचारसे दूर रहना और एक पत्नी व्रत पालन करना, स्वास्थ्य और समाज दोनोंकी दृष्टिसे अच्छा है। जो दुष्कर्म करते हुए डरते हैं, जो यह समझते हैं, कि प्रत्येक बुरे कामका—चाहे वह छोटेसे छोटा क्यों न हो—फल अवश्य मिलता है, वे स्वास्थ्यको नष्ट करने वाले पातक कदापि नहीं करते। संसारमें ऐसे मनुष्योंको कभी किसीके सामने वन्ध्यत्व या नपुंसकत्वकी शिकायत नहीं करनी पड़ती। उनकी गोद सदा सुन्दर और स्वस्थ सन्तानोंसे भरी रहती हैं। उन्हें देखकर वे अपनेको धन्य समझते हैं और अपनी जीवन-यात्रा सानन्द समाप्त करते हैं।

हां, इसे हम प्रकृतिकी क्रूरता अवश्य कह सकते हैं, कि

वह उन अबोध और अज्ञान मनुष्योंतकको दण्ड दिये विना नहीं रहती, जो केवल अपनी अज्ञानताके ही कारण जीवन और स्वास्थ्य, धन और यौवन नष्ट करनेवाली भयंकर भूलें कर बैठते हैं। यदि भूल और अज्ञानताके कारण किये हुए दोषोंको क्षमा करनेकी उसमे क्षमता होती, तो आज इस विषयको लेकर ग्रन्थ लिखनेकी आवश्यकता न पड़ती; परन्तु बात इससे एकदम उलटी है। प्रकृति अज्ञानियोंको भी निर्दयता पूर्वक उसी तरह अपनी चक्कीमे पीस डालती है, जिस तरह वह जानबूझ कर अपराध करनेवालोंको पीसती है। इसीलिये इन गोपनीय समझी जानेवाली बातोंको ग्रन्थरूपमे उपस्थित करनेकी आवश्यकता पडती है। लोगोंको इनके पठन पाठनसे स्वयं लाभ उठाना चाहिये और दूसरोका भी अज्ञान दूर करना चाहिये। यह एक ओर कर्त्तव्य है और दूसरा ओर परोपकार।

५

मनचाही सन्तान

जिस प्रकार संसारके यावतीय कार्य सुचारुरूपसे चलानेके लिये प्रकृतिने अटल नियम निर्धारित कर रक्खे हैं, उसी तरह सन्तानोत्पत्तिके सम्बन्धमें भी कतिपय प्राकृतिक नियम हैं और भली बुरी, गुणी अवगुणी, दुर्बल सबल किंवा अन्य प्रकारकी सन्तान उन्हीं नियमोंके अनुसार उत्पन्न होती है।

प्रत्येक मनुष्य चाहता है, कि मेरी सन्तान उत्तम हो। मेरे बच्चे हृष्टपुष्ट, सुन्दर और प्रतिभाशाली हों, परन्तु ऐसे बच्चे किस तरह पैदा किये जा सकते हैं, यह वे नहीं जानते। उन्हें यह भी नहीं मालूम, कि ऐसे बच्चे उत्पन्न करना मनुष्यके अधिकारकी बात है। वे यह नहीं जानते, कि मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेका एक शास्त्र है और

उस शास्त्रके आदेशानुसार आचरण करनेसे मनुष्य मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकता है। जिन लोगोंके हृदयमें ऐसा संस्कार जमा हुआ है, कि सन्तान ईश्वर हीके देनेसे प्राप्त होती है, उन्हें यह बात सुनकर हँसी आवेगी। परन्तु हम ईश्वरकी सत्ता व महत्ताको स्वीकार करते हुए उन्हें विश्वास दिलाते हैं, कि परम कृपालु परमात्माने जैसे सब कामोंके लिये ढर्रे बना रक्खे हैं, उसी तरह इसका भी एक ढर्रा किंवा नियम है और उस नियमके अनुसार ही भली या बुरी सन्तान उत्पन्न होती है। जो जैसा करता है, वैसा उसे मिलता है।

मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये बहुत पहलेसे तैयारी करनी होती है। इस शास्त्रका सबसे बड़ा और पहला नियम—ब्रह्मचर्य किंवा आत्म-संयम और सदाचार है। जो स्त्री पुरुष किशोरावस्थासे लेकर यौवनकालतक ब्रह्मचर्य नहीं धारण करते, उनके इस पवित्र कार्यमें "प्रथमग्रासे मक्षिका-पात" होता है। अच्छी सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनेवालोंको न केवल अविवाहित अवस्थामें ही ब्रह्मचारी और सदाचारी रहना चाहिये, बल्कि विवाह होनेके बाद भी केवल ऋतुकालमें ही और हो सके तो केवल सन्तानोत्पत्तिके उद्देश्यसे ही सहवास करना चाहिये। जो लोग किशोरा-

वस्थामें नाना प्रकारके शारीरिक अत्याचारों द्वारा वीर्य नष्ट करते हैं और विवाह होनेके बाद अतिविहारमें प्रवृत्त होते हैं, वे यह बात अच्छी तरह समझ रक्खें, कि वे उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेकी योग्यता खो देते हैं।

इस शास्त्रका दूसरा मुख्य नियम है—जीवन-संगीकी खोज। स्त्रीको ऐसा पुरुष और पुरुषको ऐसी स्त्री पसन्द करनी चाहिये, जो पूर्ण निरोग और अपनी प्रकृतिके अनुरूप हो; किसीमें किसी प्रकारका शारीरिक या मानसिक रोग न हो, कोई किसी प्रकारके दुर्व्यसनका आदी न हो और किसीमें कोई ऐसा दोष न हो, जिसका सन्तान पर प्रभाव पड़नेकी सम्भावना हो। विवाह भी युवावस्थामें होना चाहिये और युवावस्थाका निर्णय आरोग्यशास्त्रके नियमानुसार होना चाहिये। अच्छी सन्तान उसी अवस्थामें उत्पन्न हो सकती है, जब माता और पिता दोनोंका शारीरिक विकास पूर्णताको प्राप्त हो। ध्यान रहे कि यह विकास स्त्रियोंमें १६ और पुरुषमें २५ वर्षकी अवस्थाके पहले पूर्ण नहीं होता। इस अवस्थाके पहले विवाह भले ही हो जाय, परन्तु सन्तानोत्पत्तिका कार्य कदापि आरंभ न होना चाहिये।

तीसरा नियम है—उत्तराधिकार सूत्र। वैज्ञानिकोंने खोजकी है, कि गर्भावस्थाके पहले पांच महिनोंमें माता

पिता—खासकर माताकी शारीरिक और पिछले चार महिनोंमे उसके मानसिक विचारोंका गर्भस्थ बालकपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये सन्तान उत्पन्न करते समय स्त्री पुरुषोंको अपनी जीवनचर्य्या ऐसी बनानी चाहिये, जिससे स्वास्थ्यमें वृद्धि हो। इसके लिये आहार विहार-पर नियन्त्रण रखना होता है। गर्भपर मानसिक प्रभाव डालनेके लिये गर्भाधानके समय माता पिता दोनोंको और गर्भावस्थामें खासकर माताको अपने आचार विचार शुद्ध रखने पड़ते हैं। उसे एक भी शारीरिक, मानसिक और वाचिक कार्य्य ऐसा न करना चाहिये, जिससे गर्भस्थ बालकपर बुरा प्रभाव पड़े।

इस प्रकार मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये विवाहके पहले हीसे तैयारी करनी होती है और बच्चा होनेके बाद भी लालनपालन करते हुए उसे समुचित शिक्षा दीक्षा देनी पड़ती है। ऐसा करनेसे मनचाही सन्तानकी प्राप्ति होती हैं। हमें खेद है, कि आजकल ब्रह्मचर्य किस तरह पालना चाहिये, इन्द्रिय-निग्रह किस तरह करना चाहिये, किस अवस्थामे कैसा आहार विहार रखना चाहिये, स्त्रियों-को कैसा पुरुष और पुरुषको कैसी स्त्री पसन्द करनी चाहिये, उसमें कौन कौन गुण देखनेके चाहिये, बच्चोपर

गर्भसंचारसे लेकर प्रसव कालतक किस तरह प्रभाव डालना चाहिये, बच्चोंमें कोई खास बात किस तरह पैदा करनी चाहिये, उन्हें सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और निरोग किस तरह बनाना चाहिये—प्रभृति बातें हम इस पुस्तकमे विस्तारपूर्वक अंकित नहीं कर सकते। यह एक स्वतन्त्र विषय हैं और इसपर एक स्वतन्त्र पुस्तक होनी चाहिये—यह सोचकर हमने इस विषयकी ओर केवल इशारा ही भर किया है। जिन्हें अधिक जाननेकी इच्छा हो, उन्हें हमारी "मनचाही सन्तान" नामक पुस्तक पढ़नी चाहिये।

फिर भी, यहां संक्षेपमें हम यह बतला देना परमावश्यक समझते हैं, कि माता पिताओंको सन्तान उत्पन्न करनेके पहले उसके लिये तैयारी अवश्य करनी चाहिये। इस तैयारी का समय कमसे कम एक मासका हो। पुरुषको चाहिये, कि इतने समयतक पूर्ण ब्रह्मचारी रहे, शरीरमे यदि कोई रोग हो तो उसका उपचार करे, मानसिक चिन्ताके जो कारण हों उन्हे दूर करे, किसी दुर्व्यसनकी आदत हो तो उसका त्याग करे, सदाचारका पालन करे और अपनी स्त्रीपर प्रेम रक्खे। स्त्रीको चाहिये, कि इस समयमें अपने तन व मनको स्वस्थ बनावे, दुर्व्यसनका त्याग करे, आहार विहारपर नियन्त्रण रक्खे, सदाचारका पालन करे और अपने पतिपर

प्रेम रक्खे। स्त्री और पुरुषको इस अवधिमें भिन्न भिन्न शैय्याओंपर सोना चाहिये और जहांतक हो सके, उपरोक्त नियमोंका पालन कर अपने तन व मनको शुद्ध और निरोग बनाना चाहिये।

इस प्रकार सन्तानोत्पत्तिकी तैयारी कर ऋतुकालके अच्छे दिनोंमें पति पत्नीको सहवास करना चाहिये। गर्भाधानके लिये सबसे अच्छी ऋतु वसन्त और सबसे अच्छा समय रात्रिका चतुर्थ प्रहर है। इन सब नियमोंपर ध्यान रख, सन्तानकी कामना करते हुए सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। परन्तु ऐसा करनेके पहले पुरुषको यह अवश्य सोच लेना चाहिये, कि स्त्रीमें गर्भाधारणकी योग्यता हैं कि नहीं। यदि स्त्रीका स्वास्थ्य खराब हो, घरमें सन्तानोंका बाहुल्य हो, आर्थिक अवस्था अच्छी न हो अथवा किसी दूसरे कारणसे स्त्री गर्भाधारणके लिये तैयार न हो, तो उसपर जबर्दस्ती यह बोझ न लादना चाहिये।

गर्भ संचार

यह तो हम सभी जानते हैं, कि स्त्री पुरुषका संयोग होनेपर गर्भ संचार होता है, परन्तु संयोग होनेके बाद क्या होता है, किस प्रकार गर्भ रहता है, किस प्रकार उसकी वृद्धि होती है—यह हमलोग नहीं जानते। कभी कभी केवल एक ही वार संयोग करने पर और कभी कभी वर्षों तक सम्बन्ध रहनेपर भी गर्भ संचार क्यों नहीं होता—यह भी हम नहीं जानते। हम सन्तान उत्पन्न करते हैं, परन्तु उस कार्यकी बारीकियां और खूबियां नहीं समझते। भला बतलाइये, कि जिस किसानको खेती किस तरह करनी चाहिये, इसका ज्ञान न हो, जिस कुम्हारको बर्तन बनाने या जिस बढ़ईको बसूला थामनेका शऊर न हो, उसे संसारमें सफलता कैसे मिल सकती है। प्रत्येक मनुष्यको यदि वह अपने कार्यमें सफलता चाहता हो, तो अपने कर्म, अपनी

वृत्ति या अपने व्यवसायका समुचित ज्ञान होना चाहिये। हमारी यह अज्ञानता हमारे लिये बहुत ही घातक है। इस अज्ञानताके कारण हमलोग न जाने कितने पातक और कितनी भूलें करते हैं। उन भूल और पातकोंके फल स्वरूप हम लोगोंका स्वास्थ्य और यौवन नष्ट होता है, हजारों स्त्रियोंको गर्भपात और गर्भस्राव होते हैं और अनेक मनुष्यों को अन्धी बहरी, लूली लंगड़ी, कानीकुबड़ी, निस्तेज, दुर्गुणी और रोगी सन्तान प्राप्त होती इसलिये इस विषयका ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है।

गर्भ संचार किस प्रकार होता है—यह बहुत ही विवाद-ग्रस्त विषय है। हमारे ऋषिमुनिओंने, युनानी हकीमोंने और अर्वाचीन डाक्टर व वैज्ञानिकोंने इस सम्बन्धमे बड़ी जांच- अपनी अपनी सम्मतियां अंकित की हैं। सबकी बातें किसी अंश तक एक दूसरेसे मिलती हैं, परन्तु सब बातें सब अंशोंमे नहीं मिलतीं। हम सबसे अन्तिम खोजके अनुसार इस विषयको अंकित कर रहे हैं। यदि पाठकगण चित्रोंके सहारे इस विषयको समझनेकी चेष्टा करेंगे, तो उन्हें समझनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई न पड़ेगी। यह भी बतला देना आवश्यक है, कि हम केवल वही बातें लिख रहे हैं, जो साधारण बुद्धिके पाठक भी आसानीसे समझ

सकें। डाक्टरी और विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली उन गहन बातोंकी जालमे अपने पाठकोको उलझाना हम उचित नहीं समझते, जिन्हें समझनेके लिये उन्हें अधिक माथा लड़ाना पड़े। जिन पाठकोंको इससे अधिक जाननेकी इच्छा हो उन्हें इस विषयको स्वतन्त्र पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिये।

गर्भसंचार किस प्रकार होता है—यह बात स्त्रियोंके कुछ प्रजनन अंग, स्त्री बीज और पुरुषके वीर्यका वास्तविक रूप समझे बिना समझमें नहीं आ सकती, इस लिये हम इन्हीं तीनोंका संक्षेपमें वर्णन करते हैं।

स्त्रीके प्रजनन अंग—(देखिये चित्र नं० १) स्त्रियोंके वस्तिगव्हर किंवा पेडूमे यह सब अंग होते हैं। चित्रमे एकका अंक जननेन्द्रियका बाह्यद्वार बतलाता है। जहां दो का अंक है, जननेन्द्रियका दूसरा शिरा रहता है। इस शिरेसे गर्भाशयका मुंह मिला रहता है। तीनका अंक गर्भाशय बतलाता है। इसीका दूसरा नाम जरायु है। इसका आकार अमरूद, नासपाती या बैंगनके समान होता है। यह अन्दरसे पोला परन्तु बाहरसे चिपटा होता है। जिन स्त्रियोंको एक भी बच्चा न हुआ हो, उनके गर्भाशयकी लम्बाई ३ इञ्च, चौड़ाई दो इञ्च, मोटाई एक इञ्च और वजन

ढाईसे लेकर साढे तीन तोले तक होता है। जिन स्त्रियोंके बच्चे हो जाते हैं, उनके गर्भाशयका आकार इससे कुछ बड़ा होता है।

चारका अंक दो बड़े बन्धनोंको बतलाता है। यह बन्धन जबतक ढीले नहीं पड़ते, तबतक गर्भाशय अपने स्थानसे विचलित नहीं होता।

पांचका अंक दो अण्डाशय किंवा डिम्ब ग्रन्थियोंको बतलाता है। स्त्रीके इन अण्डाशयोंका आकार बदामके समान होता है। इन दोनोंके अन्दर अगणित डिम्ब किंवा अण्डे भरे रहते हैं। इन डिम्बोंमेंसे प्रतिमास प्रायः रजो दर्शनके समय एक डिम्ब निकलता है। इसी डिम्बसे पुरुषके वीर्यका योग होनेपर गर्भ संचार होता है। यह डिम्ब दोनों अण्डाशयोंसे बारी बारीसे निकलते हैं। पहिले महिनेमें यदि दाहिने अण्डाशयसे निकलता है तो दूसरेमें बायेंसे। यही क्रम आजीवन चला करता है।

छः का अंक फलवाहिनी किंवा दो डिम्ब प्रनालियोंको बतलाता है। डिम्ब भलीभांति परिपक होकर जब अण्डाशयसे बाहर निकलता है, तब इन्हीं प्रनालियों द्वारा गर्भाशयमे पहुंचता है। इन प्रनालियोंकी लम्बाई ४ इञ्चके करीब होती है। उनका एक शिरा गर्भाशयसे मिला हुआ और

दूसरा अण्डाशयके पास रहता है। अण्डाशयकी ओरका शिरा गुच्छेदार होता है और उसका कुछ अंश अण्डाशयसे जुड़ा रहता है। इसीके सहारे डिम्ब अण्डाशयसे निकलते ही इस प्रनालोमे चला जाता है। गर्भाशयके पास इनकी मोटाई एक इञ्चके छठे और अण्डाशयके पास तीसरे हिस्सेके करीब होती है। यह भीतरसे बहुत तंग होती हैं। गर्भाशयके पास नलीका भीतरी व्यास एक इञ्चके चौबीसवें और डिम्बग्रन्थिके पास बारहवे हिस्सेके करीब होता है।

अब एक बार पाठकगण चित्रपर फिर दृष्टिपात करें। पांचका अंक अण्डाशय, और छः का अंक दो डिम्ब प्रनालियोंको बतलाता है। अण्डाशयसे प्रतिमास एक परिपक्क डिम्ब किंवा बीज बाहर निकलकर गुच्छेवाले शिरेमे होकर डिम्बप्रनालियोंमे पहुचता है और वहांसे नं० ४ वाले गर्भाशयमें जाता है। गर्भाशयमे वह दस बारह दिनतक पुरुषके वीर्यको राह देखता है। यदि वीर्य आ मिला तो डिम्ब गर्भित हो जाता है, अन्यथा दस बारह दिनके बाद वह जननेन्द्रियके मार्गसे बाहर निकल जाता है।

अब आप चित्र नम्बर २ देखिये। यह स्त्रीके डिम्ब किंवा बीजका चित्र है। यह डिम्ब इतना छोटा होता है, कि साधारण चर्मचक्षुओसे केवल एक सूक्ष्म बिन्दुके समान

दिखाई देता है। इसका व्यास एक इञ्चके १४० वें हिस्सेसे लेकर १५० वें हिस्से तक होता है। उङ्गलीके एक नखपर ऐसे हजारों डिम्ब रक्खे जा सकते हैं। परन्तु ईश्वरकी कैसी विचित्र लीला है कि इससे एक मनुष्यका जन्म होता है।

जिस प्रकार मुर्गीके अण्डेमे जर्दी और सफेदी होती है उसी प्रकार इस अण्डेमें भी दो प्रकारका पदार्थ होता है। एक बड़े गोल दानेके समान और दूसरा बिन्दुओंके रूपमे दिखाई देता है।

चित्र नं० ३ पुरुषके वीर्य [बिन्दुका है। पुरुषके एक वीर्य बिन्दुमे चित्र नं० ४ के समान हजारो जन्तु होते हैं। इन्हें शुक्रकीट कहते हैं। इनके बड़ा सा अण्डाकार शिर और लम्बीसी पूंछ होती है। यह पूंछ हिलाते हुए उछलते कूदते सदैव आगेकी ही ओर चलते हैं। इनकी लम्बाई एक इञ्चके हजारवें भागसे लेकर ५०० वें भाग तक और शिरकी मोटाई ६ हजारवें भागके करीब होती हैं। पुरुषके वीर्यमे इनकी संख्या सदा एक समान नहीं होती। यह कभी बहुत ज्याद: कभी कम और कभी बिलकुल ही नहीं दिखाई देते। बलवान और स्वस्थ शुक्रकीट बड़ी तेजीसे दौड़ते और निर्बल धीरे धीरे चलते हैं। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि एक बारके मैथुनमें जितना वीर्य निकलता है उसमें १८०००००० से

चित्र नं० ५

पुरुषका शुक्रकीट।

यह अपने वास्तविक आकारसे २००० गुना बड़ा है।

चित्र नं० ६ और ७
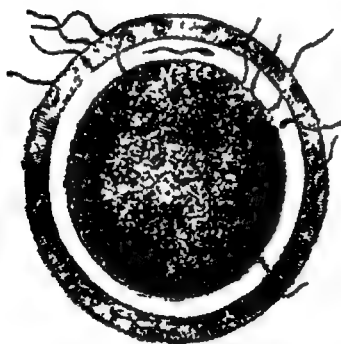
डिम्बपर शुक्रकीटोंका आक्रमण और गर्भित डिम्ब।

[देखो पृष्ठ ८१ और ८२]

लेकर २२६००००००० तक शुक्रकीट होते हैं। यह वीर्यमे उसी तरह विलविलाया करते हैं, जिस प्रकार जलमें मछलियां विलबिलाती हैं। चित्र नं० ५ एक अकेले शुक्रकीट को दिखलाता हैं। पुरुषके शुक्रकीटसे स्त्रीका डिम्ब किंवा बीज प्रायः तिगुना बड़ा होता है। डिम्बकी भांति शुक्रकीटमें भी कई दिनोंतक जीवित रहनेकी शक्ति होती है।

जिस प्रकार पुरुष और स्त्रीको ईश्वरने एक दूसरेको अपनी ओर आकर्षित करनेकी शक्ति दी है और वे परस्पर किसी विलक्षण शक्ति द्वारा एक दूसरेकी ओर आकर्षित होते हैं, उसी प्रकार डिम्ब और शुक्रकीटोंमे भी एक दूसरेकी ओर आकर्षित होनेकी शक्ति ईश्वरने रक्खी है। जब पुरुष स्त्री-संयोग करता है और संयोगके अन्तमें वीर्यपात होता हैं, तब लाखों शुक्रकीट डिम्बको भेटनेके लिये व्याकुलतापूर्वक गर्भाशयकी ओर दौड पड़ते हैं। रजोदर्शनके समय जो डिम्ब अण्डाशयसे निकलता है, वह कभी कभी डिम्बप्रनाली पार कर गर्भाशयमे आता है, और उसके एक कोनेसे चिपककर वीर्यकी प्रतीक्षा किया करता है। स्त्रीकी जननेन्द्रियसे मिले हुए गर्भद्वारमे होकर शुक्रकीट वहां पहुचते हैं और उस डिम्ब पर चारो ओरसे आक्रमण करते हैं (देखिये चित्र नं० ६) परन्तु इन :लाखो शुक्रकीटोमेसे केवल एक

शुक्रकीट, :जो सबसे अधिक बलवान होता है, वही डिम्बमें प्रवेश कर पाता है। इसी प्रक्रियाका नाम गर्भाधान हैं। डिम्ब और शुक्रकीटका मिलन होनेपर डिम्ब गर्भित हो जाता है। गर्भित डिम्ब देखनेमें स्पञ्जके समान मालूम होता है (देखिये चित्र नं ७) उसके अन्दर :क्रमशः गर्भकी सृष्टि ओर वृद्धि होने लगती

डिम्ब और शुक्रकीटोंका यह मिलन प्रायः फलवाहिनी किंवा डिम्ब प्रनालीमे होता है। यदि डिम्ब गर्भाशयतक आ जाता है, तो यह मिलन गर्भाशयमें भी होता है। यदि अण्डाशयसे निकलकर वह डिम्बप्रनाली या गर्भाशयतक नहीं पहुचता, तो कभी कभी यह शुक्रकीट अण्डाशय तक धावा मारते हैं, और वहीं उसे गर्भित कर देते हैं। बादको डिम्ब क्रमशः फलवाहिनी और गर्भाशयमें आता है और वहां उसकी परिवृद्धि आरम्भ होती है।

"हरएक मैथुन क्रियामे शुक्र गर्भाशयके भीतर नहीं पहुचता, वह बहुधा जननेन्द्रियके बाहर निकल जाता है। जब रुके तब ही गर्भाधान हो सकता है। चूंकि गर्भाधानके लिये केवल एक ही शुक्राणुकी आवश्यकता हैं, इसलिये शुक्रका जरासा भाग भी भीतर रह जानेसे गर्भस्थिति हो जाया करती है। गर्भाशय, योनि और डिम्बप्रनालीमे शुक्राणु

कई दिनतक जीवित रह सकते हैं, इसलिये यह आवश्यक नहीं है, कि जिस दिन मैथुन हो उसी दिन गर्भाधान भी हो, अतः गर्भाधान मैथुनसे कई दिन पीछे भी हो सकता है।

"शुक्राणु अम्लके प्रभावसे मर जाते है, जब रोगके कारण स्त्रीकी जननेन्द्रियमें अम्लरस रहता है, तब गर्भस्थिति नहीं हो सकती। आर्तव बन्द होनेके पश्चातके दस पन्द्रह दिनोंमें गर्भाधान होनेको और दिनोंकी अपेक्षा अधिक संभावना रहती हैं। जब दोनों व्यक्ति स्वस्थ और ठीक आयुवाले हों और गर्भाधानके इच्छुक हों, तब गर्भाधान शीघ्र हो जाता है।

"सामान्यत' एक शुक्राणुका एक डिम्बसे संयोग होता है और एक गर्भ बनता है स्त्री एक बारमे एक ही बच्चा जनती हैं। परन्तु कभी कभी एक ही साथ या कुछ दिनोंके अन्तरसे दो शुक्राणुओंका दो डिम्बोंसे संयोग हो जाता है, तब दो गर्भ उत्पन्न होते है और स्त्री एक साथ या थोड़ी देर या कुछ दिनोंके अन्तरसे दो बच्चे जनती है। कभी कभी दोसे अधिक बच्चे भी पैदा होते है। मनुष्यमें जब एकसे अधिक बच्चे एक साथ पैदा होते हैं, तो वे या तो शीघ्र मर जाते हैं या निर्बल रहते हैं।

"कभी कभी दो शुक्राणुओका एक ही डिम्बसे संयोग

हो जाता है। ऐसे गर्भसे जो बच्चा उत्पन्न होता है उसके दो शरीर होते हैं, जो आपसमें जुड़े रहते है। ये अद्भुत बालक बहुधा अधिक कालतक नहीं जिया करते।"

पाठकोको एक बात और भी इस अध्यायमे बतला देना हम आवश्यक समझते हैं। संयोगके समय स्त्रियोकी जननेन्द्रियसे जो द्रव निकलता हैं और जिसके निकलनेमें पुरुषके वीर्यपातके समान ही उन्हें अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होती हैं, उसे ही बहुत लोग अबतक स्त्रीका वीर्य समझते थे। अपने वैद्यक और मनुस्मृति प्रभृति ग्रन्थोंको देखनेसे भी यही बात प्रतीत होती है। परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे वीर्य नहीं मानते। उनका कथन है, कि यह द्रव जननेन्द्रियको मुलायम रखनेके लिये निकला करता हैं और जब यह संयोगके कारण अधिक निकलता है, तब स्त्रियोको अधिक आनन्द आता हैं, परन्तु गर्भरचनामे यह कोई काम नहीं आता। उनके मतानुसार डिम्ब ही स्त्रियोंका बीज है और उसीके साथ शुक्रकीटका मिलन होनेपर गर्भ सञ्चार होता है।

७

गर्भ लक्षण

गर्भ सञ्चार होते ही स्त्रियोंके शरीरमें नवजीवनका सञ्चार होता है। वे पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ और अधिक खुश मालूम होती हैं। उन्हें अपना शरीर हलका और फुर्तीला मालूम होता है। बहुतसी स्त्रियां गर्भावस्थामें मोटी भी हो जाती हैं, परन्तु यह सब बातें केवल उन्हीं स्त्रियोंमें दिखाई देती हैं, जो पहले हीसे स्वस्थ और खुश मिजाजकी होती हैं, अन्यथा अनेक स्त्रियोंके शरीर, स्वभाव और स्वास्थ्यमें अनेक प्रकारके परिवर्तन होते हैं और बहुतोंको इस अवस्थामे कड़ा कष्ट होता है। खास खास गर्भ लक्षण नीचे दिये जाते हैं :—

ऋतुस्राव बन्द होना—जो स्त्रियाँ पूर्ण रूपसे निरोग हों, जिनकी पाचनशक्ति बिलकुल ठीक हो और जिन्हें निय-

मित रूपसे ठीक समयपर ऋतुस्राव होता हो, उनका ऋतु-स्राव बन्द हो जाना ही उनके गर्भधारणका प्रधान लक्षण समझना चाहिये। यद्यपि किसी प्रकारकी मानसिक चिन्ता, आवेश, वंश परम्परागत दोष, गर्भाशयका रोग, शारीरिक दुर्बलता या सर्दी लग जानेसे भी ऋतुस्राव बन्द हो जाता है, तथापि हृष्टपुष्ट, निरोग और नियमित रूपसे ऋतुस्राव होनेवाली स्त्रियोंके लिये यह सबसे अच्छा और विश्वसनीय लक्षण है।

स्त्रियोंको सन्तान होनेपर बहुधा कई महिने तक ऋतु-स्राव नहीं होता। ऐसी अवस्थामे यदि वे गर्भवती हो जाती हैं तो उपरोक्त लक्षण कोई काम नहीं आता। इसके अतिरिक्त संसारमें ऐसी भी स्त्रियां पायी गयी हैं, जिन्हें साधारण अवस्थामें ऋतुस्राव न होकर गर्भावस्थामें ही होता है। एक डाक्टरको एक ऐसी स्त्री मिली थी, जिसे कभी ऋतुस्राव हुआ ही न था, परन्तु दो बच्चे होनेके बाद तीसरी बार उसे गर्भस्राव हुआ और उसी समयसे ऋतुस्राव भी होने लगा। परन्तु ऐसी स्त्रियां संसारमें बहुत कम दिखाई देती हैं। हां, किसी बीमारीके कारण ऋतुस्रावका बन्द हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसलिये ऋतुस्राव बन्द होनेपर इस बातका निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये,

कि वह किसी रोगके कारण वन्द हुआ है या गर्भस्थितिके कारण। यदि गर्भावस्थाके अन्यान्य लक्षण भी दृष्टिगोचर हो, तव तो कोई चिन्ताकी वात नहीं, किन्तु यदि किसी रोगके कारण ऋतुस्राव वन्द हो गया हो, तो तुरन्त किसी चिकित्सक द्वारा उपचार कराना चाहिये। रोगके कारण ऋतुस्राव वन्द होनेपर जो लोग धोखा खा जाते हैं, उन्हें वड़ी हानि उठानी पड़ती है। ऐसी अवस्थामें एक तो स्त्रियोंकी चिकित्सा नहीं कराई जाती, इससे उनका रोग वढ़ जाता हैं और वे असमयमें ही कालका ग्रास वनती है और दूसरे संसारमें हँसी होती है। पहले चारों ओर हल्ला हो जाता है, कि अमुक स्त्री गर्भवती है और वादको कहीं कुछ भी नहीं। इसलिये ऋतुस्राव वन्द होनेका कारण भलीभांति जान लेना चाहिये।

क़य और उवकाई—गर्भ रहनेके तीसरे या चौथे सप्ताह से वहुधा यह लक्षण दृष्टिगोचर होता है। स्त्रियोंका जी मिचलाता है, वारम्वार उवकाई या उछाल आती है और क़य होती है। यह लक्षण प्रायः दो महिने तक रहते हैं और वहुधा चार महिनेका गर्भ होनेके पहले ही शान्त हो जाते हैं। किन्तु इस लक्षणके लिये समयका कोई वन्धन नहीं है। वहुत स्त्रियोंको अन्ततक क़य हुआ करती है,

बहुतोंको चौथे या पाँचवे महिनेसे आरम्भ होती है और बहुतोंको नहीं भी होती।

क़य और उबकाईके साथ और कई लक्षण प्रकट होते हैं। अनेक स्त्रियोंके मुंहमें लार या पानी इतना अधिक छूटता है, कि वे थूकते थूकते हैरान हो जाती हैं। उनका यह थूक एकदम स्वच्छ और हदसे ज्यादः चिकना व गाढ़ा होता है। अनेक स्त्रियोंको इस अवस्थामें अन्नके प्रति अरुचि हो जाती है और अनेक स्त्रियां मिट्टी व ठीकरे खाने लगती हैं।

गर्भावस्थामें क़य होना एक स्वाभाविक बात है, इसलिये यह लक्षण देखकर चिन्ता न करनी चाहिये। जिन स्त्रियोंको क़य नहीं होती, उसका शरीर कभी कभी ठंढा हो जाता है, शरीर भरमें खुजली उठती है, आलस्य लगता है और चक्कर आता है। बहुधा गर्भपात भी उन्हीं स्त्रियोंको होता है, जिन्हें गर्भावस्थामें क़य नहीं होती। इसलिये क़य होना गर्भवतीके लिये हितकर माना गया है।

स्त्रियोंको बहुधा सवेरे शैय्या त्याग करते ही उबकाई पर उबकाई आने लगती हैं और कय हो जाती है। कय होनेके बाद बहुधा उन्हे कुछ खानेकी इच्छा होती है और खाकर बिछौनेपर पड़ रहनेसे उन्हें आराम मालूम होता है।

इस अवस्थामें भात वगैरह हलका भोजन करनेसे गर्भवतीको अधिक कष्ट नही होता। कय और उबकाईका उपद्रव बहुधा दूसरे महिनेसे आरम्भ होता है और चौथे पांचवे महिनेमें जब बच्चा फड़कने लगता है, तब शान्त हो जाता हैं।

कुचोंमें परिवर्तन—कुच किंवा स्तनोंका बढ़ना यह गर्भ रहनेका तीसरा लक्षण है। यद्यपि युवावस्थाके कारण भी स्तन बढ़ते हैं, परन्तु उस अवस्थामें वे कोमल होते हैं और उन्हें दबानेसे दर्द नहीं होता। गर्भावस्थाके कारण स्तन बढ़नेपर वे कुछ कड़े हो जाते है और उन्हें दबानेसे दर्द होने लगता है। इस अवस्थामें स्तनोंका शिरोभाग किंवा भिटनी बढ़ जाती है और उसके चारों ओरका कुछ अंश काला पड़ जाता है (देखिये चित्र नं० ८) इस अंशमे अनेक काले काले विन्दु होते हैं और ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यो उनकी संख्या बढ़ती जाती है। शिरोभागके आसपासका काला अंश भी इसी तरह बढ़ता जाता है। जिन स्त्रियोंका रंग काला होता है, उनके स्तनोंमें यह परिवर्तन विशेष रूपसे और अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। स्तनोंका यह परिवर्तन बहुधा गर्भधारणके चौथे सप्ताहसे लेकर बारहवे सप्ताह तक दिखाई देता है। कभी कभी इससे भी अधिक समय लग जाता है।

दूध उतरना—गर्भ रहनेके दो, तीन या चार महिनेपर जब स्तन भलीभांति बढ़ जाते हैं, गर्भवतीके स्तनोंसे दूध किंवा एकप्रकारका सफेद सफेद द्रव निकलता है। इसीको दूध उतरना कहते हैं। जो स्त्री पहली ही बार गर्भवती हुई हो, उसके स्तनोसे दूध या द्रव निकलनेपर उसके गर्भके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह न करना चाहिये। पहलौठी स्त्रीके लिये यह सबसे अच्छा चिन्ह है, परन्तु जो स्त्रियां एक सन्तानकी माता हो चुकी हों, उनके सम्बन्धमे इस लक्षणको देखकर कोई बात स्थिर न करनी चाहिये। क्योंकि बहुधा उनके स्तनोंमें पहलेका दूध रह जाता है। ऐसी स्त्रियोंके सम्बन्धमे इससे विपरीत लक्षण देखकर उनके गर्भधारणका निश्चय करना चाहिये। वे यदि बच्चेके मुंहमें स्तन दें और उससे एक बूंद भी दूध न निकले तो समझना चाहिये, कि वे गर्भवती हैं। यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है, कि किसी रोगके कारण ऋतुस्राव बन्द हो जानेपर भी स्तन भर आते हैं और उनमें दूध उतर आता है, अतः ऐसी अवस्थामें धोखा न खाना चाहिये।

गर्भाशयकी वृद्धि—गर्भधारणके छः से लेकर दस सप्ताहतक दुबले पतले शरीरवाली स्त्रियां अपने पेड़ूके

निचले भागको उङ्गलियों से दवाकर इसकी परीक्षा कर सकती है। उन्हें धीरेसे जिस समय पेट खाली और मुलायम हो उस समय किसी तकियेके सहारे चित्त लेट जाना चाहिये और पैर लंबेकर पेडूका निचला अंश टटोलना चाहिये। ऐसा करनेपर उन्हें गेंद या नारंगीके वरावरका गर्भाशय हाथ लगेगा। इसके द्वारा वे अपनी गर्भस्थितिके सम्बन्धमे दिल जमई कर सकती हैं।

पेडूका वढ़ना—यह गर्भका पांचवां लक्षण है। गर्भ रहनेके समय गर्भाशय बहुत छोटा होता है। इसके वाद ज्यों ज्यों गर्भ वढ़ता जाता है, त्यों त्यों गर्भाशय भी वढ़ता जाता है। अन्तमे उसे नीचेकी ओर रहनेके लिये पर्याप्त स्थान नहीं मिलता, अतः वह ऊपर चढ़ने लगता है दो ढाई महीनेका गर्भ केवल नारंगीके वरावर होता है अतः उस समय तक पेट किंवा पेडू ऊंचा नहीं मालूम होता, परन्तु इसके वाद वह ऊँचा होने लगता है। पांचवे मासमे नाभीका गढ़ा छीछरा होने लगता है, छठें मासमे वह भर जाता है और सातवें मासमे पेट नाभीसे भी ऊंचा हो जाता है।

इसी तरह गर्भाशय ज्यो ज्यो ऊपर चढ़ता है और गर्भ वढ़ता जाता है, त्यो त्यों पेट ऊंचा होता जाता है। यद्यपि

जलोदर प्रभृति रोगोंके कारण भी पेट बढ़ जाता है, परन्तु गर्भावस्था और रोगके बढ़नेवाले पेटमें बड़ा अन्तर होता है। गर्भावस्थामें पेट केवल बीचहीसे अधिक ऊँचा होता है। उसके दोनों किनारे अधिक न बढ़कर चिपटे ही बने रहते हैं, परन्तु रोगमें समूचा पेट समान रूपसे फूल उठता हैं। इसके अतिरिक्त गर्भवतीका पेट सोते जागते, उठते बैठते हर हालतमें—वह चाहे जिस स्थितिमें रहे—एक ही समान रहता हैं, परन्तु यदि जलोदरका रोगी चित्त सोता हैं, तो आधा पानी दाईं ओर और आधा पानी बाईं ओर होकर बीचसे पेट पचक जाता है।

बच्चेका फड़कना—प्रायः चौथे महिनेसे पेटका बच्चा फड़कने लगता है। पहले वह धीरे धीरे फड़कता है; परन्तु बादको इतने जोरसे फड़कने लगता है, कि उसके कारण गर्भवतीको बड़ी बेचैनी मालूम होती है। किसी किसी स्त्रीका गर्भ छः सात महिनेका होनेपर भी नहीं फड़कता, परन्तु ऐसी स्त्रियां बहुत कम मिलती हैं। उपवास किंवा शारीरिक दुर्बलताके समय बच्चा अधिक फड़कता हैं।

बच्चेके हृदयकी धड़कन—प्रायः पांच मास पूर्ण होनेके बाद गर्भवतीके पेटपर कान लगानेसे गर्भस्थ बालकके हृदयकी धड़कन स्पष्ट सुनाई देती है। पेटमें यदि जोड़

बच्चे होते हैं, तो यह ध्वनि दो स्थानोंमें सुनाई देती है। यदि बच्चेका सिर नीचेकी ओर होता है तो गर्भवतीके पेटकी दाहिनी या बाईं ओर और यदि पैर या पीठ नीचेकी ओर होते हैं तो यह ध्वनि स्तनोंके पास सुनाई पड़ती है। यह परीक्षा जितनी सहज है उतनी ही विश्वसनीय है। इसके बाद फिर गर्भस्थितिके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह करना ठीक नहीं।

इसके अतिरिक्त गर्भधारणके और भी कई लक्षण हैं, परन्तु वे केवल डाक्टर और धात्रियोंके ही कामके हैं। वे उनके द्वारा परीक्षा कर अधिक विश्वास दिला सकती हैं। हम यहां उन लक्षणोंका उल्लेख कर अपने पाठकोंको उलझनमें डालना उचित नहीं समझते। सर्वसाधारणके लिये ऊपर जो लक्षण अंकित किये गये हैं—वही गर्भधारणका निर्णय करनेके लिये पर्याप्त हैं। निर्णय करते समय उन्हें इस बातको भी स्मरण रखना चाहिये, कि अपनी शारीरिक अवस्था व जीवनचर्याके अनुसार भिन्न भिन्न स्त्रियोंमें भिन्न भिन्न लक्षण प्रकट होते हैं। किसी गर्भवतीमें सब लक्षण पाये जाते हैं और किसीमें दो चार नहीं भी पाये जाते। यदि अधिक सन्देह हो तो डाक्टर किंवा मिडवाइफ द्वारा निर्णय कराना चाहिये।

इसके अतिरिक्त, गर्भावस्थामें अनेक स्त्रियोंका स्वभाव भी परिवर्तित हो जाता है। खुशमिजाज और बहादुर स्त्रिया कभी कभी एकदम उदासीन और भीरु प्रकृति की हो जात हैं तथा शान्त प्रकृतिकी स्त्रियां चिड़चिड़े स्वभावकी हो जाती हैं। चतुर स्त्रियोंको चाहिये, कि गर्भावस्थामें अपने स्वभावपर खूब ध्यान रक्खें और मनपर अंकुश रख, जहांतक हो स्वभावको बदलने न दे। स्वभाव बिगड़ जानेसे गर्भस्थ बालकपर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है—यह बात बच्चेके माता पिताओंको सदैव स्मरण रखनी चाहिये।
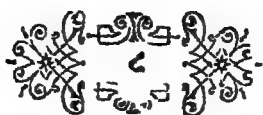
गर्भ वृद्धि

डिम्ब और शुक्रकीटका संयोग होते ही गर्भकी परिवृद्धि आरम्भ हो जाती है। हम पहले ही कह चुके, कि इन दोनोंका यह संयोग बहुधा फलवाहिनी या डिम्ब प्रनालीमे होता है। कभी कभी फलवाहिनीमे न होकर किसी दूसरे स्थानमे भी हो जाता है, परन्तु बिना किसी खास कारणके ऐसा क्वचित ही होता है।

खैर, डिम्ब चाहे जहां गर्भित हो, दूसरे सप्ताहमे वह गर्भाशयमे अवश्य आ जाता है। गर्भाशयमे आकर वह उसके ऊपरी कोनेसे चिपक जाता है (देखो चित्र न० ९) और उसके चिपकते ही पतले चामडेकी एक झिल्ली उसे घेर लेती है (देखो चित्र नं० .१०) बादको वह डिम्ब उस झिल्लीके अन्दर बन्द हो जाता है और उसके बाहर तथा भीतर नाना प्रकारके परिवर्तन होने लगते हैं।

डिम्बमे सबसे पहला परिवर्तन यह होता है, कि

उसके बाहरकी ओर झिल्लीसे छोटी छोटी असंख्य शिरायें निकलती हैं (देखो चित्र नं० ११) यह शिरायें ठीक वही काम करती है, जो वृक्षोंकी जड़ें करती हैं। इनके द्वारा गर्भिणीके उदरसे रक्त और रस शोषित होकर नालद्वारा बच्चेके शरीरमें प्रवेश करता है और उसीके द्वारा उसका पोषण होता है।

कुछ दिनोंके बाद इन शिराओंमेंसे केवल एक ही ओर की शिरायें बच रहती है और शेष नष्ट हो जाती हैं। (देखो चित्र नं० १२ और १३) जो बचा रहती हैं, उन्हींसे कमल और नाल बनती है (देखो चित्र नं० १४ और १५) कमल द्वारा आवश्यक रस और रक्त माताके शरीरसे संचित होता है और नाल द्वारा वह बच्चेके शरीरमे पहुंचाता है।

जिस समय डिम्बके बाहर इस प्रकारके परिवर्तनों द्वारा कमल और नालकी रचना होती हैं उसी समय डिम्बके अन्दर भी नाना प्रकारके परिवर्तन होते हैं। पहले बीज कुछ परिपक्व होता है (देखो चित्र नं० १६) बादको वह दो भागोंमे विभक्त हो जाता हैं (देखो चित्र नं० १७) फिर दोसे चार और चारसे आठ भाग हो जाते है (देखो चित्र नं० १८ और १६) फिर आठसे सोलह सोलहसे बत्तीस, बत्तीससे चौसठ और इसी तरह बराबर दूने भाग होते

चित्र नं० ८

स्तनोमे परिवर्तन।

[देखो पृष्ठ ८६]

रहते हैं। अन्तमें समूचा डिम्ब इन टुकड़ोंसे भर जाता है (देखो चित्र नं० २० और २१) इस समय उसका दृश्य शरीफेके फल जैसा मालूम होता है

इसके बाद किनारेके टुकड़े एक दूसरेके साथ जुड़कर एक रस हो जाते हैं और बीचका स्थान उन्हीं टुकड़ो प्रस्तुत पारदर्शक रससे धीरे धीरे भरता जाता है। (देखो चित्र नं० २२ और २३) कुछ दिनोंके बाद उस रसमें एक अण्डाकार धब्बा सा दिखाई देता है। (देखो चित्र नं० २४) और वही फिर क्रमश भ्रूणका आकार धारण करता है। डाक्टरोंके मतानुसार गर्भकी वृद्धि इस प्रकार होती है :—

प्रथम सप्ताहमे गर्भ एक विन्दुके समान मालूम होता है। यह विन्दु आरम्भमे पारदर्शक होता है, परन्तु सप्ताहके अन्तमे उसमें एक अपारदर्शक विन्दी दिखाई देती है।

दूसरे सप्ताहमे गर्भका वजन करीव आधी रत्तीके वरावर होता है। इस सप्ताहके अन्तमे यह आंखसे दिखाई देने लगता है

तीसरे सप्ताहमे इस डिम्बका आकार चौथाई इञ्चके वरावर होता है। डिम्बके अन्दर गर्भ दिखाई देने लगता हैं। गर्भका आकार इस समय एक इञ्चके वारहवें भाग

जितना होता है। गर्भमें अङ्ग भी होते हैं, परन्तु इस सप्ताहमें वे स्पष्ट नहीं दिखाई देते। (देखो चित्र नं० २५) तीसरा सप्ताह पूरा होते होते गर्भ एक इञ्चके छठें भाग जितना हो जाता है और उसका शिर, शिरमें आंख व कान—यह अङ्ग किञ्चित स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। मुंह पांच कोनेका और पीठ बहुत टेढ़ी होती हैं। परन्तु ध्यान रहे, साधारण चर्म चक्षुओंसे इनका दिखाई देना असम्भव है। यह बड़े ही तेज सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखे जाते हैं।

चौथे सप्ताह किंवा एक मासमें यह डिम्ब कबूतरके अण्डे जितना अर्थात् पौन इञ्चका और वजनमें करीब पाव तोलाके होता है। डिम्बके अन्दरका गर्भ एक इञ्चके तीसरे भाग जितना एक मोटे और टेढ़े कीड़ेके समान होता है। इस गर्भके एक पूंछसी लगी रहती है और वह इतना टेढ़ा होता हैं, कि उसका शिर और पूंछ दोनो एक दूसरेके पास आ जाते हैं। इस समय गर्भकी पीठ गोल चक्करके समान, दोनों आंखे गोल बिन्दियोंके समान और हाथ पैर ऐसे दिखाई देते हैं, मानों किसी मोटी डालीमें फुनंगे फूट रहे हैं। (देखो चित्र नं० २६)

पांचवे और छठें सप्ताहके बीचमें डिम्बकी लम्बाई प्रायः

सवा इञ्च और गर्भकी लम्बाई करीब पौन इञ्चके होती है। इस समय हाथ पैर साफ साफ मालूम होने लगते हैं। (देखो चित्र न० २७ और २८) सातवें सप्ताहमें कन्धे और मुंहकी हड्डियां तथा पसलियां बनने लगती हैं। हृदयका आकार विशेष स्पष्ट हो जाता है। आँख, नाक और कान अधिक साफ मालूम होते हैं। फेफड़ा और श्वासप्रनाली रेखाओंके रूपमे परिलक्षित होती है। यकृत (लीवर) कुछ बड़ा होता है। मूत्रपिण्ड तथा उसके अस्तर तैयार होने लगते हैं। जननेन्द्रियकी रचनाका आरम्भ भी इसी सप्ताहमे हो जाता है, परन्तु गर्भस्थ बालक लड़का है या लड़की—यह इस समय नहीं मालूम होता।

दूसरे मासमे हाथ दिखाई देते हैं, परन्तु उनमे उंगलियाँ नहीं होतीं। हाथके पंजे बहुत बड़े मालूम होते हैं। लड़के लड़कीकी पहचान इस समय भी कठिन होती है। पलके अपूर्ण होती हैं, अतः आंखे बाहर निकली हुई रहती हैं। नाक बहुत चिपटी और मुंह बहुत फटा होता है। (देखो चित्र नं० २६) गर्भकी लम्बाई इस समय डेढ़से लेकर दो इञ्च तककी और वजन डेढ़ दो तोलेके करीब होता है। इस समय गर्भस्थ बालकका शिर उसके धड़को देखते हुए बहुत बड़ा याने समूचे शरीरके तिहाई भाग जितना होता है।

तीसरे मासके प्रथम सप्ताहमे प्रायः सभी अंग बड़ी तेजीसे बढ़ते है। आँखें कुछ बड़ी होती हैं, पलकें स्पष्ट दिखाई देने लगती है, नाक और मुँह बढ़ता हैं तथा कानोंका बाहरी हिस्सा दिखाई देने लगता है। दिमाग मावेके समान नरम होता है। गलेका आकार स्पष्ट दिखाई देने लगता है और हृदय पूर्णताको प्राप्त होता है। इसी मासके अन्तिम सप्ताहमें पलकें भी पूर्णताको प्राप्त हो जाती हैं। दोनों होठ तैयार होकर एक दूसरेसे मिल जाते हैं। कपाल और नाक अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। जननेन्द्रिय इतनी स्पष्ट हो जाती है, कि लड़के लड़कीकी पहचान की जा सकती हैं। हृदय बड़े जोरोंसे धड़कने लगता हैं। बड़ी बड़ी रक्तवाहिनियोंमें लाल लाल रक्त प्रवाहित होने लगता है। हाथ पैरकी उँगलियां स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। स्नायु तैयार होने लगते हैं। पैरकी पिण्डियां बनने लगती है। इस समय गर्भकी लम्बाई तीनसे लेकर चार इञ्च तककी होती है और उसका वजन पांचसे लेकर दस तोले तकका होता है। (देखो चित्र नं० ३०)

चौथे मासके आरम्भमें गर्भकी विशेष वृद्धि नहीं होती, परन्तु अन्तिम भागमें आश्चर्यजनक वृद्धि होती हैं। इस महिनेमें गर्भकी लम्बाई ६ से लेकर आठ इञ्च और वजन

पन्द्रहसे लेकर बीस तोले तक होता है। शिर पहलेकी अपेक्षा कुछ छोटा और धड़ बड़ा हो जाता है। नालकी लम्बाई गर्भकी लम्बाईसे दुगुनी तिगुनी हो जाती है। लड़के लड़कीकी पहचान आसान हो जाती है। नेत्र, नाक और मुंह बन्द रहते हैं तथा चमड़ीका रंग गुलाबी होता है। (देखो चित्र नं० ३१)

पाँचवे मासमें गर्भकी लम्बाई आठसे लेकर दस इञ्च तककी और वजन २० से लेकर २७॥ तोला तक होता है। इस महिनेसे गर्भमे आश्चर्यजनक बृद्धि होती है और देखते ही देखते वह सर्वाङ्ग सम्पन्न हो जाता है। (देखो चित्र नं० ३२)

छठे मासमे गर्भकी लम्बाई बारह इञ्चके करीब और वजन प्रायः आधसेरका हो जाता है। इस मासमें बालकके शिरपर केश तथा उंगलियोमें नख जम आते हैं। चमड़ीमें सिकुड़न दिखाई देती है और उसका रंग पहलेकी अपेक्षा फीका हो जाता है। आंखे पलकोंसे ढंकी ही रहती हैं परन्तु पलकों व भौंह पर मुलायम मुलायम केश निकल आते हैं। इस मासमें यदि बालक उत्पन्न होता है, तो बड़े धीरे धीरे श्वास लेता है और कुछ घण्टोंतक जीता भी है।

सातवें मास बालकका प्रत्येक अंग बड़ा और संपूर्ण मालूम होता हैं। हड्डिया प्रायः तैयार हो जाती है। गर्भ की लम्बाई बारहसे लेकर चौदह इञ्चतक और वजन सवासे लेकर डेढ़ सेर तक हो जाता हैं। चमड़ी सिकुड़न दार और चिकनी होती है। इस मासमें जन्म होनेपर बच्चा श्वास भी लेता है, रोता भी हैं और दूध भी पीता है। यदि यत्न पूर्वक पालापोषा जाय तो जीवित भी रह सकता है

इस समय जो बच्चा उत्पन्न होता है, वह इतना निर्बल होता है, कि वह नहलाने धुलाने या कपड़े पहनानेका कष्ट भी सहन नहीं कर सकता। इसीलिये पालन पोषणमे जरा भी असावधानी होते ही उसकी मृत्यु हो जाती हैं। यदि इस अवस्थाका बालक जीता भी रहता है, तो वह अपना सारा समय प्रायः सोनेमे ही व्यतीत करता हैं। केवल दूध पीनेके लिये बीच बीचमे जाग पड़ता हैं और दूध पीकर फिर सो रहता है। इस समय उसके शरीरमें गरमी बहुत ही कम होती है, इस लिये उसे अच्छे गरम कपड़ेमें लपेटकर माताकी बगल या किसीकी गोदमे सुला रखना चाहिये, ताकि उसे उसके शरीरकी भी गरमी मिल सके।

आठवें महिनेमें गर्भ भलीभांति पुष्ट होता है। लम्बाई-की अपेक्षा उसकी मोटाई बढ़ती है। लम्बाई सोलहसे लेकर अठारह इञ्च तक और वजन दो ढाई सेरके करीब होता है चमड़ीका रंग अब भी लाल होता है ;और वह एक प्रकारका चिकना रस लगा होनेके कारण चिकनी मालूम होती हैं (देखो चित्र नं० ३३) लोग कहते हैं, कि आठवे मास उत्पन्न होनेवाले बच्चे जीवित नहीं रहते, परन्तु इसका कोई कारण नहीं दिखाई देता। डाक्टरोंका कथन हैं, कि यदि यत्नपूर्वक रक्खे जाँय, तो इस महिनेके बच्चे भी जीवित रह सकते हैं।

नवें महिनेके अन्तमें गर्भ पूर्णरूपसे पूर्णताको प्राप्त होता है। इसलिये इस महिनेमे उत्पन्न होनेवाले बच्चोंको जीवित रहनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं पड़ती ; परन्तु जन्म होनेका वास्तविक समय १० वे महिनेका प्रथम सप्ताह है। यदि इसके पहले बच्चोका जन्म होता है, तो वे बड़े सुतक्कड़ और सुस्त होते हैं। पूर्णकालमें उत्पन्न होने-वाले बच्चोंकी लम्बाई १६ से लेकर २३ इञ्च तक और वज़न ३ से लेकर ४॥ सेर तक होता हैं। अधिकाश बच्चे करीब २१ इञ्च लम्बे और ३॥ सेर भारी होते हैं। इस समय उनका शरीर पुष्ट मालूम होता हैं। चमड़ीकी लाली कम

हो जाती हैं, नख बराबर निकल आते हैं, रक्तवाहिनियोंमें रक्त संचार होने लगता है और शरीरसे पसीना निकलने लगता है। इस समयके बच्चेमें जन्म होनेपर भली भांति रोने और हाथ पैर पटकनेकी शक्ति होती है (देखो चित्र नं० ३४)।

इस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म गर्भित डिम्ब ९ महिनेमे सवाहाथ लम्बे और साढ़े तीन सेर भारी बच्चेके रूपमें परिणत हो जाता है। जिस प्रकार आमकी गुठलीमें आमका वृक्ष छिपा रहता है, उसी प्रकार डिम्ब और शुक्रकीटमे एक मनुष्य छिपा रहता है। जैसे किसान खेतमे निरोग बीज बोकर नया अन्न उत्पन्न करता है, उसी तरह मनुष्यको भी सुसन्तान उत्पन्न करनी चाहिये। यही वीर्यका सदुपयोग है। केवल क्षणिक् आनन्दके लिये नष्ट करनेकी वह सामग्री नहीं है। उसके एक एक विन्दुमें सैकड़ों मनुष्योंको उत्पन्न करनेकी सामग्री प्रस्तुत रहती है, जो मनुष्य व्यर्थ ही अपना वीर्य नष्ट करता है, वह मानो हजारों मनुष्यका खून करता है। उसे हम खूनी और अत्याचारी बड़ी खुशीके साथ कह सकते हैं।

खैर, गर्भमे बालक किस प्रकार बढ़ता है, यह हम अंकित कर चुके। इसके साथ ही यह भी बतला देना हम

आवश्यक समझते हैं, कि गर्भमे बच्चा किस प्रकार रहता है। पाठकोंको इस सम्बन्धके चित्र देखनेसे मालूम होगा, कि पहले पहल वह गर्भमें आड़ा पड़ा रहता है। माताकी एक कुक्षिमे उसका शिर और दूसरी कुक्षिमें उसके पैर होते हैं, कभी कभी शिर ऊपर और धड़ व पैर नीचेकी ओर भी रहते हैं; परन्तु बादको पिछले महिनोंमें वह उलट जाता है। उस समय उसका शिर नीचे और पैर ऊपर हो जाते हैं। इसी अवस्थामे वह जन्म लेता हैं। परन्तु इसका कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। कभी कभी वह दूसरी स्थितिमें भी स्थित रहता व जन्मता है।

यद्यपि हमलोग साधारणतया यही कहते और समझते हैं, कि बालक एक झिल्लीमें बन्द रहता है, परन्तु वास्तवमे झिल्लियोंकी संख्या एक नहीं बल्कि चार होती है। यह झिल्लियां गर्भमें भिन्न भिन्न कार्य करती हैं और भिन्न भिन्न प्रकारसे गर्भकी रक्षा करती हैं। इन्हीं झिल्लियोमेंसे एक झिल्लीमे एक प्रकारका द्रव किंवा जल भरा रहता है और उसी जलमें बच्चा नालसे बंधा हुआ लटका रहता है। उस जलको गर्भोदक कहते हैं। चारों ओर जल रहनेके कारण गर्भको एकायक किसी प्रकारका आघात नहीं लगता। बच्चेकी नाभीसे जो नाल जुड़ी रहती है, वह भी एक

झिल्ली द्वारा ही तैयार होती है। उससे बच्चेको आवश्यक हवा, रस और रक्त मिलता है। अंग्रेजीमें इन सब झिल्लि-योंके भिन्न भिन्न नाम हैं और कौन झिल्ली किस समय उत्पन्न होती है तथा किस समय क्या कार्य करती है इसका विस्तृत वर्णन है। परन्तु साधारण पाठकोंके लिये उसका समझना भी कठिन है और समझनेकी आवश्यकता भी नहीं है, इसलिये हमने उन सबोंका विस्तृत विवरण अंकित नहीं किया। जो पाठक इस सम्बन्धमें अधिक जाननेकी इच्छा रखते हों, उन्हें डाक्टरी पुस्तकोंका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

६

गर्भपात

अनेक वार अनेक कारणोंसे गर्भकी अवधि समाप्त होनेके पहले ही वच्चे भूमिष्ट हो जाते हैं। गर्भकाल प्रायः साढ़े नवमासका माना गया है। उस समय उत्पन्न होनेवाले वच्चे सर्वाङ्ग सम्पन्न होते हैं। परन्तु जो वच्चे उस समयके पहले उत्पन्न होते हैं, उनके अंग अनेक अंशोंमें अपूर्ण होते है, इसीलिये वह जन्मते ही परलोकका मार्ग ग्रहण करते हैं।

यदि सात महिनेके वाद और नव महिनेके पहले वच्चेका जन्म होता है, तो वह अकाल प्रसव कहलाता है। ऐसे वच्चोकी अङ्ग रचना प्रायः पूर्ण होती है, इसलिये यत्नपूर्वक पालनेसे वच भी जाते । परन्तु जिन वच्चोका जन्म सात महिनेके पहले होता है, उन्हे वचानेकी समस्त चेष्टा व्यर्थ प्रमाणित होती है। सात महिनेके पहले वच्चेका जन्म होना

गर्भपात कहा जाता है। गर्भपातमे भी जो गर्भ तीन महिनेके पहले ही पतित होता है, उसे गर्भस्राव कहते है, क्योंकि उस समयतक गर्भ प्रायः रक्तहीके रूपमे होता हैं, अतः रक्तको भांति वह बह जाता है।

गर्भपात विवाहिता स्त्रियोंके लिये विडम्बना स्वरूप है। इससे बढ़कर भय, चिन्ता, उद्वेग और अस्वस्थताका कारण उनके लिये और है ही नहीं। कभी कभी तो इसके पीछे उन्हें अपना प्राण तक खोना पड़ता है। सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है, कि एकबार गर्भपात होनेपर यह रोग जड़ जमा लेता है और हरबार जब जब स्त्रियाँ गर्भवती ा ता। यह उनका सर्वनाश कर देता है। इससे [illegible]का स्वास्थ्य भी नष्ट होता है और वंशवृद्धि भी रुक जाती है।

गर्भपात बहुधा पहले ही महिनेमे हो जाया करता है, परन्तु इसकी सबसे अधिक सम्भावना गर्भस्थितिके आठवेंसे लेकर बारहवें सप्ताहतक अर्थात तीसरे महिनेमे रहती है, किन्तु जिन स्त्रियोंको बच्चा होनेके बाद ऋतुदर्शन होनेके पहले ही फिर गर्भ रह जाता है, उन्हें यदि गर्भ न रहता तो जिस :समय ऋतु दर्शन होता, प्रायः उसी समय गर्भपातका भय रहता है।

✣ ज्ञान-विज्ञान ✣

गर्भपात होनेके अनेक कारण हैं। एक तो बहुत स्त्रियाँ भी ऐसी होती हैं, जिन्हें यह व्याधि विशेष रूपसे सताती है। जो स्त्रियाँ अधिक मोटी होती हैं, जिन्हे सदैव अनियमित रूपसे ऋतुस्राव होता है, जिन्हे कंठमाल या जलोदरकी बीमारी होती है अथवा माता-पिताओंके यह बीमारियाँ होनेके कारण जिनके शरीरमें उनका कुछ असर होता है, उन्हें बहुधा गर्भपातकी शिकायत बनी रहती है। इसके अतिरिक्त खानेपीनेकी अनियमितता, गरम चीजोंका सेवन, अशान्त जीवन, उत्तेजित मनोवृत्ति, रातको देरतक खेल तमाशा थियेटर आदि देखना, उपन्यास या गन्दी पुस्तकोंका पढ़ना और खासकर पुरुषोंके उस अत्याचारके कारण गर्भपात हो जाता है, जिसे वे अपना पुरुषत्व जतानेके लिये अपना अधिकार समझकर स्त्रियों पर किया करते हैं।

इनके अतिरिक्त गर्भपात होनेके कतिपय और भी कारण है। कब्जियत किंवा मलमूत्रका वेग रोकनेसे, अतिसार किंवा अधिक दस्त आनेसे, अधिक क्षय होनेसे, बहुत तंग कपड़े पहननेसे; शीघ्र परिणामी व्याधियोंके आक्रमणसे, दहशत या भय लग जानेसे, पेटपर लात, घुस्सा या किसीप्रकारका आघात लगनेसे; अधिक परिश्रम किंवा थकावट, अधिक खांसी, अधिक हँसी और अधिक क्रोधसे : एकायक बहुत

अच्छा या बुरा समाचार सुनने तथा बुखार, हैजा, प्लेग, शीतला या पेटकी बीमारियोंके कारण भी गर्भपात हो जाता है।

गर्भपातकी व्याधि स्त्रियोंके लिये बड़ी ही भयंकर है। एकबार यह पीछे पड़ जानेपर बहुत दिनोंतक फिर पीछा नहीं छोड़ती। जिसे एकबार गर्भपात होता है, उसे वह पुनः होनेकी संभावना रहती है। इसके अतिरिक्त और न जाने कितनी व्याधियाँ इससे उत्पन्न हो जाती हैं। मासिक धर्मका ठीक समय पर न होना, अनियमित रूपसे कम या अधिक ऋतुस्राव होना, ऋतुस्रावके समय प्रसव वेदनाके समान पीड़ा होना, हिस्टीरिया या वायुकी बीमारी हो जाना प्रभृति बातें गर्भपातके कारण उत्पन्न होकर जीवनको अशान्त और नीरस बना देती हैं। सच पूछिये, तो दस बच्चे होना भला है, परन्तु एकबार गर्भपात होना नहीं भला। इसका दुःख वही स्त्रियाँ बता सकती हैं, जो इसे भोग चुकी हों या भोग रही हों।

गर्भावस्थाके समय गर्भपात न हो, इसलिये प्रत्येक स्त्रीको बहुत ही सावधान रहना चाहिये। नियमित आहार, नियमित विहार और नियमित दिनचर्याके अवलम्बन द्वारा वे आसानीसे गर्भरक्षा कर सकेंगी। साफ सुथरा और

हलका अन्न खानेसे, निर्मल जल पीनेसे तथा विशुद्ध वायु और प्रकाशमे रहनेसे गर्भपातका वहुत सा भय दूर किया जा सकेगा। गर्भवती स्त्रीको सदैव गुदगुदे गद्दे और तकिये, गरम मकान, गरम तासीरके खाद्य पदार्थ, मादक द्रव्य, सब प्रकारकी ओषधियाँ, चित्तको चञ्चल और मनको उत्तेजित करनेवाली बाते तथा सबसे पहले विषयासक्तिसे दूर रहना चाहिये। निःसन्देह इसप्रकार आचरण रखनेसे उन्हें गर्भपातका भय न रहेगा।

जो स्त्रियाँ अनियमित जीवन व्यतीत करती हैं, उन्हें दुर्भाग्यवश गर्भपातका कष्ट सहन करना पड़ता है। गर्भपात होनेके पहले साधारणतया कमर और पेडूके निचले भागमे दर्द होता है, पेशाप कठिनाईसे या बूँद बूँद कर उतरता है और पेड़ू कुछ भारी तथा नीचेकी ओर खिसकता हुआ मालूम होता है। इन लक्षणोंको देखते ही समझ जाना चाहिये, कि गर्भपात होनेवाला है।

जिस स्त्रीको पहली ही बार गर्भस्राव किंवा गर्भपात होता है, उसको इस झमेले छः सात घंटेसे अधिक समय नहीं लगता। इतने ही समयमें उपद्रव आरम्भ होकर उसकी परिसमाप्ति भी हो जाती है। परन्तु अधिकांश स्त्रियोंको—और खास कर उन स्त्रियोंको जिन्हें इसकी

व्याधि लग जाती है, गर्भपात होनेमें कई दिन या कई सप्ताह लग जाते हैं। हम गर्भपात किंवा उसके उपद्रवोंको तीन भागोंमें विभक्त कर प्रत्येक अवस्थाके लक्षण और उससे परित्राण पानेके उपायोंका उल्लेख करेंगे।

प्रथमावस्था—गर्भपातकी प्रथमावस्था हम उसे कहते हैं, जिस समय तक गर्भको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। इस अवस्थामें सावधानीपूर्वक नियमित आचरण करनेसे गर्भपातका भय दूर हो जाता है। इस अवस्थाके लक्षण इस प्रकार हैं :—

गर्भवतीको :अकारण ही बेचैनी और कमजोरी मालूम होती है। भोजनपर रुचि नहीं रहती। हलका बुखार या हरारत मालूम होती है। कमर, जांघ, कूल्हा, पीठ और पेड़ूके नीचे दर्द होता है। यह उपद्रव आरम्भमे स्थायी रूपसे नहीं होते। बारंबार दिखाई देते हैं और बारंबार लोप हो जाते हैं। यदि गर्भवतीका शरीर गठीला और मजबूत होता है, तो कभी कभी दूसरे ही लक्षण प्रकट होते है। ऐसी स्त्रियोंके शरीरमें बड़ी तेजीसे रक्त संचार होने लगता है, नाड़ी बड़े जोरसे चलने लगती है, शिरमे दर्द होता है, बुखार आ जाता है, अन्नकी रुचि नहीं रहती, प्यास अधिक लगती है, जंघा और कमरमें पीड़ा होती

चित्र नं० ९ से १३

चित्र नं० ९ वाईं ओर ऊपर। चित्र नं० १० दाहिनी ओर ऊपर।

चित्र नं० ११ वाईं ओर नीचे।

चित्र न० १२ दाहिनी ओर नीचे। चित्र नं० १३ बीचमे।
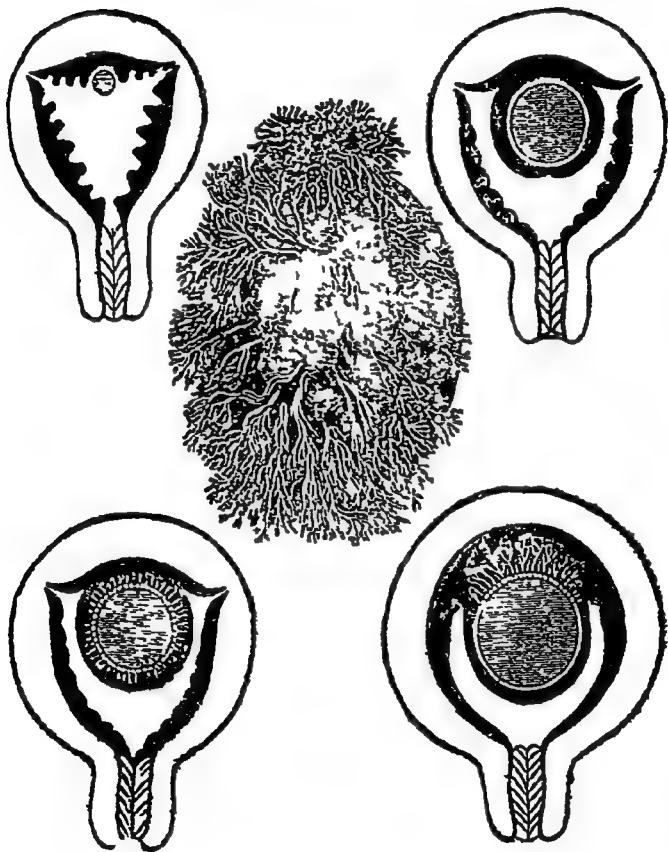
डिम्बका प्रारम्भिक विकास।

[देखो पृष्ठ ९५ और ९६]

है तथा पेड़ूका निचला भाग भारी और तंग प्रतीत होता है। बहुतोंको साधारण शिथिलता मालूम होती है, बहुतोंको मूर्च्छा आती है और बहुतोंको बहुत दिनतक कमर व जंघाओंमे थोड़ा थोड़ा दर्द हुआ करता है।

यह सभी गर्भपातके प्रारम्भिक लक्षण हैं, परन्तु सब स्त्रियोंमे यह समान रूपसे नही पाये जाते। अपनी अपनी शारीरिक अवस्था, गठन और स्वास्थ्यके अनुसार किसीमें कम और किसीमे अधिक लक्षण दिखाई देते हैं। परन्तु ध्यानमे रखनेकी बात है, कि लक्षण चाहे जितने कम और साधारण हों, किन्तु उनकी उपेक्षा न कर पूर्ण सावधानीसे काम लेना चाहिये। यदि गर्भवतीको पहले कभी गर्भपात हो चुका हो और उसमे यह लक्षण प्रकट हों, तो उसका तुरन्त उपचार कराना चाहिये।

गर्भपातकी इस प्रथमावस्थामें गर्भवतीको बिछौने पर सुला रखना ही सबसे अच्छा उपचार है। उसे किसी ठंढे स्थानमे खाली पलंग या दरी किंवा सुजनीपर चित्त सुलाना चाहिये। गुदगुदे बिछौनेपर सुलाना हानिकारक है। ऊपरसे उसे कुछ ओढा देना चाहिये। मल और मूत्र विसर्जनके लिये भी शैय्या-त्याग करना ठीक नहीं है। जिस कमरेमें उसे सुलाया जाय, उसे ठढा रखनेकी चेष्टा

करनी चाहिये। उस स्थानमे किसी प्रकारका शोर या गड़गड़ न होनी चाहिये। गर्भिणीको किसी प्रकारका शारीरिक या मानसिक परिश्रम न करने देना चाहिये। खानेके लिये दूध, साबूदाना या ऐसा ही हलका और ठंढा भोजन देना चाहिये। इन उपायोंका अवलम्बन करनेसे गर्भपात नही होता। परन्तु केवल इन्हीं उपायोके भरोसे बैठ रहना ठीक नहीं। एक ओर यह उपाय करना चाहिये और दूसरी ओर अनुभवी और चतुर वेद्य किंव डाक्टरको बुलाकर उससे भी उपचार कराना चाहिये।

द्वितीयावस्था—परन्तु मान लीजिये, कि गर्भिणीने इन लक्षणोंकी ओर ध्यान न दिया, पहले कभी गर्भपात न होनेके कारण उसने कटि-पीड़ा आदि बातोपर कुछ भी विचार न किया या उपरोक्त उपद्रवोंकी उपेक्षा की तो क्या परिणाम होगा? इस अवस्थामे प्राय: वेदना बढ़ते बढ़ते असह्य हो पड़ती है और अन्तमे थोड़ा सा खून बहुधा गांठोके रूपमें बाहर निकल पड़ता है। खूनको देखते ही समझ लेना चाहिये, कि गर्भ विचलित हो रहा हैं। यह अवस्था बड़ी भयंकर होती है, परन्तु इसे हम एकदम निराशाजनक नहीं कह सकते। तुरन्त डाक्टर बुलाकर औषधोपचार करानेसे इस अवस्थामें भी गर्भपात रुक सकता हैं।

यदि प्रथमावस्थाके लक्षण प्रकट होते ही समुचित उपचार किया जाता है, तो बहुधा यह अवस्था उपस्थित ही नहीं होती। हां, यदि गर्भस्थ बालक मर जाता है या गर्भ दूषित हो जाता है, तो उसका पतित होना अनिवार्य हो जाता है। प्रथमावस्थामे उपचार करनेपर भी यह लक्षण उन्ही स्त्रियोमे पाया जाता हैं, जिनकी अवस्था बहुत ही चिन्ताजनक होती है या जिनके लक्षण बहुत भयंकर होते हैं।

इस अवस्थामे भी पहली ही अवस्थाकी भांति उपचार कराना चाहिये। विशेपता केवल यह होनी चाहिये, कि एक साफ कपड़ेको ठंढे जलमे भिगोकर गर्भिणीके प्रसवद्वार तथा उसके आसपास रख देना चाहिये। जब जब वह सूखे तबतब उसे तर करते रहना चाहिये। जांघ और पेड़ूपर भी ऐसा ही गीला कपड़ा लपेट रखना उचित हैं। हो सके तो प्रसवद्वारपर बरफका पानी भी देना चाहिये। इससे रक्तस्रावको रोकनेमे बड़ी सहायता मिलती है। यदि विशेष कष्ट न हो, तो गर्भिणीको इस अवस्थामें इस प्रकार लिटाना चाहिये, कि उसका पेट और पेड़ू कुछ ऊंचा और कंधे व शिर कुछ नीचा रहे। इस अवस्थामें डाक्टर या वैद्यकी शरण लेना परमावश्यक है।

तृतीयावस्था—यदि गर्भिणीको इन उपचारोंसे कुछ

आराम न मिलकर अधिक खून गिरने लगे, तो समझ लेना चाहिये, कि तृतीयावस्था आरम्भ हो चुकी है। इस अवस्थामें कभी कभी इतना अधिक खून गिरता है, कि देखकर तबियत घबड़ा जाती है। दर्द बहुत बढ़ जाता है और गर्भ नीचेको खिसक पड़ता है। इस अवस्थामें गर्भ रक्षाके लिये जो उपाय किये जाते हैं, वे सभी व्यर्थ प्रमाणित होते हैं। यदि गर्भिणीका जीवन बच जाय, तो उसीको गनीमत समझना चाहिये।

हम पहले ही कह चुके, कि जिस स्त्रीको एकबार गर्भपात होता है, उसे यह व्याधि लग जाती है। इस व्याधिसे मुक्त होनेका सबसे अच्छा उपाय यह है, कि उसे साल दो सालतक पति-समागम न कर गर्भाशयको विश्राम देना चाहिये। कमसे कम यदि एक सालतक पुनः गर्भ नहीं रहता, तो गर्भपात होनेका बहुत सा भय कम हो जाता हैं, परन्तु दुबारा गर्भसंचार होनेपर गर्भिणीको बहुत ही सावधानी रखनी होती है। सावधानी न रखनेसे पुनः गर्भपात हो जानेका भय रहता है।

जो स्त्री एक बार गर्भपातका दुःख भोग चुकी हो, उसे दुबारा गर्भ रहते ही पतिसे अलग सोना आरम्भ कर देना चाहिये। इसके बाद सदैव ठंढे जलसे स्नान कर शरीर

निर्मल रखना चाहिये। दिनको सोना और अधिक परिश्रम करना ठीक नहीं। नित्य सवेरे उठना और नियमितरूपसे परिमित परिश्रम करना चाहिये। भोजन पुष्टिकारक और हलका पसन्द करना चाहिये। पेटमे कब्जियत रहे, तो रोज सवेरे उठकर किञ्चित् गरम जल पीना चाहिये। इससे दस्त साफ होगा। यदि इससे भी कब्जियत दूर न हो, तो बहुत हलका जुलाब लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक सावधानी उस समय रखनी चाहिये, जिस समय पिछली बार गर्भपात हुआ हो। उस समय किसी प्रकारका शारीरिक या मानसिक परिश्रम न कर बिछौनेपर पड़ा रहना ही वाञ्छनीय है।

गर्भवतीको गर्भ रहनेके बाद पहलेके बच्चेको दूध पिलाना एकदम बन्द कर देना चाहिये। गर्भावस्थामे दूध पिलानेसे गर्भपात होनेका बड़ा भय रहता है। इसके अतिरिक्त गर्भवतीको भूलकर भी अपने पास छोटे बच्चोंको सुलाना न चाहिये। सोते समय तीन चार वर्षके बच्चेकी भी लात लग जानेसे बहुधा गर्भपात हो जाता है।

गर्भपात होनेके बाद गर्भिणीका उसी प्रकार यत्न करना चाहिये जिस प्रकार प्रसव होनेपर प्रसूताका किया जाता है। दस पन्द्रह दिनतक उसे बिछौनेपर ही सुला रखना चाहिये।

उसे किञ्चित भी चलने फिरने, बोलने चालने या परिश्रम न करने देना चाहिये। रक्तस्राव भलीभांति बन्द होनेपर उसे धीरे धीरे टहलनेकी इजाजत देनी चाहिये और भलीभांति स्वस्थ होनेपर परिश्रम करने देना चाहिये।

यदि किसी कारणसे पेटमें बच्चा मर जाता है, तो वह बिना किसी कष्टके ही निकल जाता है। गर्भ जितना ही कच्चा होता है, उतना ही खून अधिक गिरता है। गर्भपात होनेके बाद शीघ्र ही ऋतुस्राव होता है और गर्भसंचार भी आसानीसे हो जाता है। परन्तु यह वाञ्छनीय नहीं, इसलिये पति पत्नीको एक दूसरेसे दीर्घकाल तक दूर रहना चाहिये।

गर्भ-रक्षा

संसारके प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक अवस्थामें समुचित नियमोंका पालन अवश्य करना पड़ता हैं। यदि एक रोगी वैद्यके आदेशानुसार आचरण न कर, स्वच्छन्दता पूर्वक आहार विहार करता हैं, तो निःसन्देह उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता है। किसी भी अवस्थामे आवश्यक नियमोंके अनुसार—चाहे वह प्राकृतिक हो या लौकिक आचरण न करनेसे अवश्य अकल्याण होता है। गर्भिणीके लिये भी आरोग्यशास्त्रके ज्ञाताओंने कतिपय नियम निर्धारित किये हैं, जिनके अवलम्बनसे न केवल गर्भिणी ही स्वस्थ रहती है, वल्कि गर्भकी भी रक्षा होती हैं। प्रत्येक गर्भिणीको इन नियमोंके अनुसार आचरण करना चाहिये। यदि गर्भिणीमें इन बातोंको समझनेकी शक्ति न हो, तो उसके माता पिता या पति प्रभृति संरक्षकोंको उसे यह बातें

भलीभांति समझा देनी चाहिये और उन्हें स्वयं भी गर्भ रक्षाके लिये यथाशक्ति चेष्टा करनी चाहिये। गर्भिणीके लिये पालन करने योग्य नियम यह हैं :—

(१) गर्भिणीका कोठा सदैव साफ रहना चाहिये। कब्जियत रहने या दस्त साफ न होनेसे मल एकत्र होनेके कारण प्रसव मार्ग संकीर्ण हो जाता है, फलतः प्रसवके समय गर्भिणीको बड़ा कष्ट होता है और बच्चेका शिर निकलनेमे बड़ी देर लगती हैं। कब्जियत दूर करनेके लिये अण्डीके तेलका जुलाव देना चाहिये। तेज जुलाव देनेसे गर्भपात होनेकी सम्भावना रहती है, अतः हलका जुलाव ही देना युक्तिसंगत है। परन्तु यह उसी अवस्थामें करना चाहिये, जब कभी कभी कब्जियत हो, किन्तु यदि सदैव कब्जि त रहती हो, तो "गर्भावस्थाके रोग" नामक अध्यायमें अंकित साधारण उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये।

(२) गर्भिणीको दस्तकी तरह पेशाब भी खूब खुलासा होना चाहिये। पेशाब कम होना कब्जियतसे भी बड़ा दोष है। इसका कारण यह है, कि हमलोग जो कुछ खाते पीते हैं, उससे रक्तादिक आवश्यक रसोंके अतिरिक्त एक प्रकारका विष भी उत्पन्न होता है और वह पसीना व पेशाब द्वारा बाहर निकलता है। यदि पेशाब खुलासा

नहीं होता, तो गर्भिणीके शरीरमें वह विष व्याप्त हो जाता है और उसके कारण प्रसववेदना आरम्भ होनेके पहले या आरम्भ होनेके साथ ही गर्भिणीको मिर्गीके समान एक व्याधि हो जाती है और उसके हाथ पैर खिंचने लगते हैं। लोग इसे भूत पिशाचका उपद्रव समझ कर झाड़ फूंक और गण्डा तावीज कराने दौड़ते हैं, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता। "शिरमे घाव और पैरमें दवा" इसीको कहते है। वास्तविक रोगकी औषधि न कर ऊटपटांग उपचार करनेसे रोग कैसे शान्त हो सकता है? परन्तु इसके लिये लोगोंको दोष न देकर हम उनकी अज्ञानताको ही दोष देंगे। जब उन्हें मालूम ही नहीं, कि कौन उपद्रव किस कारणसे होता है, तब वे उपचार भी कैसे कर सकते हैं? हाय अज्ञानता! तू न जाने कितने लोगोंका जीवन संकट और विड़म्बनामय बना देती है।

अस्तु, गर्भस्थितिके बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों पेटके यन्त्रोंपर दबाव पड़ता जाता है। ऐसा ही दबाव मूत्राशयपर भी पड़ता है और इसी लिये गर्भिणी स्त्रीको भलीभांति पेशाब नहीं होता।

इस शिकायतको दूर करनेके लिये, यदि जाड़ेके दिन हों, तो गर्भिणीको दिनभरमें तीन चार बार एक एक गिलास

खूब ठण्ढा जल पीना चाहिये और यदि गरमीके दिन हों तो जलमें बरफ भी मिला लेना चाहिये। परन्तु बरफ शहरोंमें ही मिलता है और शहरोंमें भी बहुत लोग ऐसे होते हैं, जो इस तरह दिनभर बरफ नहीं ले सकते ; अतः देहातमें रहनेवाले या जिन्हें बरफ मयस्सर न हो, उन्हें गर्भिणीको इस अवस्थामें सुबह शाम कच्चा दूध और जल बराबर बराबर ले, वही एक गिलास पिलाना चाहिये। इससे गर्भिणीको पेशाब ख़ूब होगा और प्रसवके समय उसे किसी प्रकारका कष्ट न होगा।

(३) मलमूत्रकी भांति गर्भिणीके शरीरसे पसीना भी बराबर निकलते रहना चाहिये। पसीना बराबर न निकलनेसे भी शरीरमें एक प्रकारका विष फैलता है और उसके विकारसे अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं। शरीरको भलीभांति साफ न रखनेसे, ठण्ढी हवा लगनेसे तथ जाड़ेके दिनोंमे यथेष्ट कपड़े न पहननेसे पसीना निकलना बन्द हो जाता है। गर्भिणीको चाहिये, कि सदा नहा धोकर अपना शरीर साफ रक्खे, जाड़ेके दिनोंमें गरम कपड़े पहन कर शीतसे शरीरकी रक्षा करे, ठण्ढी हवासे बचे और वर्षाके दिनोंमें भीगे नहीं। सर्दी या ठण्ढी हवा न लगनेसे कफ, खांसी, बुखार, पेटकी पीड़ा, शिर और

गलेकी पीड़ा प्रभृति न जाने कितनी व्याधियोंसे गर्भिणीको परित्राण मिलता है। जो गर्भिणी इस नियमके विरुद्ध आचरण करती है, वह मानो जानबूझकर रोगको निमन्त्रण देती है।

(४) गर्भिणीको खानपानमे खूब सावधान रहना चाहिये। उसे ऐसा भोजन पसन्द करना चाहिये, जो सादा, पुष्टिकारक और हलका अर्थात् शीघ्र पच जाने वाला हो। दाल, भात, रोटी, दूध प्रभृति जो चीजें हमलोग आमतौरसे खाते हैं, वही गर्भिणीको भी दी जा सकती हैं, परन्तु उनमें "मिर्च मसाला और लोन तेल" की भरमार न होनी चाहिये। अच्छे चावलका भात, मूंग या अरहरकी दाल, गेहूं या यवकी रोटी, निर्दोष तरकारियां और दूध गर्भिणीके लिये सबसे अच्छा भोजन है। खटाई खानेकी इच्छा हो, तो अच्छे पक्के नीबूकी एकआधी फांक दी जा सकती है। इन चीजोंके खानेसे गर्भिणीका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

(५) गर्भिणीको प्रत्येक चीज खूब चिबाचिबा कर धीरे-धीरे खानी चाहिये। शीघ्रतापूर्वक भलीभांती चिबाकर न खानेसे भोजन आसानीसे नही पचता और भोजन न पच-

जैसे पेटमें भयंकर पीड़ा उठनेकी सम्भावना रहती है। परन्तु साधारण अवस्थामें अजीर्णके कारण जो पीड़ा होती है, उससे गर्भिणीकी पीड़ा भिन्न प्रकारकी होती है। उसे जो पीड़ा होती है, वह ठीक प्रसव-वेदनाके समान होती है और यदि उसका शीघ्र उपचार नहीं किया जाता, तो वही पीड़ा वास्तविक प्रसव-वेदनाके रूपमें परिणत हो जाती है और उसके कारण गर्भपात हो जाता है। इस-लिये गर्भवतीको अजीर्णकी व्याधिसे सदैव बचना चाहिये और इससे बचनेका उपाय हलकेसे हलके खानेको भी भलीभांति चिवाकर खानेके अतिरिक्त और नहीं है।

(६) खाते समय वारंवार जल पीना ठीक नहीं। खाते समय या खानेके वाद अधिक जल पीनेसे खाना अच्छी तरह हजम नहीं होता, पेट भारी मालूम होता है और जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। इस लिये भोजनके कुछ समय वाद ही जल पीना चाहिये, परन्तु जो गर्भिणी ऐसा न कर सके, वह इस नियमको भंग कर सकती है, परन्तु खाते समय या खानेके वाद घट्ट घट्ट करके खूब पानी पीना कदापि उचित नहीं।

(७) खाना खानेके वाद गर्भिणीको तुरन्त कोई काम न करना चाहिये। जरा देर विश्राम करना उसके

लिये परमावश्यक है। विश्राम करनेसे पाचन क्रियामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती, परन्तु इससे कोई यह न समझे कि खाना खाकर सो रहना चाहिये। दिनमें सो रहनेसे सारा दिन शरीर अलसाया करता है, कोई काम करनेकी इच्छा नहीं होती और सारादिन पडे ही रहनेकी इच्छा होती है। इसके अतिरिक्त दिनको सोनेसे सबसे बड़ी हानि यह होती है, कि रातको अच्छी तरह नींद नहीं आती। रातको नींद न आनेसे न केवल बेचैनी ही बढ़ती है, बल्कि भोजन भी भलीभांति नही पचता और इस व्याधिके कारण गर्भिणीको जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह हम पहले ही अंकित कर चुके हैं।

(८) गर्भिणी स्त्रियोंको, उनका शरीर पुष्ट करनेके लिये कभी कभी पकान्न, मिष्टान्न और मालमलीदा खिलाया जाता है, परन्तु इससे कोई लाभ न होकर बहुधा गर्भको हानि पहुंचती है। आदमी अधिक खानेसे मोटा नहीं होता, बल्कि अधिक हजम करनेसे मोटा होता है। गुरुपाकी मालमलीदा खिलानेसे गर्भिणीको बदहजमी और पेटमे पीड़ा होनेकी सम्भावना रहती है।

(९) किसी किसी गर्भिणीको सवेरे शैय्या त्याग करते ही खूब भूख लगती है। यदि ऐसा हो, तो उसे

कोई विकार रहित चीज अवश्य खिलाना चाहिये, क्योंकि गर्भावस्थामे भूखे रहनेसे गर्भस्थ बालकको बड़ा कष्ट होता है। गर्भिणीको गर्भावस्थामे यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये, कि अपने शरीरका वह जितनाही यत्न करेगी, गर्भस्थ बालक भी उतना ही हृष्टपुष्ट और निरोग होगा।

(१०) सवेरे सोकर उठते ही यदि गर्भिणीको आलस लगे, शरीर दुखे और मतवाली चढ़े, तो उसे प्रतिदिन बिछौना छोड़नेके कुछ समय पहले थोड़ासा दूध पीना चाहिये। इससे शरीर आलस्य रहित और फुर्तीला बना रहता है।

(११) गर्भिणीको अपने कपड़े सदैव साफ रखने चाहिये। गीला या तंग कपड़ा भूलकर भी उसे न पहनना चाहिये। जो कपड़े पहने जांय, वह ढीले, हलके व साफ हों।

(१२) गर्भिणीको अधिक परिश्रम न करने देना चाहिये, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है, कि उसे रातदिन बैठाल ही रखना चाहिये। जरा भी परिश्रम न करनेसे गर्भिणीका शरीर बहुत सुकुमार हो जानेके कारण प्रसवके समय उसे बड़ा ही कष्ट होता है। जो स्त्रियां परिमित परिश्रम करती हैं, वे चैनसे रहती हैं और उनके बच्चे भी

मजेमे रहते हैं। साथ ही प्रसवके समय उन्हें अधिक कष्ट भी नहीं सहन करना पडता।

गर्भिणीको चाहिये, कि गर्भावस्थामे वह अपने घर गिरस्तीका काम बराबर करती रहे। जो स्त्रियां परिश्रमसे मुँह नहीं मोड़ती, उन्हे प्रसवके समय जरा भी कष्ट नही होता। जरा गरीबोकी ओर देखिये। उनके यहां रोटी-पानी या बरतन चौका करनेके लिये दास दासियां नहीं रहती। गर्भावस्थामें भी स्त्रियां सब कार्य पूर्ववत् किया करती हैं, फलत. प्रसवके समय उन्हे जरा भी कष्ट नही उठाना पडता। जिस दिन वे सौरीघरमे प्रवेश करती हैं, उस दिन तक, बल्कि यों कहिये कि प्रसव होनेकी घड़ी तक काम करती हैं और बादको बिना किसी कष्टके बच्चेको जन्म देती हैं। ऐसी स्त्रियोको प्रसवके समय दाईकी भी आवश्यकता नहीं पडती—दाईको खबर दी जाती है और वह जबतक आती हैं, तबतक इधर निवृत्ति हो जाती है। परन्तु धनीमानी लोगोंकी स्त्रियां, जो उठकर अपने हाथसे पानी तक नहीं पीतीं, उन्हे प्रसव करानेके लिये दाई और डाक्टरोंको न जाने कितने प्रकारके औजार ईजाद करने पड़ते हैं। ईश्वरको दयासे जिन्हें ऐश्वर्य प्राप्त होता है, उनके यहां नौकरो चाकरोंकी कमी नहीं होती। उनके

यहां स्त्रियोको कुछ काम नहीं करना पड़ता। वे सारा दिन बैठने, सोने, गप लड़ाने और जरा अक्लमन्द हुई तो गूलूबन्द या मोजे बुननेमे विता देती हैं। परन्तु प्रसवके समय दासदासी काम नहीं आते। यह सारा कष्ट उन्हींको सहना पड़ता है। कष्ट भी जैसा तैसा नहीं; गर्भावस्थामें काम न करनेके कारण उनका शरीर सुकुमार हो जाता है, अतः कष्ट भी उन्हें दूना चौगुना होता है। ऐसी स्त्रियोंको दाई और यन्त्रोकी सहायताके विना प्रसव नहीं होता। इसलिये गर्भवतीको घरमे नौकर चाकर होनेपर भी नित्य थोडा बहुत परिश्रम करते रहना चाहिये, ताकि शरीर कसा रहे और प्रसवके समय विशेष कष्ट न हो।

(१३) किसी किसी स्त्रीके पेटकी चमड़ी बहुत ढीली होती है। गर्भावस्थामे ऐसी स्त्रियोको पेट बढ़नेपर कुछ पीड़ा और कष्ट मालूम होता है, अतः उनके पेटका जो भाग झूल रहा हो, उसे ऊपर उठाकर कपडेसे बांध देना चाहिये। जिस समय पेट बढ़ता है, उस समय भी गर्भवती को बड़ा कष्ट होता है, किसी किसीको ऐसा मालूम होता है, कि मानो चमड़ी फटी जा रही है। ऐसी अवस्थामें गरीका तेल धीरे धीरे उसके पेटपर लगाना चाहिये।

चित्र नं० १४
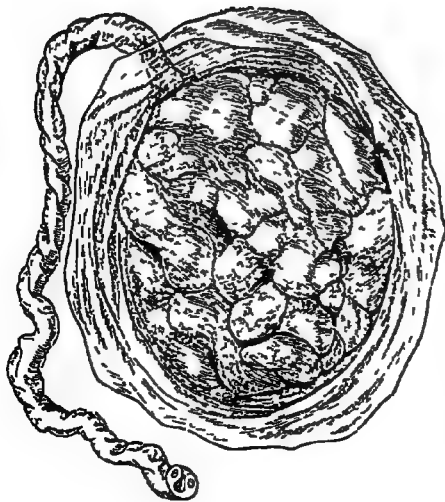
कमल और नाल (एक ओरसे)

चित्र नं० १५

कमल और नाल (दूसरी ओरसे)

[देखो पृष्ठ ६६]

यदि स्तनोंमें दूध भरनेके कारण पीड़ा हो, तो उनमें भी गरीका ही तेल किञ्चित गरम करके लगाना चाहिये। इससे पीड़ा निवृत्त होगी।

(१४) गर्भिणीको कहीं अकेले न जाने देना चाहिये। यदि दैवयोगसे वह कहीं किसी कारणसे डर या दहशत खा जाती है, तो बहुधा उसके पेटका बच्चा मर जाता है और उसी दिन या उसके दूसरे दिन गर्भस्राव होनेके बाद उसी दहशतके कारण दो चार दिनमें गर्भिणी भी मर जाती हैं, अतः गर्भवतीके संरक्षकोंको भूलकर भी उसे अकेली न छोड़ना चाहिये, क्योंकि इससे गर्भिणी व उसके बच्चे— दोनो प्राणियोंको प्राणसे हाथ धोना पड़ता है।

(१५) गर्भवती स्त्रीको शीतला, क्षय, दमा, प्लेग, कालरा प्रभृति संक्रामक रोगके रोगियोंके पास न जाने देना चाहिये ; क्योंकि यह बीमारियां रोगीको छूने या उसके पास बैठनेसे भी दूसरेको हो जाती हैं। शीतला जैसी बीमारी यदि कहीं किसी गर्भवती स्त्रीको हो गयी, तो वह चाहे भले ही बच जाय, परन्तु उसका बच्चा नहीं बचता। अतः इस सम्बन्धमे भी खूब सावधान रहना चाहिये।

(१६) अड़ोसपड़ोस या महल्लेमें किसीकी बहूबेटीको लड़का होता हो, तो उस समय गर्भवतीको उसे देखने न

जाने देना चाहिये। क्योंकि दूसरेकी प्रसव-वेदना देखकर गर्भवती अत्यन्त भयभीत हो जाती हैं और उसके स्मरणसे प्रसवके समय उसे विशेष कष्ट होता है।

(१७) स्त्रियोंको जिस समय ऋतुस्राव होता है, उस समय उन्हें कुछ बेचैनी मालूम होती है। गर्भ रहनेपर भी प्रतिमास उसी समय कुछ वैसी ही बेचैनी मालूम होती है। स्त्रियां इस बातपर ध्यान नहीं देतीं, अतः उन्हें कुछ मालूम नहीं होता, परन्तु उस समय यदि वे अधिक चलती फिरती या परिश्रम करती हैं अथवा किसी दूसरे प्रकारकी गड़बड़ होती है, तो उसी समय गर्भपात हो जाता है। अतः प्रत्येक गर्भवती स्त्रीको अपने अन्तिम ऋतुस्रावका दिन अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये और प्रतिमास उस समयके तीन चार दिन बड़ी सावधानीसे व्यतीत करने चाहिये।

(१८) जिन स्त्रियोंको बाधककी पीड़ा होती है, उन्हें बहुधा गर्भ ही नहीं रहता, किन्तु यदि रह जाता है तो उस अवस्थामें भी यह पीड़ा उनका पिण्ड नहीं छोड़ती। जरा-सा भी कारण मिलते ही उन्हें पीड़ा होने लगती है और बिना गर्भपात हुए फिर वह शान्त नहीं होती, अतः जो स्त्रियाँ इस व्याधिसे व्यथित रहती हों, उन्हें गर्भावस्थामें विशेष सावधान रहना चाहिये।

(१६) कमसे कम तीन महिने तक गर्भिणीको बहुत ही यत्नसे रखना चाहिये, क्योंकि इस समय जरा भी गड़बड़ होनेसे गर्भस्राव होते देर नहीं लगती। इसके बाद विशेष भय नहीं रहता, परन्तु यह सदैव स्मरण रखिये, कि गर्भिणी एक रोगीके समान होती है। प्रसव काल उसकी मरणासन्न अवस्थाका दिन है। उस दिन तक उसकी परिचर्या करनी चाहिये, यदि पार लग जाय तो समझिये, कि उसका फिरसे जन्म हुआ; यदि पार न लगे तब भी आश्चर्य न करना चाहिये, क्योंकि जहां अज्ञानताका घोर अन्धकार व्याप्त हो और आदिसे अन्ततक अनियमितता, लापरवाही तथा भूलपर भूल की जाती हो, वहां उसका पार लगना ही आश्चर्यकी बात है।

११

गर्भ-परीक्षा

संसारमें स्त्री और पुरुष दोनो ही एक समान उपयोगी हैं। विना दोनोके न केवल प्रजासृष्टिके ही कार्यमें वाधा पडती है, बल्कि और भी अनेक प्रकारकी असुविधायें होती हैं। किसी समाजमे जब स्त्री या पुरुष-दोमेसे एककी संख्या वहुत बढ़ या घट जाती है, तब उस समाजमें विशृङ्खलता उत्पन्न हो जाती है। युरोपीय महासमरमें वेल्जियम, जर्मनी, फ्रान्स और इङ्गलैंड प्रभृति देशोके पुरुष बेतरह मारे जानेके कारण, वहां इस समय स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोकी अपेक्षा वहुत अधिक हो गई है। इसके फल स्वरूप वहाँकी अनेक स्त्रियाँ परजाति और परदेशके लोगोके साथ विवाह करती हैं और अनेकोंको किसी पुरुषके एक पत्नी होते हुए भी फिर उसीसे विवाह करना पड़ता है। देशके हितचिन्तकोंको चिन्ता हो रही है, कि यह स्त्रियां किस

तरह ठिकाने लगाई जांय और किस तरह इनका जीवन नष्ट होनेसे बचाया जाय। इसके विपरीत कभी कभी किसी समाजमे स्त्रियोकी कमी पड़ जाती है। स्त्रियोंको कमी पड़ जानेपर अनेक पुरुषोंको अविवाहित जीवन व्यतीत करना पड़ता है, अनेक पुरुष किसी दूसरे समाजकी स्त्रियों-से विवाह करते हैं और अनेक पुरुष दुराचारी हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमे समाजके हितचिन्तक यदि कोई उपाय नहीं खोज निकालते, तो बहुधा उस समाजका अस्तित्व ही मिट जाता है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि किसी भी समाजमें स्त्री और पुरुष दोनोंकी संख्या समान होना आवश्यक है। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है, जब माता पिता समान रूपसे पुत्र और कन्याओंको जन्म दें। समाजमें जब दोनोंकी समान आवश्यकता है, तब इसका कोई कारण नहीं कि पुत्र किंवा कन्याका उत्पन्न होना वाञ्छनीय समझा जाय। एकका जन्म होनेपर आनन्द मनाया जाय और दूसरेका जन्म होनेपर भाग्यको दोष दिया जाय। एकको उच्च और दूसरेको हेय समझा जाय। यह केवल माता पिताके हृदयको संकीर्णता और उनका अज्ञान है, समाजकी कुप्रथा है, लोगोकी कुरुचि है—और कुछ नहीं।

जनन-विज्ञान

संसारकी अनेक जातियोंमें कन्या-विक्रय और अनेक जातियोंमें वर-विक्रयकी प्रथा प्रचलित है। जिन जातियोंमें कन्या-विक्रयकी प्रथा है, उनमें कन्याका उत्पन्न होना अच्छा समझा जाता है, और जिनमें वर-विक्रयकी प्रथा है, उनमे पुत्र अधिक पसन्द किया जाता हैं। परन्तु यदि सब लोग पुत्र ही पसन्द करने लगें और उन्हें कोई ऐसी तरकीब मालूम हो जाय, जिससे उनकी यह इच्छा कार्यरूपमे परिणत हो सके, तो क्या आप इस बातकी कल्पना कर सकते हैं, कि उस समय क्या हो? उस समय पुरुषोंकी संख्या इतनी बढ़ने और स्त्रियोंकी घटने लगे, कि माता पिताओंको लड़कोंके विवाहकी चिन्ता लग जाय और सरकारको तुरन्त ऐसा कोई कानून बनाना पड़े जिससे माता पिताओंको लड़के और लड़कियां समान संख्यामें उत्पन्न करनेके लिये बाध्य होना पड़े।

मनुष्योंकी कौन कहे, हम समझते हैं कि स्वयं प्रकृति भी इस परिस्थितिको पसन्द नहीं कर सकती और इसीलिये शायद अबतक मनुष्य जाति इस रहस्यको हृदयंगम नहीं कर सकी। प्राचीन ऋषि मुनिओंसे लेकर अर्वाचीन वैज्ञानिकोंतकने इस रहस्यका पता लगानेके लिये खोज और छानबीन की है, परन्तु अबतक इस बातका पता नहीं चल

सका, कि किस अवस्थामें लड़का और किस अवस्थामें लड़की उत्पन्न हो सकती है। यद्यपि, जिस तरह संसारके समस्त कार्य प्रकृतिके निर्दिष्ट नियमानुसार ही संचालित होते हैं, उसी तरह इसका भी निर्दिष्ट नियम है, परन्तु अभी उसे हम लोग नहीं जान सके। विद्वानोंने खोज करनेके बाद अपनी जो राय दी है, जो बातें बतलाई हैं, वह एक दूसरेसे नहीं मिलतीं। उनके सहारे हम लोग किसी ऐसे सिद्धान्त पर नहीं पहुंच सकते, जिसे ठीक कहा जा सके। हमारी समझमें, यह नियम हम उसी समय समझ सकेंगे, जब हम पुत्र और कन्या—दोनोंको समान दृष्टि और समान भावसे देखने लगेंगे, जब हमारे हृदयकी संकीर्णता दूर हो जायगी, जब हम मानव समाजमें दोनोंकी समान आवश्यकता समझने लगेंगे और जब प्रकृतिको विश्वास हो जायगा कि इस रहस्यको जानते हुए भी मनुष्य ऐसा कार्य न करेंगे, जिससे सृष्टिकार्यमें बाधा पड़नेकी सम्भावना हो।

और देशोंकी ईश्वर जाने, परन्तु यदि आज भारत-वासियोंको ऐसी तरकीब मालूम हो जाय, तो लोग आंख बन्द कर पुत्र ही पुत्र उत्पन्न करने लगे, क्यों कि यहां पुत्र, पिताका तारनहार और कन्या पराई सम्पत्ति समझी जाती

है। कन्या एक दिन पिताके घरका सर्वस्व अपहरण कर ससुराल चल देती है और पुत्रकी बदौलत धनके अतिरिक्त एक छोटी सी बहू भी मिलती है। बहूसे पुत्रपुत्रियां उत्पन्न होती हैं और उनसे वंशविस्तार होता है। कन्या उत्पन्न होनेपर पैर पूजने पड़ते हैं और पुत्र उत्पन्न होनेपर पुजवानेको मिलते हैं। बतलाइये, ऐसी अवस्थामे पुत्रको छोड़ पुत्री कौन पसन्द करेगा? और सब लोग पुत्र ही उत्पन्न करने लगें, तो प्रकृतिका सृष्टिकार्य कितने दिन चलेगा?

इन सब कारणों से जबतक मानव-समाजकी अज्ञानता न दूर हो जाय, तबतक इस रहस्य पर पड़दा ही पड़ा रहना वाञ्छनीय है। जिन लोगोंको समान संख्यामे पुत्र और कन्यायें उत्पन्न होती हों, उन्हें यह रहस्य जाननेके लिये उत्सुक भी न होना चाहिये, परन्तु जिन लोगोंको केवल कन्या ही कन्यायें या केवल पुत्र ही पुत्र उत्पन्न होते हों, उनके लिये यह विषय लाभदायक हो सकता है। हमारी धारणा है, कि अबतक वैज्ञानिकोंने इस सम्बन्धमें जो खोज की है, उसके अनुसार आचरण करनेपर ऐसे लोगोंको किसी अंशतक सफलता भी मिल सकती है। * परन्तु

---

* यह विषय हमारी लिखी हुई "मनचाही सन्तान" नामक पुस्तकमें विशेषरूपसे वर्णित है।

साधारण अवस्थामें चाहे पुत्र उत्पन्न हो चाहे कन्या, हमें क्षुब्ध न होकर आनन्द ही मनाना चाहिये।

गर्भावस्थामें बच्चेके मातापिता और स्वजनोंको गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा कि कन्या—यह जाननेकी स्वाभाविक इच्छा होती है। प्राचीन और अर्वाचीन वैज्ञानिकोंके मतानुसार यह पहचान निम्नलिखित लक्षणोंसे की जा सकती है।

जिस गर्भिणीके दाहिने अंग—कुच, जंघा और नेत्र आदि बायें अंगोंकी अपेक्षा कुछ बड़े मालूम हों, दाहिने कुचमें पहले दूध आवे, जिसे शौर्य और वीररसकी कहानियाँ रोचक मालूम हो, जिसके शरीरमें स्फूर्ति अधिक रहे, जिसका चित्त प्रफुल्ल और चेहरा चमकता हुआ रहे, जिसकी दाहिनी कूख अधिक भारी मालूम हो और जिसे लड़केकी फड़कन दाहिनी ही ओर मालूम हो, उसे पुत्र होता है।

जिस गर्भिणीके वाम अंग अधिक बढ़ें, मीठी चीजें खानेकी अधिक इच्छा हो, शरीर आलसी मालूम हो, चेहरा मलीन रहे, बायाँ पैर पहले उठे, बाईं कूख अधिक भारी रहे और लड़का बाईं ओर ही फड़कता मालूम हो, उसे कन्या होती है।

१२

गर्भावस्थाके रोग

गर्भावस्थामे स्त्रियोंको अनेक रोग होते हैं, जिनमेसे कितने ही ऐसे होते हैं, जो बिना किसी उपचारके ही गर्भावस्था पूर्ण होनेपर शान्त हो जाते हैं और कितने ही ऐसे होते हैं, कि जिनके लिये डाक्टर और वैद्योंकी शरण लेनी पड़ती है। कहना व्यर्थ है, कि गर्भके कारण शरीरमे जो परिवर्त्तन होते हैं, उन्हींके कारण यह रोग उत्पन्न होते हैं और इसीलिये गर्भावस्था पूर्ण होने पर वे आप ही आप अच्छे हो जाते हैं। लोग कहते हैं, कि गर्भावस्थामें स्त्रियोंको दवा न खिलानी चाहिये, इसका भी कारण शायद् यही है। परन्तु इसका तात्पर्य :यह कदापि नहीं हैं, कि कोई रोग भयंकर रूप धारण करे, तब भी दवा न दी जाय और विचारी गर्भिणीको बिना मौत मरने दिया जाय। गर्भिणीके समस्त रोग गर्भावस्था पूर्ण होने पर

दूर ही हो जायंगे ऐसा कोई नियम नहीं है। गर्भावस्थामें ही अनेक रोग भयंकर रूप धारण करते हैं और अन्यान्य रोगोंको जन्म देते हैं, इसलिये निम्नलिखित बातोंपर विचार कर समुचित उपायोंका अवलम्बन अवश्य करना चाहिये।

वैज्ञानिकोंका मत है, कि स्त्रियोंकी गर्भावस्था कोई ऐसी अवस्था नही है, जिसे हम उनकी रुग्नावस्था कह सकें, फिर भी हमलोग देखते हैं, कि अधिकांश स्त्रियां अपनी गर्भावस्था-में बीमार ही बनी रहती है। अत. इस अध्यायमें हम गर्भावस्थाके उन रोगोंका वर्णन करते हैं, जो प्राय. गर्भस्थिति-हीके कारण उत्पन्न होते हैं, और बहुधा प्रसवके बाद आप ही आप शान्त हो जाते हैं, परन्तु गर्भावस्थामे यदि कोई रोग अधिक भयंकर मालूम हो तो तुरन्त अच्छे वैद्य या डाक्टर-की सलाह लेनी चाहिये और यदि वह कहे तो उपचार भी कराना चाहिये। साधारण रोगोंको साधारण अवस्थामें डाक्टरोंके पास न जाकर स्त्रियोंको अपने आहार विहारके परिवर्तन द्वारा उन्हें आप ही आप आराम कर लेना चाहिये। यही चतुर स्त्रियां करती हैं और यही करना उचित भी है।

कुछ भाग्यशाली स्त्रियां ऐसी भी होती है, जिन्हें गर्भा-वस्था सुखकर हो पड़ती हैं। साधारण अवस्थाको अपेक्षा

गर्भावस्थामे वे अधिक सुखी और अधिक स्वस्थ मालूम होती हैं, परन्तु अधिकांश :स्त्रियोंको यह अवस्था बड़ी ही दुःखकर प्रतीत होती है। वे नाना प्रकारकी व्याधि और कष्टोंके कारण सूखकर कांटा हो जाती है। यहां तक कि किसी किसीको खाटसे उठने तकका भी सामर्थ्य नहीं रहता। गर्भावस्थाके साधारण रोग यह हैं :—

(१) क़य होना—गर्भसंचार होनेके बाद स्त्रियोंको सबसे पहले बहुधा यही बीमारी होती है। प्रायः सभी गर्भवती स्त्रियोंपर इसका आक्रमण होता है, इसलिये लोग इस गर्भका लक्षण भी मानते हैं। कभी कभी यह गर्भ रहनेके कुछ ही दिन बाद आरम्भ हो जाती है और प्रायः चौथे पांचवे महिनेमें जब गर्भ फड़कने लगता है, तब यह आप ही आप शान्त हो जाती है। गर्भाशय किंवा जरायुकी वृद्धि इसका कारण बतलाया जाता है। कुछ डाक्टरोंका कथन है, कि यह गर्भवतीके लिये श्रेयस्कर है; क्योंकि जिस गर्भवती स्त्रीको यह व्याधि नहीं होती, उसे गर्भपात होनेका भय रहता है, परन्तु डाक्टर कावेन इसे नहीं मानते। वे इसका कारण गर्भिणीके आहार विहार और आचार विचारकी अनियमितता ही मानते हैं। वे कहते हैं, कि जंगली स्त्रियोंमें यह व्याधि नहीं दिखाई देती,

क्योंकि वे सीधासादा और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करती हैं। यदि सभ्य स्त्रियां वैसा जीवन व्यतीत करें, तो उन्हें भी यह व्याधि नहीं हो सकती।

यह व्याधि बहुधा सुबहमें शय्यात्याग करते ही प्रकट होती है। स्त्रियोको उबकाइयां आने लगती हैं, मुंहमें पानी भर आता है और बादको क़य हो जाती है। इसीलिये अङ्ग-रेजोमें इसे Morning Sickness अर्थात् सुबहकी बीमारी कहते हैं, परन्तु वास्तवमे इसका कोई समय निश्चित नहीं है। कुछ स्त्रियोको सुबहमे, कुछ स्त्रियोंको खाना खानेके बाद और कुछ स्त्रिोंको शामके वक्त क़य होती है। कभी कभी यह उपद्रव इतना बढ़ जाता है, कि गर्भवती और उसके संरक्षकोको बड़ी चिन्ता होने लगती है। यदि अवस्था वास्तवमे चिन्ताजनक हो, तो किसी वैद्य या डाक्ट-रकी सलाह लेनी चाहिये अन्यथा समुचित उपचार करते हुए इस आशा और विश्वासपर सानन्द समय व्यतीत करना चाहिये, कि कुछ दिनोंमें इन उपद्रवोंका आप ही आप अन्त आ जायगा।

गर्भिणीको इस अवस्थामे अपने आहारपर बहुत ही ध्यान रखना चाहिये। समूचे दिनमे केवल दो बार हलका व सादा भोजन ग्रहण करनेसे इसका कष्ट कम हो जाता

है। भोजन करनेके बाद या पहले और कोई चीज, चाहे जितना मन चले, कदापि न खानी चाहिये। शौचत्याग करनेके पहले थोड़ासा बरफ (मिल सके तो) छोटे छोटे टुकड़े बनाकर निगल जाने या एक गिलास ठण्ढा पानी पी लेनेसे भी बहुत आराम मिलता है। कभी कभी दस मिनिट तक पेट सेकने या उसपर गीला कपड़ा लपेट रखनेसे भी उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

डाक्टरों और वैद्योंने इसके लिये अनेक औषधियां भी निर्द्धारित कर रक्खी हैं, परन्तु प्रकृतिकी भिन्नताके कारण जो औषधि किसीको लाभ पहुंचाती है, वही दूसरेके लिये व्यर्थ प्रमाणित होती है, इसलिये उनका नामोल्लेख करना हम ठीक नहीं समझते। यदि इलाज कराना हो तो किसी डाक्टरसे ही कराना चाहिये। शरीर मलकर अच्छी तरह नहाना, हलका, सादा किन्तु पुष्टिकारक भोजन करना, कोठा साफ रखना, खुली हवामें टहलना और आचार विचार शुद्ध रखना—यही इस व्याधिका सबसे अच्छा इलाज है।

(२) दोहद—गर्भावस्थामें स्त्रियोंको जो अनेक प्रकारकी इच्छायें उत्पन्न होती हैं, उसे दोहद कहते हैं। प्रायः सभी स्त्रियां गर्भावस्थामें मिट्टी खाती हैं। उन्हें

सुगन्धि रहित पदार्थों में सुगन्ध और स्वाद रहित पदार्थों में स्वाद मालूम होने लगता है। फलत वे न खाने योग्य चीजें खाने लगती हैं। वैद्यक शास्त्रमें गर्भिणीको इच्छानुसार चीजें खिलानेका आदेश है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि जो चीजें गर्भ किंवा गर्भिणीके लिये हानिकारक हों, वह भी उसे खिलाई जाय। जो स्त्रियां गर्भावस्थामें मिट्टी खाती हैं, उनके बच्चे भी ऐसे होते हैं जो बाल्यावस्थामें चुरा-चुरा कर मिट्टी खाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी सोचना चाहिये, कि मिट्टी कोई खानेकी चीज नहीं है। न यह हजम हो सकती है न इससे शरीरको किसी प्रकारका पोषण ही मिल सकता है, इसलिये इसका खाना व्यर्थ है।

बहुत लोग कहते हैं, कि गर्भावस्थामें स्त्रियां जो खानेकी इच्छा करें, वह उन्हें न खिलानेसे गर्भस्थ बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है, परन्तु यह धारणा निर्मूल है। मिट्टी खानेसे बच्चेका कोई उपकार न होकर उसका अपकार ही होता है। हां, यदि स्त्रीको कोई अच्छी चीज खाने पीने या सुननेकी इच्छा हो, तो उसे पूर्ण करना परम कर्त्तव्य है। सुश्रुताचार्य्यने एक स्थानमें लिखा है कि—"लब्ध दोहदा वीर्य्यवन्तं चिरायुषं पुत्रं जनयति"

अर्थात् जिन स्त्रियोंका दोहद भलीभांति पूर्ण किया जाता है, वे शक्तिशाली और दीर्घायुषी पुत्रको जन्म देती हैं। चरकाचार्य्य और वाग्भट्टका भी ऐसा ही मत है। इसलिये यदि स्त्रियां किसी अच्छी वातकी इच्छा करें, तो उसे अवश्य पूर्ण करना चाहिये। विकार रहित फल और स्वादिष्ट पक्वान्न खाना अनुचित नहीं है। स्त्रियां यदि इन चीजोंको इच्छा करें, तो उन्हें परिमित परिमाणमें यह चीजें अवश्य देना चाहिये। वस्त्रालंकार धारण करना, फूल सूंघना, वन उपवन या नदीके तटपर हवा खाना, संगीत, और इतिहास सुनना आदि सभी बातें अच्छी हैं। इन बातोंकी इच्छा हो तो अवश्य पूर्ण करना चाहिये।

यदि किसी स्त्रीको बुरी चीजें खानेकी इच्छा होती हो, तो वह चीज उसे न देकर समुचित उपचार कराना चाहिये। जो स्त्रियां गर्भावस्थामें कुछ काम नहीं करती और सारा दिन वैठी रहती हैं, उन्हें ऐसी चीजें खानेकी इच्छा विशेष रूपसे होती है, इसलिये अनुचित इच्छाओंको रोकनेके लिये शारीरिक और मानसिक परिश्रम करते हुए मनको किसी काममें लगाये रहना चाहिये।

(२) मूर्च्छा—गर्भाशयकी वृद्धिके कारण स्नायु और हृदयपर बोझ पड़ता है, इसलिये अनेक स्त्रियोंको

चित्र नं० १६ और १७
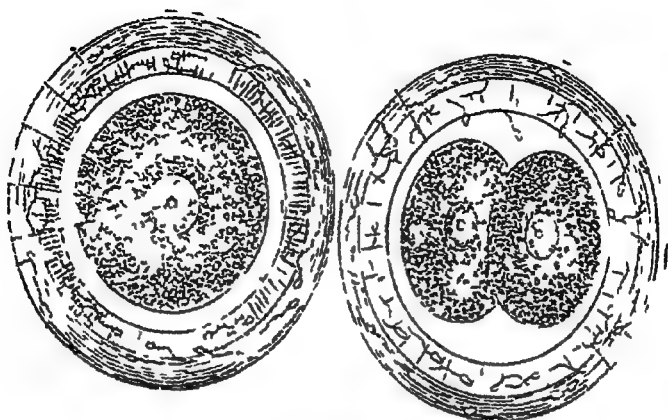
स्थिरताप्राप्त और दो भागोमे विभक्त डिम्ब।

चित्र नं० १८ और १६।
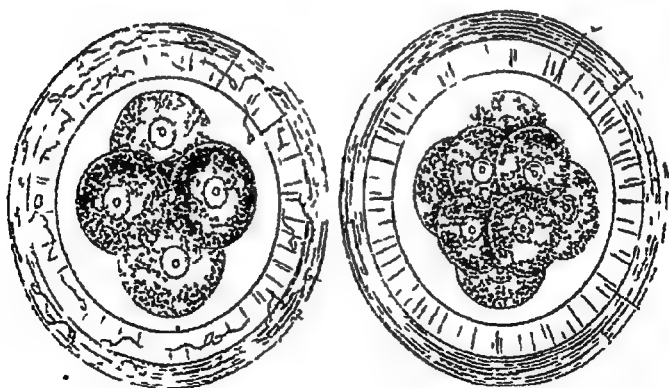
चार और आठ भागोमे विभक्त डिम्ब।

[देखो पृष्ठ ६६]

गर्भावस्थामें मूर्च्छा आया करती है। कितनी ही स्त्रियोंको आदिसे लेकर गर्भावस्थाके अन्ततक, कितनी ही स्त्रियोंको पांचवे महीनेसे और कितनी ही स्त्रियोंको केवल कुछ ही समयके लिये यह रोग होता है। कभी कभी गरमी, अत्यन्त आनन्द, मनपर किसी प्रकारका आघात या ऐसे ही किसी अन्य कारणसे भी इसका दौरा होता है। जिस समय गर्भिणीको मूर्च्छा आवे, उस समय उसे खूब हवादार स्थानमें, उसका शिर कुछ नीचा रहे, इस तरह सुलाना चाहिये और मुंहपर पानीका छींटा देना चाहिये। हल्का भोजन, कोठेका साफ रखना और नियमित आहार विहार करनेसे इस व्याधिसे भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

(४) कब्जियत—गर्भावस्थामे स्त्रियां प्रायः इस व्याधिसे पीड़ित रहती है। यह कई कारणोंसे उत्पन्न होती है और अनेक रोगोंको जन्म देती है। सिर दर्द तो मानो इसके साथ ही लगा रहता है। इसलिये कब्जियतके साथ ही यह उत्पन्न होता है और उसके साथ ही अच्छा भी होता है। सिर दर्दके अतिरिक्त कब्जियतके कारण पेटका भारी रहना, हृदयमें दाह होना, दिल धड़कना, नींद न आना—प्रभृति अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, यहां तक कि इसके कारण गर्भपात भी हो जानेकी सम्भावना रहती है।

-:- गर्भ-विज्ञान -:-

गर्भिणीको कब्जियत होनेके प्रधान कारण दो हैं—आहार विहारकी अनियमितता और गर्भवृद्धि। आहार-विहारकी अनियमितताके कारण सर्वथा स्वस्थ मनुष्य भी इस व्याधिसे ग्रसित हो जाते है, अतः गर्भिणीको यह व्याधि होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं, परन्तु जो स्त्रियां आहार विहारमें सदैव सावधान रहती हैं, उन्हें भी गर्भावस्थामें यह व्याधि हो जाया करती है। इसका कारण डाक्टरोंके मतानुसार गर्भवृद्धिके कारण पेटकी अन्त्रावली तथा अन्यान्य यन्त्रसमूहपर भार या दबावका पड़ना है। दबाव पड़नेके कारण मल निकलनेका मार्ग संकुचित हो जाता है, अतः दस्त साफ नहीं होता।

जिन स्त्रियोंको गर्भावस्थामें कब्जियत रहती है, उन्हें उपरोक्त रोगोंके अतिरिक्त प्रसवके समय भी विशेष कष्ट सहन करना पड़ता हैं। डाक्टरोंका कथन है, कि गर्भिणीको दस्त साफ न होनेसे पेटमें मल एकत्र होकर प्रसव मार्ग संकीर्ण हो जाता है, इसीलिये प्रसूतिकाको अधिक कष्ट होता है। इसलिये कब्जियत चाहे जिस कारणसे हो, उसे आरम्भ हीसे दूर करनेकी चेष्टा करते रहना परम कर्त्तव्य हैं। खूब चलने फिरने, और घरका काम धन्धा करनेसे मजेकी कसरत हो जाती हैं और इससे खाना भलीभांति

हजम हो जाता है। खाना भी खूब हलका और सादा होना चाहिये। फल—कच्चे, पक्के या तरकारीके रूपमें खाना परम गुणकारी है। गरम दूध और ठण्ढा पानी—उत्तम पेय हैं। आहार विहारमें इस प्रकार नियमितता रखनेसे बहुत कुछ कब्जियत कम हो जायगी। यदि इससे कम न हो तो समुचित औषधोपचार कराना चाहिये। अण्डीके तेलका हलका जुलाब और जल किंवा अण्डीके तेलकी पिचकारी—इसका अच्छा उपाय है। पपीतेका फल इस व्याधिके लिये बहुत ही मुफीद है। रोज इसे खाते रहनेसे कभी कब्जियतकी शिकायत नहीं करनी पड़ती। इस फलका पेड़ एक ही सालमें फलने भी लगता है। जिन लोगोंके यहां बहू बेटी हों, उन्हें तुलसीकी तरह इस वृक्षको अपने आंगन या दरवाज़ेपर लगा रखना चाहिये।

(५) अतिसार—यह व्याधि कब्जियतसे ठीक विपरीत होती है। प्रतिदिन कईवार पतला दस्त होता है। अधिक समय तक इसका उपचार न करनेसे गर्भिणी दुर्बल हो जाती है। इसलिये यथासंभव शीघ्र इसका उपचार कराना चाहिये। आहार विहारकी नियमिततासे यह व्याधि भी दूर होते देखी गई है। यदि खान पानके दोष, सर्दी या जुलाबके कारण यह व्याधि उत्पन्न हुई हो, तो वह दोष दूर

करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। पहले कब्जियत रहनेके कारण पेटमें जो मल एकत्र हो जाता हैं, उसे निकालनेके लिये भी बहुधा यह बीमारी हो जाती हैं, परन्तु विषमरूप धारण करनेपर यही अनर्थका कारण होती है, इसलिये इसे अधिक न बढ़ने देना चाहिये।

ठण्ढे या गरम जलकी पिचकारी (Doche या वस्ती) देनेसे, पेडू पर गीला कपड़ा लपेट रखनेसे और चित्त पड़े रहनेसे इस अवस्थामें बड़ा लाभ होता है। गर्भिणीको इस व्याधिके समय बाहरी सर्दीसे बचाये रहना चाहिये।

(६) बवासीर—कब्जियत और गर्भवृद्धिके कारण गर्भिणीको बवासीर या अर्शकी व्याधि हो जाया करती है। प्रसवके बाद यह व्याधि बहुधा आप ही आप शान्त हो जाती है। परन्तु गर्भावस्थामें अनेक स्त्रियोंको इसके कारण बहुत ही कष्ट होता है। कभी कभी मलद्वारके चारों ओर फुड़ियोंका सा झुमखा फूट निकलता है और वह प्रसवके बाद भी अच्छा नहीं होता। यदि अधिक कष्ट हो, तो डाक्टर या वैद्यसे चिकित्सा करानी चाहिये। साधारण अवस्थामें कोठेको साफ रखने, हलका खाना खाने और मिहनत करते रहनेसे अधिक तकलीफ नहीं होती।

(७) खुजली—गर्भावस्थामें अनेक स्त्रियोंको जनने-

न्द्रियमें खुजली होती है और इससे उन्हें कामेच्छाका भ्रम होता है। किन्तु वास्तवमें यह कामेच्छा नहीं, बल्कि एक प्रकारकी व्याधि है। ठंढा जल इसकी अच्छी दवा है। ठंढे जलसे कई बार उस अंगको धोना, अन्दर गीला कपड़ा या बरफ रखना और स्नान परम लाभदायक है। इसे कामेच्छा समझकर सहवास करनेसे लाभके बदले उलटी हानि होती है।

(८) हृदय-दाह—गर्भावस्थामें खाना अधिक खाने या अनुचित चीजें खानेसे स्त्रियोंको यह व्याधि हो जाती है। इससे स्त्रियोंको बड़ी तकलीफ होती है। कड़वी कड़वी डकारें आती हैं और छातीसे लेकर गलेतक जलन होती हैं। गर्भ सञ्चार होनेके साथ ही बहुधा यह व्याधि भी आरम्भ होती है और प्रसवकाल तक लगी रहती है। जो स्त्रियां खानपानमें नियमित रहती हैं और ऐरागैरा चीजें नहीं खातीं उन्हें इस व्याधिका कष्ट नहीं सहन करना पड़ता। परन्तु १०० में प्रायः ६६ स्त्रियां गर्भावस्थामें अनियमित रूपसे खाना खाती हैं, इसलिये यह व्याधि साधारण हो पड़ी है।

हृदयमें दाह होते ही गर्भिणीको अपने भोजनका परिमाण घटा देना चाहिये। खाना घटानेपर दूसरे दिन सवेरे बिछौनेसे उठते ही यदि हृदयमें दाह मालूम हो, तो

समझ लेना चाहिये, कि जो खाना खाया गया था, वह भलीभांति हजम नहीं हुआ, इसीलिये ऐसा हो रहा है। इस अवस्थामे खाना जरा भी अधिक खानेसे मामला और भी बिगड़ जाता है। इसलिये जिसदिन सुवह इस व्याधिके लक्षण मालूम हों, उस दिन एक वक्त या हो सके तो दोनों वक्त खाना न खाकर केवल पानीसे ही काम चला लेना चाहिये। खाना न खानेसे पाचन क्रिया फिर ठीकसे होने लगती है। कभी कभी एक दो गिलास गरम पानी पी लेनेसे बड़ा लाभ होता है। गरमपानी पीनेके बाद या तो क़य होकर आराम मिल जाता हैं या वैसे ही तकलीफ़ कम हो जाती हैं। यही इस व्याधिका सबसे अच्छा उपाय हैं। खट्टी, मीठी और चटपटी चीजोंका खाना हानिकारक है।

(६) दांतमे दर्द—गर्भावस्थामे स्नायुओपर अधिक भार पड़नेके कारण अनेक स्त्रियोके दांत दुखने लगते हैं। यह पीढ़ा बहुधा कीड़े लगे हुए दांतोंमें और कभी कभी अच्छे दांतोंमें भी होती हैं। यदि सड़ेगले या कीड़ावाले दांतमें दर्द हो, तो उसे उखड़वा डालना ही सबसे अच्छा उपाय है। किन्तु यदि अच्छे दांतोंमे पीड़ा होती हो, तो डाक्टर या वैद्यके आदेशानुसार समुचित चिकित्सा करानी चाहिये। डाक्टर कावेनका मत है, कि आहार और विहार

के औचित्य पर ध्यान रखनेसे यह व्याधि भी शान्त हो जाती है।

(१०) सिरदर्द—स्नायुओंपर भार पड़ने, कब्जियत रहने और खान पानकी अनियमितताके कारण गर्भावस्थामे स्त्रियोंको यह रोग हो जाया करता है। इसका कोई समय निश्चित नहीं है। यह किसी भी समय उत्पन्न होता और अच्छा हो जाता हैं। कभी कभी यह इतना साधारण होता है, कि इसकी ओर लोगोंका ध्यानतक आकर्षित नहीं होता और कभी कभी बड़ा भयंकर रूप धारण करता है। यदि सरदर्दके साथ साथ आंखोंमें सुर्खी, शरीरमें आलस्य, कानमें भन्नाहट और आंखके सामने चिनगारियां सी उड़ती दिखाई दे, तो तुरन्त इसका उपचार कराना चाहिये। उपचार न करानेसे हिस्टीरियाकी व्याधि हो जाती है। बिना किसी औषधिके इसे दूर करनेका उपाय यह है, कि गर्भिणीको हवा और प्रकाशवाले स्थानमें खूब घूमना फिरना चाहिये, भोजन परिमित परिमाणमे करना चाहिये और उत्तेजक पदार्थों से सदा दूर रहना चाहिये।

(११) धड़कन—इस बीमारीमें हृदय बडे जोरोंसे धड़कने लगता है और रोगी एक बार ही घबड़ा जाता है। परन्तु गर्भिणोकी बोमारी और लोगोकी अपेक्षा

भिन्न प्रकारकी होती है। उन्हें यह बीमारी केवल रक्तवाहिनी शिराओंपर दबाव पड़ने व खानपानकी अनियमितताके ही कारणसे होती है। हृदयपर वास्तवमें इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिये किसी प्रकारका खतरा नहीं रहता। खानपानकी नियमिततासे गर्भिणीको इस व्याधिसे भी मुक्ति मिल सकती है।

(१२) सूजन—गर्भावस्थाके अन्तिम महिनोंमें गर्भिणीके हाथ, पैर और चेहरेपर सूजन आ जाती है। गर्भ वृद्धिके कारण रक्तवाहिनी शिराओंपर दबाव पड़नेके कारण ही यह रोग उत्पन्न होता है। बहुधा शामके वक्त यह अधिक जोर करता है। कोठा साफ रखने व आहार कम कर देनेसे यह उपद्रव शीघ्र शान्त हो जाता है।

(१३) अनिद्रा—कब्जियत, आहार विहारकी अनियमितता तथा गर्भ वृद्धि जनित अन्यान्य विकारोंके कारण गर्भिणीको यह व्याधि हो जाती है। यह उपद्रव गर्भावस्थाके अन्तिम महिनोंमें और कभी कभी प्रारम्भमें भी होता है। कोठा साफ रखने और हलका भोजन करनेसे बहुधा यह शिकायत भी दूर हो जाती है। नित्य स्नान करना, खूब चलना फिरना, घरके काम धन्धे करना और खुली, ताजी व ठंढी हवामें सोना लाभदायक है। तकिया कुछ ऊँचा

रखनेसे भी नींद जल्दी आती है। सोनेके समय सोनेके सिवा और कोई विचार न करना चाहिये। मानसिक परिश्रम—लिखना पढ़ना तक—यथा संभव कम करना चाहिये। सोते समय शरीरपर जो कपडे रहें वह ऋतुके अनुकूल परन्तु जहांतक हो हलके होने चाहिये। यदि यह सब करने पर भी नींद न आवे तो किसी वैद्य या डाक्टरकी सलाह लेनी चाहिये।

(१४) हिस्टीरिया—इसे डाक्टर लोग मानसिक और वैद्यगण वातव्याधि बतलाते हैं। यह अनेक कारणोंसे उत्पन्न होती है। गर्भावस्थामें भी आहार विहारकी अनियमितता और स्नायविक दुर्बलताके कारण यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें स्त्रियोंके हाथ पैर खिंचते हैं, बेहोशी आ जाती है, दाँत बंध जाते हैं, वायुगोला ऊपरको चढ़ता है और बोल बन्द हो जाता है। स्त्रियां कभी रोती, कभी हंसती और कभी चिल्लाती हैं। अज्ञान लोग इसे भूत पिशाचका उपद्रव समझते हैं। गर्भावस्थामें इस रोगसे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती, परन्तु उपद्रव बढ़ जानेपर गर्भपात होनेकी सम्भावना रहती है। जो स्त्रियां स्वस्थ होती हैं और अच्छी तरह रहती हैं, उन्हें यह व्याधि कभी नहीं होती। यदि आहार-विहारपर समुचित ध्यान देनेसे लाभ

न हो, तो किसी डाक्टर या वैद्य द्वारा उपचार कराना चाहिये। जो लोग डाक्टर या वैद्यके बदले गण्डातावीज, झाड़फूंक, ओझा और मियांमदारके फेरमें पड़ते हैं, वह रोगको बढ़नेका मौका देते हैं। रोग बढ़ जानेपर फिर अच्छा नहीं होता, इसलिये आरम्भ हीसे उपचार कराना चाहिये। रोगको भी भूत समझना बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है।

(१५) मूत्राशयमें दाह—गर्भाशयकी वृद्धिके कारण मूत्राशयपर भी भार पड़ता है और इसीलिये उसमें जलन होती है। कभी कभी पेशाब बहुत थोड़ा और कभी दर्दके साथ उतरता है तथा बारंबार उसकी हाजत मालूम होती है। इस व्याधिसे यदि अधिक कष्ट हो, तो उपचार कराना चाहिये अन्यथा यह आप ही आप गर्भावस्था पूर्ण होनेपर शान्त हो जाती है। मूत्रका वेग रोकनेसे यह व्याधि बढ़ती है, इसलिये जब जब आवश्यकता पड़े, पेशाब करनेमें आलस्य न करना चाहिये।

(१६) वीर्य्यस्राव—अनेक स्त्रियोंको गर्भावस्थाके समय प्रदरकी तरह वीर्य्यस्राव होता है। प्रसवद्वारको ठण्ढे जलसे धोते रहना—इससे परित्राण पानेका अच्छा उपाय है। यदि उपचार कराना हो, तो किसी चतुर वैद्य

या डाक्टर द्वारा ही कराना चाहिये, क्योंकि अनुचित औष धियोंसे लाभके बदले उलटी हानि होती है।

(१७) रजस्राव—गर्भावस्थामें मासिक रजोदर्शन किंवा रजस्राव बन्द हो जाता है, परन्तु कभी कभी अनियमित आहार विहारके कारण गर्भावस्थामें भी यह दर्शन देता है। इस अवस्थामें औषधोपचार द्वारा रजस्रावको बन्द करनेकी अपेक्षा गर्भिणीके आहार विहारपर ध्यान रखना अधिक अच्छा है। ठण्डी हवा, गीला स्थान, खुले पैर घूमना, गीली जगहमें सोना या बैठना, ठण्ढे जलसे स्नान, करना, अधिक समयतक खड़ा रहना, अधिक खाना, अधिक परिश्रम करना, दहशत, क्रोध और जुलाब—यह सब बातें रक्तस्रावको बढ़ाती हैं, इसलिये इनका त्याग करना चाहिये। अधिकांश समय लेटकर बिताने और हलका भोजन ग्रहण करनेसे रजस्राव आप ही आप बन्द हो जाता है।

(१८) खूनकी कय—गर्भावस्थाके आरम्भमें रजस्राव बन्द होने या रक्त वाहिनियोंमें अधिक रक्त एकत्र होनेके कारण किसी गर्भिणीको कुछ दिनतक खूनकी क़य होती है। यद्यपि खून बहुत थोड़ा गिरता है, तथापि यथासम्भव शीघ्र इसका उपचार करना चाहिये। खानपानकी परहेजी और उपवास करनेसे बहुधा यह रोग शान्त

हो जाता है। यदि इससे कोई लाभ न हो, तो पेड़ूपर ठंढा और गीला कपड़ा लपेट रखना चाहिये। यदि इससे भी लाभ न हो, तो किसी डाक्टरके आदेशानुसार उपचार करना चाहिये।

(१९) स्तनपीड़ा—गर्भावस्थामें और खासकर जो स्त्रियां पहली ही बार गर्भ धारण करती हैं, उनके स्तनोंमें कभी-कभी बड़ी पीड़ा होती है। इस पीड़ाको दूर करनेके लिये स्तनोंको ठंढे जलसे प्रतिदिन कई बार धोना चाहिये या उनपर गीला कपड़ा लपेट रखना चाहिये। इससे वेदना बहुत कुछ कम हो जाती है। कभी कभी यह व्याधि केवल तंग कपड़े पहननेके कारण ही होती है, इसलिये गर्भिणीको सदैव ढीले और हलके कपड़े पहनना चाहिये।

इसके अतिरिक्त गर्भिणी स्त्रियोंको उदर पीड़ा, अरुचि, खांसी, श्वास, ज्वर, दुर्बलता, कमला आदि अनेक बीमारियां हो जाती हैं, परन्तु इन सब बीमारियोंका कारण गर्भाशयकी वृद्धि, तद्‌जनित विकार और खानपानकी अनियमितता ही होती है। आहार-विहारकी नियमिततासे बढ़कर इन रोगोंकी और दवा भी नहीं है। जो स्त्रियां इस सम्बन्धमें सावधान रहती है, उन्हें शायद ही इस अवस्थामें कष्ट उठाना पड़ता है। गर्भावस्था और प्रसव स्त्रियोंका

एक साधारण और प्राकृतिक धर्म्म है। जैसे वृक्षमे फल लगते है, वैसे ही स्त्रियाँ वच्चोको जन्म देती है। इसलिये यह कार्य्य विना किसी विघ्नके सम्पन्न होना चाहिये। * गर्भावस्थाके रोगोके सम्बन्धमे ध्यान रखने लायक मुख्य वात यही है, कि यह व्याधियां आहार-विहारकी अनियमिततासे उत्पन्न होती हैं और अनियमितता दूर कर नियमपूर्वक रहनेसे वह शान्त हो सकती हैं। जो स्त्रियाँ गर्भावस्थामें इन व्याधियोंसे वचना चाहे, उन्हें नैसर्गिक जीवन व्यतीत करना चाहिये। नैसर्गिक जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्रियोंके लिये गर्भधारण और प्रसवकी क्रिया

---

* It should in the commencement be understood that the bearing of children is a *natural* process—that the pre-natal growth and birth of the child should not—can not—in a perfectly healthy woman, entail any disorder, disease, or even pain, and the prevailing opinion that suffering and danger are inseparable from parturition is a reflection on God's loving justice and mercy It is as natural for a woman to have a child as it is for a tree to bear fruit, or an animal to bring forth its young, and, being natural, the process should be one of pleasure rather than pain—one of desire rather than dread

—Dr John Cowan M D

भी एक नैसर्गिक कियाके ही समान होती है, इसलिये उन्हें इस अवस्थामें किञ्चित भी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। डाक्टर कावेनका कथन है, कि The period of pregnancy should be one of increased health rather than one of increased disorders The mother who has hitherto led a true life will, during this period experience an exhilaration of spirits, a redundancy of health and cheerfulness of mind that is not to be enjoyed or experienced at any other time of life अर्थात् गर्भावस्थामें स्त्रियोंका स्वास्थ्य बढ़ना चाहिये, न कि रोग। जो स्त्रियां नैसर्गिक जीवन व्यतीत करती हैं, वे गर्भावस्थामे ऐसा उल्लास, ऐसा स्वास्थ्य और ऐसी प्रसन्नता अनुभव करती हैं, जो उन्हें अपने जीवनमें किसी और समय नसीब भी नहीं होती। भारतीय महिलाओंको यह शब्द अपने हृदय-मन्दिरमे स्वर्णाक्षरोसे अंकित कर रखने चाहिये।

गर्भिणीका शारीरिक स्वास्थ्य

गर्भिणी स्त्रियोंके तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) वे स्त्रियां जिन्हें गर्भावस्थामें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, बल्कि गर्भावस्थामे जिनका स्वास्थ्य साधारण समयकी अपेक्षा अधिक अच्छा रहता है (२) वे स्त्रियां जिन्हें गर्भावस्था कष्टकर प्रतीत होती है और (३) वे स्त्रियां, सौभाग्यवश यद्यपि उनकी संख्या बहुत अल्प है, जिनके लिये गर्भाधान घातक हो पड़ता है।

यह खेदकी बात है, कि आजकल ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों प्रथम श्रेणीकी गर्भिणियोंका अभाव सा होता जा रहा है। परन्तु पृथ्वीके अनेक देशोंमे और यदि केवल अपने ही देशकी बात करें, तो भारतके अनेक स्थानोंमें, जहां सभ्यताका प्रचार अधिक नहीं हुआ

है, स्त्रियां स्वस्थ और सवल होती हैं और विलकुल स्वाभाविक रीतिसे आरामके साथ गर्भधारण और सन्तान प्रसवका कार्य्य पूरा करती हैं। ऐसी स्त्रियोंको प्रसव-वेदना किंवा प्रसव संकट शायद ही भोगना पड़ता है।

भारतमें वहुतसी जातियां ऐसी हैं, जो सदैव इधर उधर घूमा करती हैं। वे किसी एक स्थानमें स्थिर होकर नहीं रहतीं। इन लोगोंमें देखा गया है, कि स्त्रियोंको प्रसववेदना आरम्भ होते ही वे किसी वृक्षके नीचे प्रसव करती हैं और प्रसवके वाद नहा धोकर फिर सवके साथ वरावर यात्रा करती हैं। इसके अतिरिक्त जिन लोगोंको कभी देहातमें रहनेका अवसर मिला होगा, उन्हें मालूम होगा, कि कृषक और मजूरोंकी अनेक स्त्रियां दिनभर कठिन परिश्रम करनेके वाद शामको घर आती हैं और विना दाई व डाक्टरोंकी सहायताके शान्तिपूर्वक वच्चेको जन्म देती हैं। जो लोग दिनमे उन्हें काम करते देखते हैं, उनमेंसे वहुतोंको यह समाचार सुनकर आश्चर्य्य होता है, कि एकायक वच्चा कैसे हो गया, परन्तु ऐसी घटनायें प्रायः नित्य ही घटित हुआ करती हैं, इसलिये उन्हें महत्व नहीं दिया जाता।

वास्तवमें स्त्रियोंके लिये सन्तानोत्पादनका कार्य

चित्र नं २०—२१
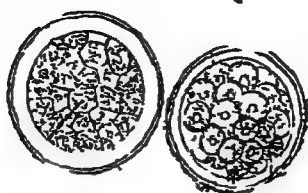
चित्र नं २२—२३
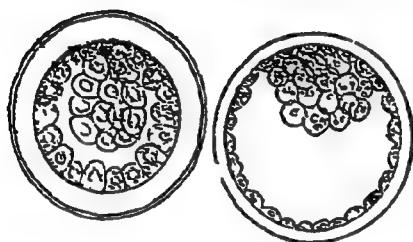
चित्र नं २४
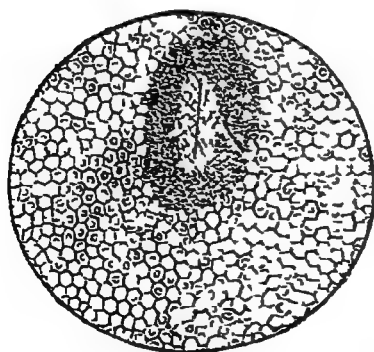
भ्रूणकी प्रथमावस्था।

[देखो पृष्ठ ६७

एकदम स्वाभाविक है। यह स्वस्थता और आरामके साथ ठीक उसी तरह पूरा होना चाहिये, जिस तरह अन्यान्य स्वाभाविक कार्य्य अनायास ही हुआ करते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश आजकल प्रायः सभी गर्भिणियोंकी अवस्था इससे विपरीत दिखाई देती है। इसके प्रधान कारण दो हैं—एक तो गर्भिणीकी वह त्रुटि है, जो वह विचारहीनता और अज्ञानताके कारण अस्वास्थ्यकर जीवन व्यतीत किया करती है और दूसरा कारण उसके दुर्भाग्यका है, जो वह व्याधिग्रस्त और अस्वस्थ मातापिता और पूर्वजोंकी सन्तान होकर इस धराधाममें जन्म लेती है।

गर्भावस्थामें कष्ट पानेवाली दूसरी श्रेणीकी स्त्रियां भी साधारणतः इन्हीं दो कारणोंसे कष्ट पाती हैं। यदि वे आवश्यक सावधानीसे काम लें और अपने स्वास्थ्यको सुधारनेकी चेष्टा करें, तो उनका बहुत आश्चर्य्यजनक उपकार हो सकता है। यद्यपि सब प्रकारकी सावधानता अवलम्बन करनेपर भी वे प्रथम श्रेणीकी सौभाग्यवती गर्भिणियोंका स्वास्थ्य नहीं प्राप्त कर सकतीं, परन्तु अपने स्वास्थ्यमें इतना तो अवश्य ही सुधार कर सकती हैं, कि जिससे उनके और उनकी सन्तानके लिये प्रसव क्रिया कष्टदायक न हो पड़े। इसी प्रकार तीसरी श्रेणीकी

स्त्रियां भी गर्भावस्थामें सावधानीसे काम लेकर अपनी विपद्को घटानेकी बहुत कुछ चेष्टा कर सकती हैं।

जिस समयसे गर्भ रहनेका सन्देह उत्पन्न हो, उसी समयसे गर्भिणीका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वह सावधानीसे काम ले और अपनी सन्तानको स्वस्थ बनानेकी चेष्टा करे। साथ ही पुरुषका भी यह कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वह स्त्रीके इस कार्य्यमें पूर्ण रूपसे सहायक हो और इस बातपर सदैव ध्यान रक्खे, कि कोई त्रुटि तो नहीं हो रही है। यदि पुरुष असावधानतावश अपने कर्त्तव्यसे विमुख हो जाता है, तो स्त्रीका दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस अवस्थामें उसे अपने साहस और इच्छाशक्तिसे काम लेकर, स्वामीकी सहायताके बिना ही, जो कि उसे स्वभावतः मिलनी चाहिये थी, अपना कार्य्य सावधानीसे करते रहना चाहिये।

गर्भावस्थामें गर्भिणीकी मानसिक अवस्थाका सन्तान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब किसी भयंकर और उत्तेजक चिन्तासे गर्भिणीकी मानसिक अवस्था खराब हो जाती है, तब गर्भस्थ बालकपर उसका इतना गहरा प्रभाव पड़ता है, कि वह उसीके कारण विकलाङ्ग, मूर्ख किंवा दुर्गुणी हो जाता है। इसलिये प्रत्येक गर्भिणीका यह

कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वह शारीरिक स्वास्थ्यके साथ-साथ मानसिक अवस्थाको भी शान्त और स्थिर रक्खे।

सभी युगोंमे स्त्री ही मानव जातिकी उन्नति और अवनतिका मूल कारण रही है। मानव जाति कैसी होगी, यह बात एकमात्र वर्त्तमान और भविष्यकी स्त्रियोंके उत्तर-दायित्वपर ही निर्भर करती है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि पुरुष जातिपर किसी प्रकारका उत्तर-दायित्व ही नहीं है। सन्तानकी माताका सुख तथा साधारण हित और भावी प्रजाके सुख दुःख पिताके उत्तर-दायित्व पर भी उतने ही परिमाणमे निर्भर करते हैं, जितने माताके उत्तरदायित्व पर। उस असभ्यताके युगमे जब पुरुषके अधिकारमे रमणी किसी भेड़ बकरी या दासीके समान थी—भारत और पृथ्वीके कितने ही अंशोंमें जो अवस्था अब भी पाई जाती है—उस समय सारा उत्तर-दायित्व पुरुषके ही ऊपर था और उस समय वही मानव जातिका मूलाधार गिना जाता था, परन्तु इस समय, जब कि सौभाग्यवश और न्यायतः स्त्रीका अधिकार और स्वातन्त्र्य बढ़ता जा रहा है, पुरुषका यह उत्तरदायित्व भी घटता हुआ स्त्री जातिके ऊपर ही पड़ता जा रहा है। धीरे-धीरे अब वह अवस्था आनेवाली है, जब भावी सन्तानके भले

बुरेका दायित्वभार स्त्री और पुरुष दोनोंको समान भागमें उठाना पड़ेगा। निःसन्देह समाजकी वही अवस्था नियमित और सुखप्रद होगी।

यह एक बहुत ही गूढ़ और आश्चर्यजनक बात है, कि गर्भावस्थामें बच्चा अपनी माताकी ही शक्तिसे शक्ति और जीवनसे अपना जीवन संचय करता है। वह अपने भावी जीवनके हिताहितकी शक्ति भी अपनी मातासे ही प्राप्त करनेकी प्रत्याशा करता है, क्योंकि माता उसकी शक्तिको जैसे सांचेमें ढाल देती है, उसीके अनुसार वह अपनी माताकी निन्दा और स्तुतिका कारण होता है।

उन्नत और स्वास्थ्यकर जीवन वितानेकी सुविधायें होनेपर भी जो स्त्रियां गर्भावस्थामे विलासमय किंवा असावधानीसे जीवन विताती है, उनका अपराध अक्षम्य है। उन्हें इसके लिये अवश्य ही उचित दण्ड भोगना पड़ता है, परन्तु अनेक स्त्रियां ऐसी होती हैं, जो अपने दोषसे नहीं, बल्कि पारिवारिक जीवनके कार्य्यकी अधिकता और झंझटोंके कारण स्वास्थ्यकर जीवनके नियमोंका पालन नहीं कर सकतीं। निःसन्देह नारी-जीवनकी यह एक सबसे बड़ी कठिनाई है। इसे हमलोगोंकी अपेक्षा एक नारी-हृदय ही अच्छी तरह समझ सकता है। फिर भी यह

बड़े आनन्दकी बात है, कि अनेक स्त्रियां साहस और प्रफुल्लताके साथ इन कठिनाइयोंका सामना करती हैं और अन्तमें अपने मनोबल व दृढ़ताके कारण उनपर विजय प्राप्तकर ऐसी सन्तान उत्पन्न करती हैं, जो स्वभावतः वीर और तेजस्विनी होती है।

स्त्रियोंको चाहिये, कि अपनी सन्तानको स्वस्थ बनानेके लिये आवश्यक उपायोंका अवलम्बन करनेमें भूल कर भी लापरवाही न करें। यदि सन्तानकी दृष्टिसे नहीं, वे अपने स्वार्थकी दृष्टिसे ही अपने स्वास्थ्यपर ध्यान रक्खें तब भी सन्तानका बहुत कुछ श्रेय हो सकता है, क्योंकि गर्भावस्थामें जिस बातसे माताका उपकार होता है, उसी बातसे सन्तानका भी गौणभावसे उपकार होता है। परन्तु अधिकांश स्त्रियां स्वार्थशून्य होती हैं और वे अपने स्वास्थ्यकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि गर्भस्थ निस्सहाय सन्तानकी दृष्टिसे ही स्वास्थ्यकर नियमोंका अवलम्बन करती हैं और इससे स्वयं उनका भी उपकार होता है। इस प्रकार माता चाहे किसी भी दृष्टि किंवा विचारसे स्वास्थ्यकर नियमोंका अवलम्बन करे, उससे उसका व उसके बच्चे—दोनोंका समान रूपसे हित होता है।

यह तो सभी जानते हैं, कि किसी उद्भिद जीवनके

लिये तीन चीजें आवश्यक होती हैं—(१) अच्छा बीज (२) अच्छी जमीन और (३) अच्छी परिचर्या। अच्छी जमीन और अच्छी परिचर्या होनेसे अच्छा बीज अच्छी तरह बढ़कर फल फूल सकता है और साधारण बीजका बहुत कुछ उपकार हो सकता है। इसी प्रकार स्वस्थ मातापिताके निरोग बीजसे तेजस्विनी सन्तान उत्पन्न होती है और यदि बीज कुछ हीन होता है, तो अच्छे स्वास्थ्य और सावधानीके कारण उसकी भी बहुत कुछ शुद्धि हो जाती है। परन्तु इससे कोई यह न समझे कि व्याधिग्रस्त और दूषित बीज भी अच्छा फल उत्पन्न कर सकता है। यह उसी अवस्थामें हो सकता है, जब समुचित उपायों द्वारा उसे पहले हीसे शुद्ध कर लिया जाय।

गर्भावस्थामे गर्भिणीको अपनी व अपनी सन्तानकी स्वास्थ्यरक्षाके लिये आहार, विहार, स्नान, वस्त्रधारण, और सहवास प्रभृति अनेक बातोंमें सावधान रहना पड़ता है। पाठकोंके हितार्थ अब हम इन्हीं सब बातोंपर विचार करेंगे।

आहार—गर्भिणीका आहार सादा और पुष्टिकर, गुणमें अच्छा परन्तु परिमाणमें कम होना चाहिये। कुछ लोग समझते हैं, कि गर्भावस्थामे माताको गर्भका पोषण करना पड़ता है, अतः उसे दूना आहार खाना चाहिये, परन्तु

यह ठीक नहीं। गर्भमें बच्चा होनेके कारण माताके अंग प्रत्यङ्ग पर अतिरिक्त भार अवश्य पड़ती है, परन्तु वह भार किसी एक ही अंगको अधिक परिचालित करनेसे पूरी नहीं हो सकती। बल्कि ऐसा करनेसे उस अंग विशेषके विशृङ्खलित होनेकी ही सम्भावना अधिक रहती है और एक अंगकी विशृङ्खलता समूचे शरीरको विशृङ्खलित व अस्वस्थ बना देती है। इस अवस्थामे शरीरको स्वस्थ रखनेकी सबसे अधिक आवश्यकता रहती है और खासकर उन अंगोंकोको तो सबसे पहले पुष्ट करना चाहिये, जिन्हें बराबर काम करते रहना पड़ता हैं।

अच्छे भोजनकी आवश्यकता केवल इसी बातसे अनुभव की जा सकती है, कि इससे न केवल माताकी ही शरीर रक्षा होती हैं, बल्कि बच्चेका शरीर निर्माण भी उसीसे होता है। बहुतोंका कथन है, कि गर्भिणी जब स्वास्थ्य वर्द्धक पदार्थोंका अधिक सेवन करती है, तब गर्भस्थ बालकका शरीर आवश्यकतासे अधिक कड़ा और बड़ा हो जाता हैं, जिससे प्रसवक्रिया अपेक्षाकृत अधिक कष्टकर होती है।

गर्भावस्थामें गर्भिणीके लिये तीन चीजें परम वाञ्छनीय हैं—स्वास्थ्य, आरामपूर्वक प्रसव और सुन्दर

शिशु। अतः गर्भिणीके लिये चाहे जिस आहारकी व्यवस्था की जाय, परन्तु वह ऐसा होना चाहिये, जो इन तीनोंके अनुकूल हो, जिससे इन्हें पूर्ण होनेमें सहायता मिले।

आरोग्यशास्त्रके ज्ञाताओंका कथन है, कि गर्भिणीके आहारका प्रधान अंश फल होना चाहिये। फल चाहे कच्चे खाये जायँ, चाहें किसी तरह पकाकर, इनसे सिवा लाभके हानि नहीं हो सकती। यदि सुबह शैय्यासे उठते ही या रातको सोनेके समय खाये जायें, तो इससे और भी उपकार हो सकता है। यदि इस प्रकार फल खानेकी इच्छा न हो, तो उनका रस ही निचोड़ कर पी लेना चाहिये। सवेरे उठकर दो तीन नीबू, नौरंगियोंका रस निचोड़कर पी लिया जाय और फिर दोपहरको दाल भात और दूध रोटी वगैरह साधारण चीजें खाई जायें तो गर्भिणीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रह सकता है। इस सम्बन्धमें हम अन्यत्र भी बहुत कुछ लिख चुके हैं।

भारतके अनेक प्रान्तोंमे चाय पीनेकी प्रथा भीषण रूपसे प्रचलित है। हमलोगोंमें इसका प्रचार अंग्रेजोंकी देखादेखी हुआ है, इसलिये एक अंग्रेज लेखकके ही शब्दोंमें इसके अनिष्ट परिणामोंको अंकित करना अधिक अच्छा होगा।

देखिये डाक्टर ई० एस० टेल्वट अपने डीजेनरसी नामक ग्रन्थमे क्या लिखते हैं :—

"The *Lancet* several years ago, from an editorial analysis of the effects of tea-tippling, took the position that in no small degree nervous symptoms occuring in children during infancy were due to the practice of the mothers, both working and society classes, of indulging in the excessive use of tea, the excess being judged by its effects on the individual and not by the amount taken. Convulsians and resultant infantile paralysis were frequently noticed among the children of these tea-tipplers . "

अर्थात्, "कुछ वर्षपर चायखोरीके प्रभावोंका सम्पादकीय विश्लेषण करते हुए लान्सेट इस धारणापर पहुंचे थे, कि बालकोंके शरीरमें जो बचपनसे ही स्नायविक व्याधियां और दुर्बलता हुआ करती है, उसका प्रधान कारण माताकी अपरिमित चायखोरी है। श्रमिक तथा अन्यान्य श्रेणीकी स्त्रियोंमें भी यह दोष पाया जाता है। चायपानकी इस अपरिमितताका निर्णय चायके परिमाणसे नहीं, बल्कि उसके व्यक्तिगत प्रभावसे—उसके परिणामसे करना चाहिये।

स्नायविक आक्षेप और पक्षाघात आदिके रोग जो जन्मके साथ ही बच्चोंमे पाये जाते हैं, वे बहुधा चायखोरीके ही कारण उत्पन्न होते हैं।"

सौभाग्यवश भारतकी स्त्रियोंमे, तम्बाकू, शराब और अफीम आदिके दुर्व्यसनोका अधिक प्रचार नहीं है। इस लिये बच्चोंकी इनके भयंकर प्रभावोंसे कुछ-कुछ रक्षा होती है। "कुछ कुछ" शब्दका प्रयोग हम इसलिये कर रहे हैं कि स्त्रियोंकी तरह पुरुष समुदाय इन चीजोंसे दूर नहीं रह सका और जहांतक उनके वीर्यसे बच्चेका सम्बन्ध होता है, वहांतक इन दुर्व्यसनोंका प्रभाव उसपर अवश्य पड़ता है। दुर्व्यसनका सेवन चाहे पिता करे चाहे माता, उसका बुरा प्रभाव बच्चेपर पड़े विना नहीं रहता, इस लिये चतुर मातापिताको सदैव दुर्व्यसनोंसे दूर रहना चाहिये।

लगातार और अधिक परिमाणमें फलाहार करनेसे यदि पेटमे गोलमाल हो जाय, तो गर्भिणीको दाल भात या ऐसे ही हलके आहारसे उसका संशोधन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त गर्भिणीको चाहिये, कि अपनी प्रकृतिके अनुकूल जो चीजें पसन्द करे, उन्हे अदलबदल कर खाती रहे। इससे न तो जी ही ऊबता है, न किसी चीजपर अरुचि ही होती है।

व्यायाम और आराम—नियमित व्यायाम स्वास्थ्यके लिये यों तो सर्वदा ही आवश्यक है, परन्तु गर्भावस्थामें इससे विशेष उपकार हो सकता है। यदि गर्भिणीके शरीरमें कोई रोग या विशेष दुर्बलता हो, तो उस अवस्थामें गर्भस्रावके भयसे व्यायामका निषेध किया जा सकता है, परन्तु उस अवस्थामें भी गर्भिणीको बैठे या पड़े रहनेकी सलाह नहीं दी जा सकती।

उचित व्यायाम कहनेका तात्पर्य यह है, कि प्रत्येक मनुष्यका स्वास्थ्य जितना और जैसा व्यायाम सहन कर सके उतना ही नियमित रूपसे किया जाय। यह नहीं, कि एक स्त्री या पुरुष जितना और जिस प्रकारका व्यायाम करता हो, उतना ही दूसरा भी करनेकी चेष्टा करे। इस प्रकार व्यायाम करनेसे लाभकी अपेक्षा हानिकी ही सम्भावना अधिक रहती है। इस सम्बन्धमें यहांतक देखा गया है, कि एक ही अवस्थाकी दो स्त्रियोंका स्वास्थ्य एक ही प्रकारका व्यायाम सहन नहीं कर सकता, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको व्यायामके लिये अपने स्वास्थ्यके अनुसार नियम निर्द्धारित करना चाहिये।

पाश्चात्य देशोंकी स्त्रियां पुरुषोंके समान ही घूमती, फिरती व व्यायाम करती हैं, परन्तु भारतवासियोंकी

सामाजिक परिस्थिति भिन्न प्रकारकी होनेके कारण वहां और यहांकी स्त्रियोंके लिये समान नियम नहीं बनाये जा सकते। हमलोगोंमें पड़देकी प्रथा प्रचलित है अतः स्त्रियां रातदिन घरमे ही बन्द रहती हैं। इस अवस्थामें उनके लिये वही व्यायाम लाभदायक हो सकता है, जो घरके अन्दर किया जा सके और ऐसा व्यायाम अपनी घर-गृहस्थीका कामकाज ही हो सकता है। परन्तु इस बात-पर सदा ध्यान रखना चाहिये, कि कोई भारी बोझा न उठाया जाय, न कूदने या उछलनेकी ही भूल की जाय।

गर्भकी प्रारम्भिक अवस्थामें और कितने ही डाक्टरोंके मतानुसार सातवें महिनेमें भी गर्भपातकी आशंका रहती है अतः उस समय, अथवा जिस समय गर्भिणीका स्वास्थ बहुत खराब हो उस समय, गर्भिणीको चाहिये कि साधारण अवस्थामें जिन महिनोंमें अधिक ऋतुस्राव होता रहा हो, उन महिनोंमें शरीरको आराममें रखनेकी चेष्टा करे। यदि गर्भिणीका स्वास्थ्य साधारण हो, तो उसे गर्भकी प्रारम्भिक अवस्थामे धीरे धीरे अपने व्यायाम किंवा परिश्रमको बढ़ाते जाना चाहिये और प्रसवका समय निकट आनेपर अपनी सुविधाके अनुसार कम करते करते अन्तमे एकदम बन्द कर देना चाहिये। इस प्रकार व्यायाम

करनेसे गर्भिणीका वड़ा उपकार होता है।

प्रसवके समय शरीरकी काम करनेवाली सभी मांस-पेशियों पर दवाव पड़ता है, इसलिये यदि वे मजवूत, जोर-दार और अपनी नियमित अवस्थामे रहती हैं, तो प्रसवमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं पड़ती और प्रसवके बाद शीघ्रही माता अपना स्वास्थ्य पुनः प्राप्त करलेती है। परन्तु अधिक आराम किंवा परिश्रमके कारण यदि वे कमजोर किंवा क्षीण हो जाती हैं, तो प्रसवके समय उचित रूपसे अपना कर्त्तव्य नहीं पालन कर सकतीं

मांसपेशियोंको अधिक आराम दो प्रकारसे मिलता है। एक तो उसके अथवा सन्तानके लिये कितना आराम आवश्यक होगा, इसका ज्ञान न होनेके कारण किंवा आलस्य-वश आवश्यकतासे अधिक आराम करनेसे और दूसरे गर्भावस्थामें जैसे कपड़े पहनने चाहिये, वैसे न पहनकर चोली प्रभृति तंग कपड़े पहननेसे मांसपेशियोंके काममे वाधा पड़ती है। श्रमिक श्रेणीकी स्त्रियोंको प्रसवके समय अधिक कष्ट नहीं होता, इसके प्रधान कारणोंमें एक कारण यह भी है, कि वे तंग और कृत्रिम पहनावेसे काम नहीं लेतीं।

गर्भिणीके लिये सवसे अच्छी कसरत भ्रमण है—ऐसा भ्रमण कि जिससे अधिक थकावट न हो। यदि दिनमें

दो तीन बार थोड़े थोड़े परिमाणमें भ्रमण किया जाय और भ्रमणके समय अच्छी हवा मिले व मनमें शान्तिपूर्ण आनन्द-प्रद विचार उठें, तो इससे गर्भिणी और सन्तानका बहुत उपकार हो सकता है। जिन स्त्रियोंको घरके कामधन्धेमें सारादिन लगे रहना पड़ता हो, उन्हें उसी अवस्थामें जहांतक हो सके, दिन या रातके समय अच्छी हवाका सेवन करना चाहिये। पड़देमें रहनेवाली स्त्रियां यदि सुवह शाम अथवा जिस समय सुविधा हो उस समय, यदि अपने मकानकी छतपर भी टहलें, तो उनका और उनके गर्भस्थ वच्चेका वहुत कुछ उपकार हो सकता है। रातदिन अन्धेरी कोठड़ीमें वन्द रहना या विछौनेपर पडे रहना गर्भिणीके लिये कदापि वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता।

अव हम यहां कुछ ऐसे व्यायामोंका उल्लेख करते हैं, जिनके द्वारा दुर्वल मांसपेशीवाली स्त्रियां वहुत कुछ उपकार पा सकती हैं। परन्तु ध्यान रहे, कि यह वहुत धीरे धीरे यत्नके साथ उचित परिमाणमें ही होने चाहिये। इन व्यायामोंसे प्रसवके समय काममें आनेवाली मांसपेशियां न केवल मजवूत ही होती हैं, वल्कि इस प्रकार वशमें भी लाई जा सकती हैं, कि समय पड़नेपर इच्छानुसार उनसे काम लेकर कष्टमें कमी की जा सके। मांसपेशियां मजवूत होनेपर

गर्भावस्था व प्रसवके समय उनपर जो अतिरिक्त भार पड़ता है, उसे सहन करनेकी उनमे क्षमता रहती है।

✓यह व्यायाम किसी सोफा या बिछौनेपर किया जा सकता है। परन्तु उसे एक ओर कुछ ऊंचा और दूसरी ओर नीचा रखना चाहिये। इसके बाद ऊंचेकी तरफ पैर और नीचेकी तरफ सिर रखकर उसपर चित्त लेटना चाहिये। लेटनेके पहले एक फीता या बन्धन द्वारा दोनो पैर किसी चीजके साथ इस तरह बांध देने चाहिये, कि जिससे वे अपनी जगहसे हिल न सके। इस तरह लेटनेके बाद दोनों हाथ दोनों जंघाओसे सटा लेने चाहिये। इसके बाद धीरे धीरे शिर और आधे अंगको ऊपरकी ओर उठाना चाहिये और उठाकर दाहिनी तरफ मोड़ना चाहिये। इसके बाद शरीरको फिर बिछौनेपर पहुचाना चाहिये और पहलेकी ही तरह शरीरको उठाकर बाईं ओर मोड़ना चाहिये। इस प्रकार शरीर उठाने और दाहिनी व बाईं ओर मोड़नेकी प्रक्रिया कई बार दोहरानी चाहिये। इसके बाद इसी लेटी हुई अवस्थामें केवल शिर और कन्धोंको ही ऊपरकी ओर उठाना और दायें बाये झुकाना चाहिये। इसके बाद व्यायामकी तीसरी अवस्थामे मुहके बल सोना चाहिये। पैर इस बार भी बँधे हुए हो, परन्तु हाथ कमरके बीचमे पीठपर आ जायें।

इस तरह लेटनेके बाद शिर और कन्धोंको धीरे धीरे उठाकर पीठकी ओर ले जानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसके बाद पहले दाहिनी और फिर बाईं करवट लेकर नीचेवाले हाथके सहारे शरीरको कमरसे (शिरसे नहीं) ऊपरकी ओर उठाना चाहिये।

इन व्यायामोंको सुविधानुसार बारंबार करनेसे न केवल गर्भावस्थामें ही उपकार होनेकी सम्भावना रहती हैं, बल्कि जिन स्त्रियोंके प्रजनन अंग कमजोर होते हैं, उन्हें सर्वदा लाभ होता है। परन्तु कोई भी व्यायाम करते समय यह सदैव ध्यानमें रखना चाहिये, कि अधिक थकावट या परिश्रम न होने पावे। जब पहलेपहल व्यायाम आरम्भ किया जाय, तब उसकी मात्रा इतनी कम होनी चाहिये, कि जिससे शरीरको जरा भी परिश्रम या थकावटका ज्ञान न हो। इसके बाद धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाते जाना चाहिये। यदि व्यायामकी विधि कठिन मालूम हो, तो उसे छोड़ देना ही अच्छा है। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये, कि व्यायामका आरम्भ गर्भकी प्रारम्भिक अवस्थासे ही होना चाहिये। गर्भके अन्तिम महीनोंमें पूरे उत्साह और परिश्रमके साथ व्यायाम कभी न आरम्भ करना चाहिये। इससे लाभके बदले हानि होनेकी सम्भावना रहती है। यह भी बड़े

चित्र नं २५

तीन सप्ताहका डिम्ब।

चित्र नं २६
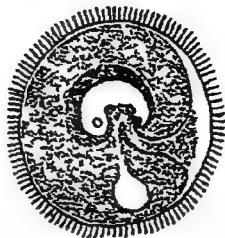
१ मासका भ्रूण।

चित्र नं २७
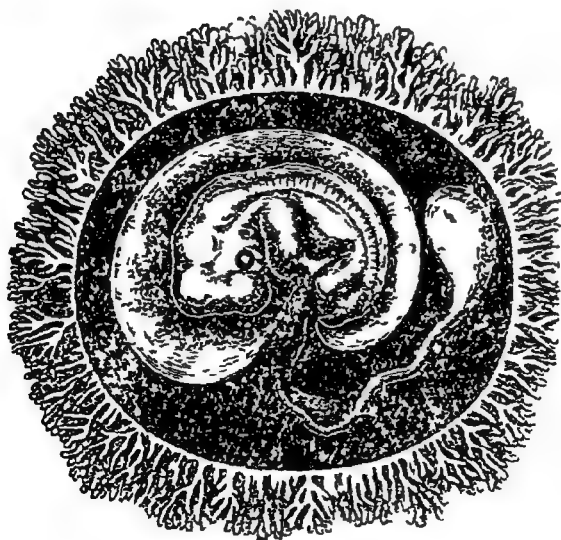
डेढ़ मासका भ्रूण।

(देखो पृष्ठ ६८ और ६६)

महत्वकी बात है, कि घरके भीतर होनेवाले सभी व्यायाम साफ सुथरे और हवादार कमरेमें ही होने चाहिये। यदि उस स्थानमें धूपका आवागमन हो तो और भी अच्छा है।

गर्भिणीको दिनमे कई वार आरामकी आवश्यकता पड़ती है। यदि नियमानुसार लेटी हुई अवस्थामें विश्राम किया जाय, तो उससे और भी लाभ हो सकता है। दोपहरको भोजन करनेके वाद कमसे कम पन्द्रह वीस मिनटतक आराम कर लेना परमावश्यक हैं, परन्तु गर्भावस्थाके पिछले महिनोंमें जव थोड़े परिश्रमसे ही थकावट आ जाती है, अधिक विश्रामकी आवश्यकता पड़ती है।

गर्भकी सभी अवस्थाओंमे जरा जल्दी ही सो जाना अच्छा है। अधिक देरतक जागने और अधिक गर्म मकानमें रहनेसे अच्छे स्वास्थ्यवाली गर्भिणियोंका भी अपकार होता है। गर्भावस्थामें शारीरिक और मानसिक—दोनो प्रकारका विश्राम गर्भिणीके लिये अत्यावश्यक है, इसलिये जिन कार्योंसे इनके विश्राममे वाधा पड़ती हो अर्थात् जिसके कारण शारीरिक थकावट और मानसिक उत्तेजना होती हो, उन कार्योंसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।

स्नान—आहार विहार और व्यायामकी तरह स्नान भी प्रत्येक स्त्रीके स्वास्थ्यके अनुकूल ही होना चाहिये। यह असम्भव

हैं, कि अच्छे स्वास्थ्य और शक्तिवाली स्त्रीको ठंढे जलमें अधिक देरतक स्नान करनेसे जो आनन्द और आराम मिले, क्षीण गठनवाली स्त्रीको भी ठण्ढे जलमें स्नान करनेसे उतना ही आराम और आनन्द मिल सके। बल्कि इससे हानिकी ही अधिक सम्भावना रहती है। स्नान बहुत कुछ पहलेके अभ्यासपर निर्भर करता है, परन्तु यदि कोई नये प्रकारके (हिप बाथ, सिट्ज़ बाथ,—इत्यादि) स्नानका अभ्यास करना चाहे, तो उसे विशेष कर गर्भावस्थामें अपने स्वास्थ्यकी अनुकूलता और प्रतिकूलतापर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

शरीरके लिये सफाई कितनी आवश्यक है, यह कहना बिलकुल निष्प्रयोजन है। शरीरकी अशुद्धताओंको दूर करना, चमड़े व लोमकूपोंको धोधाकर साफ रखना—यह सभी काम शरीरकी सफाईके अन्तर्गत हैं। समझदार स्त्रियां यह बात स्वीकार किये बिना नहीं रह सकतीं, कि गर्भावस्थामें शारीरिक शुद्धतासे उन्हें कितना आराम और आनन्द मिल सकता है। इसलिये जो स्त्रियां साधारण अवस्थामें नियमितरूपसे स्नान न करती हों, उन्हें भी गर्भावस्थामें निर्द्दिष्ट समयपर अपने सब अंगोंको अच्छी तरह धो पोंछ लेना चाहिये।

नित्य स्नान करना अच्छा है, परन्तु यदि किसीको ऐसा करनेकी सुविधा या इच्छा न हो, तो उसे कमसे कम एक वर्तनमें जल लेकर एक मोटे तौलिया या कपड़ेसे शरीर-को अवश्य पोछ लेना चाहिये। स्नानके वाद यदि शरीरमें स्वास्थ्यकर गर्मी आ जाय तो समझना चाहिये, कि उस स्नानसे अच्छा प्रभाव पड़नेकी ही सम्भावना है।

गर्भावस्थामे किसी प्रकारका आघात लगनेसे अनिष्ट होता हैं इसलिये जलकी शीतलताके कारण शरीरमें किसी प्रकारका आघात या स्पन्दनका अनुभव हो, तो जलकी शीतलताको कम कर लेना चाहिये। गर्म जलका स्नान किसी प्रकार शक्तिवर्द्धक नहीं है, परन्तु स्वास्थ्यकी क्षीणता और दुर्वलतामे कभी कभी यही समर्थित होता है।

गर्भावस्थामें जहांतक हो, गर्म जलका परिहार ही करना चाहिये, क्योंकि इससे शारीरिक शृङ्खला शिथिल पड जाती है और शरीर कमजोर मालूम होता हैं। विशेषकर जिस समय गर्भस्रावकी आशंका हो, इसे बिलकुल ही त्याग देना चाहिये। जिन स्त्रियोंको समुद्र, नदी किंवा सरोवरमें स्नान करनेका अभ्यास हो, वे समय और वायु आदिकी अनुकूलता देखकर कुछ देरतक उनमें भी स्नान कर सकती हैं।

पाश्चात्य देशोंमें हिपवाथ, सीट्ज़ वाथ और टेपिड

वाथ प्रभृति अनेक प्रकारके स्नानोंका प्रचार है। इन स्नानों-की भिन्न भिन्न प्रक्रिया और भिन्न भिन्न गुण हैं। गर्भाव-स्थामे इन स्नानोंसे गर्भिणीका बड़ा उपकार होता हैं, किन्तु भारतमे अभी उनका अधिक प्रचार नहीं है, इसलिये हम उनके सम्बन्धमे अधिक लिखना उचित नहीं सम-झते। परन्तु जो लोग इन स्नानोंकी विधि जानते हो, उन्हें अपनी स्त्रियोंको भी इनसे लाभ उठानेके लिये उत्सा-हित करना चाहिये।

वस्त्र—प्रत्येक मनुष्यको ऋतु और अपनी शारीरिक परिस्थिति व प्रकृतिके अनुसार वस्त्र धारण करने चाहिये। यदि एक मनुष्य जाड़ेके दिनोमे भी मलमलका कुड़ता पहने, तो न केवल उसका स्वास्थ्य ही नष्ट होगा, बल्कि लोग उसे बेवकूफ भी कहेंगे। इसी प्रकार वृद्ध और बालक किंवा स्वस्थ और अस्वस्थ मनुष्यकी पोशाक एक समान नहीं हो सकती। एकके लिये जो अनुकूल किंवा उपयुक्त होता है, वही दूसरेके लिये अवस्था भेदके कारण निरुपयोगी प्रमाणित होती है।

गर्भावस्थामे तंग कपड़े पहननेसे गर्भिणी व गर्भस्थ बालकका बड़ा अनिष्ट होता है। इसलिये गर्भावस्थामे भूल कर भी तंग कपड़े न पहनने चाहिये। अनेक स्त्रिया

अपने अड़ोसी पड़ोसियों और संगी साथियोंसे अपनी गर्भावस्था छिपानेके लिये तङ्ग कपड़े पहना करती हैं, परन्तु यह बात कभी छिपी नहीं रहती और अन्तमें उन्हें अपनी मूर्खताके कारण लज्जित होना पड़ता है।

गर्भ रहनेके बाद कंचुकी या इस प्रकारके अन्यान्य कपड़ोंको जहांतक हो शीघ्र उतार देना माता और बच्चे—दोनो ही के लिये श्रेयस्कर है। जिस समय गर्भ तीन महीनेका हो, उस समय एक भी कपड़ा ऐसा न पहनना चाहिये, जिससे मांस और हड्डियां कसी रहें। यदि शरीर पर कंचुकी न हो और सब कपड़े ढीले हों, तो इसमें बुरा मालूम होनेकी कोई बात नहीं है। बल्कि उस अवस्थामें जब कि गर्भिणी तंग कपड़े पहनकर व्यर्थ ही गर्भको छिपानेकी चेष्टा करती है, तब उसकी मूर्खता प्रकट होती है और समझदार लोगोंको बुरा भी मालूम होता है, क्योंकि यह रहस्य छिपानेसे नहीं छिपता। गर्भिणीका चेहरा ही कह देता है, कि वह गर्भिणी है।

बहुतसे मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं, जो अपनी माताके तंग कपड़े पहननेकी मूर्खताके कारण जीवनभर शारीरिक या मानसिक अथवा दोनों ही प्रकारकी विकलांगता भोगते रहते हैं। ऐसी स्त्रियां स्वयं भी प्रसव वेदनाके कड़ेसे कड़े

दण्डसे रिहाई नहीं पातीं और भयंकर व्याधिग्रस्त सन्तानको जन्म देकर आसपासकी हवा खराब करती हैं। प्रमाणिक सूत्रसे यह मालूम हुआ है, कि पचीस फी सदी हृदयके नासूर तंग चोलीकी ही कृपासे होते हैं।

जो स्त्रियां कंचुकीके प्रयोगमे बहुत अभ्यस्त होती हैं, वे उसे छोड़ देनेपर पहले मांसपेशियोकी कमजोरीके कारण पीठमे दर्द अनुभव करती हैं, परन्तु धीरे-धीरे जब वे शक्ति सञ्चय कर लेती हैं, तब दर्द भी जाता रहता है। यदि गर्भका आकार और वजन बढ़ जानेपर किसी प्रकारके आधारकी अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हो, तो किसी कपड़े को पेडूके चारो ओर लपेट रखना चाहिये, ताकि उदरका भार उस आधारपर पड़ा रहे। इस प्रकारके वन्धनसे लाभ हो सकता है। इस प्रकार यदि कोई कपड़ा लपेटा जाय तो उसकी गांठ सामनेकी ओर न लगाकर दाहिनी या बाईं ओर लगानी चाहिये।

इतिहाससे पता लगता है, कि रोमन और ग्रीक लोग गर्भिणीके लिये ढीली पोशाक नितान्त प्रयोजनीय समझते थे, यहांतक, कि कानून बनाकर उन्होंने तंग कपड़ोका निषेध कर दिया था। आज न वे रोमन या ग्रीक ही हैं न उनके वह कानून ही। कितनी ही शताब्दियां बीत गईं,

मनुष्यके बनाये हुए न जाने कितने कानून परिवर्तित हो गये और न जाने कितने स्मृतिसे पुछ गये, परन्तु प्रकृतिका नियम अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। जो मनुष्य दुस्साहस कर उसे तोड़नेकी चेष्टा करता है, वह आपही टूट जाता है।

सहवास—यह विषय बहुत ही विचारणीय है। गर्भावस्थामें पुरुषको चाहिये, कि वह अपनी स्त्री और गर्भस्थ बच्चेके हितकी दृष्टिसे अपनी प्रवृत्ति और लालसाको रोके—सहवाससे विरत रहे। स्त्रियोंको भी चाहिये, कि अपनी विषयवासनाको, जो कि समय समय पर और विशेष कर गर्भावस्थाके पिछले दिनोंमें प्रचण्ड वेग धारण करती है, रोकनेकी चेष्टा करें और अपने मनको इस सम्बन्धके विकारोंसे कलुषित न होने दें, क्योंकि इससे बच्चे पर बहुत बुरा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना रहती है।

जो स्त्रियां गर्भावस्थामें इस प्रक्रियामें भाग लेती हैं, उन्हें समझ रखना चाहिये, कि वे अपनी उस अमूल्य जीवनी शक्तिको नष्ट कर रही हैं, जिसका परिमाण उनमें अति अल्प है और जिसके उपयोगकी इस समय दूसरी ओर आवश्यकता है। सन्तानोत्पादन बहुत बड़ा काम है और उसके लिये स्त्रीको स्वास्थ्य और शक्तिकी आवश्यकता पड़ती

है। साधारण अवस्थामें वह अपनी शक्तिको चाहे जिस तरह काममें लाये, परन्तु गर्भावस्थामें वह उसका किञ्चित भी दुरुपयोग नहीं कर सकती। असंयम और अनियमित सहवास गर्भस्रावके साधारण कारणोंमें सबसे मुख्य गिना जाता है।

✓स्त्रियां जिस दिनसे गर्भ धारण करें उस दिनसे लेकर जबतक उनकी गोदमें दुधमुँहा बच्चा रहे, तबतक वे पत्नी पदकी अपेक्षा माताके पदकी ही विशेष अधिकारिणी होती हैं। पुरुषोंको चाहिये, कि वे उन्हें उतने समयतक माता ही समझें और पापपंकमें लिप्त होनेकी चेष्टा न करें✓। हमारे धर्म और चिकित्सा-शास्त्रमें भी गर्भिणी स्त्रीसे दूर रहनेका आदेश दिया गया है। यदि यह उन्हें असम्भव प्रतीत हो, तो निम्नलिखित नियमों पर ध्यान रखते हुए अपना कर्त्तव्य स्थिर करें।

(१) उस अवस्थामें सहवास कभी सम्मत नहीं है, जब गर्भस्रावकी आशंका या सम्भावना हो। गर्भस्रावके बाद भी एक महीने तक सहवास न होना चाहिये।

(२) साधारण अवस्थामें जिस समय या जिस ऋतुमें गर्भस्राव हुआ करता हो, उस ऋतु या अवधिके भीतर भी सहवास निषिद्ध है। क्योंकि गर्भस्राव प्रायः

ऋतुस्रावके दिनोंमें ही हुआ करता है और नियमित प्रसव भी प्रायः महीनेके उसी दिन होता है, जिस दिन ऋतुस्राव होता है।

(३) यदि एकाध बार गर्भस्राव हो चुका हो, तो दूसरी बार उसे रोकनेकी पूर्ण चेष्टा करनी चाहिये और इसके लिये सबसे अच्छा उपाय यही है, कि गर्भावस्थामें सहवास एकदम बन्द कर दिया जाय।

(४) गर्भाधानके पिछले महिनोंमे अर्थात् जब दो तीन महिने बाकी रहें तब सहवासका क्रम किसी तरह जारी नहीं रक्खा जा सकता। यह बिलकुल अस्वाभाविक और अमानुषिक है।

जो लोग गर्भावस्थामे आत्मसंयमसे काम नहीं लेते, उनका अपराध अक्षम्य है। इस अपराधके अपराधी स्त्री पुरुषोंको कितने भयानक परिणामोंका सामना करना पड़ता है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। गर्भस्थ बच्चे, जो कि मातापिताकी ही दया पर सम्पूर्ण रूपसे निर्भर करते हैं, उनपर भी इसका प्रभाव कम संकटजनक नहीं पड़ता। कहते हैं, कि मिर्गी आदि रोगोंकी उत्पत्तिका सूत्रपात इसी समयसे होता है।

इन्द्रिय-तृप्ति या आनन्द भोगकी लालसासे जीवनको

संकटमे डालना और खुली आँखोंसे यह देखते हुए व साधारण बुद्धिसे यह जानते हुए, कि इसका दण्ड न केवल हम दोनोंको ही भोग करना पडेगा, वल्कि इससे एक असहाय और अनाथ मानव-सन्तानके भी संकटमें पड़नेकी सम्भावना है, इस प्रकारके मनुष्यत्व हीन कायरतापूर्ण घृणित कार्यमें आनन्द अनुभव करना कभी क्षम्य नहीं हो सकता, न ऐसा करनेका किसीको अत्रिकार ही है।

गर्भावस्था स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये संयमसे काम लेनेका समय है, खास कर पुरुषके लिये, क्यों कि बहुधा वही अपराधी पाया जाता है। मानव-जीवनमें सबसे प्रधान वस्तु स्वास्थ्य है, अत पहले उसके नियमोंपर चलकर शक्ति संचय करना चाहिये और बादको योग्यतापूर्वक सन्तानोत्पादनका दायित्व ग्रहण करना चाहिये।

स्तन-रक्षा—स्तनपीड़ा भी एक ऐसा रोग है, जो स्त्रियोंके लिये सबसे अधिक प्राणघातक है। भुक्तभोगी स्त्रियां हमारी इस बातका समर्थन किये विना नहीं रह सकतीं। इसलिये इस कठिन पीड़ासे वचनेके लिये प्रत्येक स्त्रीको चाहिये, कि वह दूसरे कामोंमें भले ही असावधानी रक्खे, परन्तु अधिक नहीं तो कमसे कम प्रसवके तीन चार महीने पहलेसे स्तनोको मजबूत व कड़े बनानेकी चेष्टा, अवश्य करे।

स्तन-विकार

गर्भ संचारसे लेकर प्रसवके समय तक स्तन बच्चेके लिये आहार संग्रह करनेकी चेष्टा करते है और इसके फल स्वरूप उनमें नानाप्रकारके परिवर्त्तन होते रहते हैं। स्तनोंकी इस अवस्थामें उनपर और, विशेषकर उनके शिरोभाग या भिटनियोंपर दवाव या खिंचाव डालना कभी कभी विपत्ति-जनक हो जाता है, इसलिये उनकी विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये। ढीले कपड़े पहनने और नित्य सफाई रखनेसे बहुत कुछ आराम मिलता है। यदि खूब सम्हालने व उचित ध्यान रखने पर भी भिटनियोंमें जख्म हो जायें या पीड़ा उठे, तो किसी चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करानी चाहिये। पूछने पर, गाव घरकी वूढ़ी स्त्रियां इसके घरेलू उपचार भी बतला सकती हैं।

१४

गर्भिणीका मानसिक स्वास्थ्य

हमलोग साधारणतया यही समझते हैं, कि किसी शारीरिक घटना या कार्यका मनपर प्रभाव पड़ता है। यदि शरीरमे कहीं चोट लगती है या किसी अंगमें किसी कारणसे पीड़ा होती है, तो उसका तुरन्त मनपर प्रभाव पड़ता है और उसके फल स्वरूप हमें मनःकष्ट होता हैं। यह बात इतनी साधारण हैं, कि इसे हम सभी लोग जानते व मानते हैं, परन्तु वैज्ञानिकोंने प्रमाणित कर दिया है, कि शारीरिक घटनाओंका मनपर जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक प्रभाव मानसिक घटनाओंका शरीर-पर पड़ता हैं। यदि यह बात सच न होती, तो मानसिक चिन्ताके कारण लोगोंमें जो शारीरिक दुर्बलता आ जाती है, अथवा कोई विपत्ति पड़नेपर एक ही दिनमें जो मनुष्यका मुँह सूख जाता है, वह कदापि न होता। एक जरा सी

बात सुनते ही चेहरेपर सुर्खी या पीलेपनका आ जाना हमे बतलाता है, कि मानसिक विचारोंका शरीरपर इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ता हैं, कि देखते ही देखते वह कुछसे कुछ हो जाता हैं।

प्राणीमात्रका शरीर पञ्चतत्वोंद्वारा गठित होता है। शरीरके भिन्न भिन्न अंश भिन्न भिन्न तत्वोंसे बनते हैं। हमारे शरीरमे रक्त, मांस, मेद, चर्म और अस्थि प्रभृति स्थूल किंवा अनेक प्रकारके जो सूक्ष्मतत्व विद्यमान हैं, उन्हें पञ्च भूतात्मक द्रव्य किंवा पदार्थ (Matter) कहते हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्नायु जो एक प्रकारकी नसे हैं और हमारे समूचे शरीरमे मकड़ीके जालेकी तरह बिछी हैं, मन और इन पदार्थोंके बीचमे संयोजक यन्त्रकासा कार्य करती हैं। मस्तिष्क इन स्नायुओ द्वारा उन मांसपेशियोंके पास तार भेजा करता है, जो समूची शारीरिक मशीनरी-को परिचालित करती हैं। इसीलिये किसी आमोदजनक विचारके कारण हमे हठात् हँसी आ जाती है, किसी हृदय-द्रावक घटनाको देखकर हम रो देते है और भयके समय हमारी मुद्रा विचित्र प्रकारकी हो जाती है। यह सब बातें पदार्थके ऊपर मनकी ही जय घोषित करती हैं। यदि मन-स्थितिका पदार्थ पर प्रभाव न पड़ता

होता, तो इस तरह शारीरिक परिवर्त्तन होने कदापि सम्भव न थे।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं, कि यदि साधारण विचारोंसे शरीरपर इतना अधिक प्रभाव पड़ सकता है, तो यह विशेष आश्चर्यकी बात नहीं, यदि असाधारण विचारोंसे शरीरपर कोई असाधारण प्रभाव पड़े, क्योंकि दोनोंकी कार्य-प्रणाली एक ही है, केवल विचार-धारामें कुछ अन्तर है। तब आप यह पूछ सकते हैं, कि संसारमें आजकल असाधारण परिणाम बहुत कम क्यों दिखाई देते हैं? क्यों नहीं असाधारण विचारके कारण कहीं असाधारण परिणाम दिखाई देता? इस प्रश्नके उत्तरमें बतलाया जा सकता है, कि ऐसा न होनेका प्रधान कारण यही है, कि आजकल विचारशक्तिकी एकाग्रता और मानसिक आकांक्षा यथेष्ट परिमाणमें दृष्टिगोचर नहीं होती। हमलोगोंका जीवन इतना अशान्त और दुःखमय हो गया है, कि हमलोग शायद चेष्टा करनेपर भी वैसा नहीं कर सकते।

यह जानी हुई बात है, कि जो आदमी जिस रोगसे बचनेके लिये सबसे अधिक उत्कण्ठित रहता है, बहुधा वह उसी रोगका शिकार होता है। जिस मनुष्यका मस्तिष्क

क्षय रोगकी भयंकर बीमारीसे सर्वदा आलोड़ित रहता है, उसके शरीरमें क्षयके वास्तविक कीटाणु प्रवेश कर इतना प्रबल रूप धारण करते हैं, कि वह क्षय काश और रोगीसे भी अधिक बुरी अवस्थामें कालयापन करता है।

बच्चेको दूध पिलानेके पहले या पिलाते समय यदि माता क्रोधके पूर्ण आवेशमें आ जाती हैं, तो बच्चेके लिये उसके स्तनका दूध विषके रूपमें परिणत हो जाता है। क्रोध या ऐसे ही किसी उत्तेजक भावोसे स्नायविक श्रृङ्खलामें जो परिवर्त्तन उत्पन्न होता है, वह सारे शरीरमें ही अनुभूत होता है और ऐसे भावोंके एक बार उत्तेजित होनेपर इसके हानिकारक प्रभावोंको हटाकर शरीरको सम्पूर्ण स्वाभाविक अवस्थामें लाना बहुत कठिन हो पड़ता है। इसके कारण शरीर और मनपर जो प्रभाव पड़ता है, वह भी जल्दी दूर नहीं होता। जिस प्रकार आहार करते समयकी प्रसन्नता, परिपाकमें सबसे अधिक सहायता देती है, उसी प्रकार क्रोध या दूसरे बुरे व्यसन परिपाक शक्तिको विकृत कर, उसके कार्यमे विघ्न उपस्थित करते हैं।

इसलिये अब यह साफ प्रकट हो जाता है, कि गर्भावस्थामें स्त्रीको अपनी मानसिक अवस्था सर्वदा शुद्ध, शान्त और पवित्र बनाये रखनेकी सबसे बड़ी आवश्यकता है,

क्योंकि वह चाहे या न चाहे उसीके मस्तिष्कका प्रतिबिम्ब उसके बालकके मस्तिष्कमें भी प्रतिफलित होता है।

गर्भाधानके पहले चार पांच महीनोंतक गर्भिणी साधारण भावसे जीवन व्यतीत कर सकती है और यदि वह विचार पूर्वक काम करती हो, तो यही वाञ्छनीय भी है; परन्तु क्रमशः जीवनचर्यामे जिन परिवर्त्तनोकी आवश्यकता पड़ती जाय, उसे तुरन्त पूरा करते रहना चाहिये। अधिक उत्तेजना और अधिक शारीरिक या मानसिक परिश्रम धीरे धीरे रोक देना चाहिये। परन्तु साथ ही अपनेको बन्द-कर रखना और अपने काम काज तथा दूसरोंकी सेवासे एक बारगी मुंह मोड़ लेना अथवा अपने जीवनको एक बारगी पंगु और अस्तित्वहीन बना देना भी अनावश्यक और हानिजनक है। ऐसा कोई भी कारण नहीं, कि अपनी अवस्थापर विशेष ध्यान देते हुए अन्यान्य कार्य्योंमें भाग न लिया जा सके।

आजकलके वैज्ञानिक युगमें गर्भिणी स्त्रीको यह जान रखना चाहिये, कि प्रसवके समयके कष्ट और विपत्तिसे भयभीत होनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं। इसके लिये उसे पहलेसे ही सरपच्ची करनेकी भी कोई जरूरत नहीं। यदि वह स्वस्थतापूर्ण जीवन व्यतीत करती है, तब तो कोई
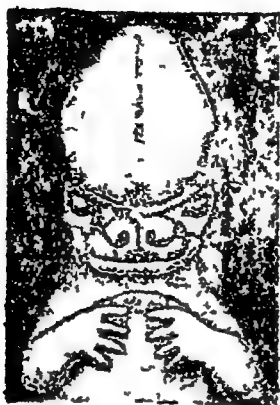
चित्र नं० २८

डेढ़ मासके भ्रूणका चेहरा।

चित्र नं० २९

दो मासके भ्रूणका चेहरा।

[देखो पृष्ठ ६६]

विपत्ति आनेकी सम्भावना ही नहीं है, किन्तु कमजोरीके कारण यदि ऐसी विपत्ति आनेकी सम्भावना भी हो, तो उसे पहले से इसके लिये चिन्ता न करनी चाहिये। दाई और डाक्टरोंकी सहायतासे सहजमे ही यह कष्ट भी दूर किया जा सकता है।

गर्भिणीको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये, कि शरीरको स्वस्थावस्थामे प्रसव वेदना शरीरका एक स्वाभाविक धर्म है। इस समय शरीर और मनको शान्त एवम् प्रफुल्लित रखनेसे शिशुका उपकार तो होता ही है, साथ ही माताका भी प्रसव कष्ट लाघव होता है। भावी माताका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये, कि इस समय वह अपने सभी प्रकारके अवसादो और निरुत्साहताको मनसे दूर कर दे और उसे किसी तरह भी अशान्त न होने दे। जब कोई अनिष्ट-कर और अशान्तिकर विचार मनमें प्रवेश करे, तो उसे तुरत हटाकर उसकी जगह सुखकर और शान्तिपूर्ण विचारोको स्थान देना चाहिये।

अपने सभी विचारोपर प्रभुत्व जमाकर उन्हे इच्छानु-कूल और व्यवस्थित बनाना बड़ी दृढ़ प्रतिज्ञा और अभ्यासका काम हैं, परन्तु :यह काम भी मनुष्यके लिये असम्भव नहीं है। धीरे धीरे मनको इच्छाशक्तिकी आज्ञाकारितामे लाया

जा सकता है। इस प्रकार क्रमशः अभ्यास बढ़ानेसे न केवल माताका मन उच्च और अच्छे विचारोंसे पूर्ण होकर हृदय महान और उदार होता है, बल्कि बालकके चरित्रमें भी वे ही गुण आ जाते हैं।

प्रत्येक कार्यका आरम्भ ही कठिन होता है। किसी प्रकार आरम्भ हो जानेपर फिर आगे अग्रसर होना सरल हो जाता है। अच्छे और बुरे—सभी कार्योंका यह एक ही नियम है। ठीक यही नियम विचार प्रगतिमें भी काम करता है। सबसे पहले इच्छाशक्ति संकल्प करती है, कि मन अमुक विषयपर विचार करेगा—अर्थात् ऐसे विषयपर जो शरीर और मनके स्वास्थ्यके लिये हितकारक होगा। स्कोपेनहारके मतानुसार मनुष्यके मस्तिष्कमें एक तिहाई हिस्सा धारणाशक्ति और दो तिहाई हिस्सा इच्छाशक्तिका होता है। इसलिये इच्छाशक्ति जब अच्छे काममे परिचालित होती है, और उसमे जब दृढ़ता होती है, तो मन पहली बार थोड़ी चेष्टासे ही अपने मालिककी आज्ञा पालन कर लेता है और उसकी इच्छानुकूल चलकर स्वयं गुणोंका आगार बन जाता है। मनकी यही अवस्था होनेपर शरीरका वास्तविक हित हो सकता है। दूसरी बार मनके द्वारा इच्छाका आदेश पालन करवानेमें और भी कम कठिनाई

पड़ती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे मन इच्छाका आदेश पालन करनेमे इतना अभ्यस्त हो जाता है, कि कोई विचार जो कि पहले वड़ी कठिनाईसे मनमें स्थान पाता था, अब अपने आप मनमें बना रहता है। अभ्यासको द्वितीय प्रकृति कहा गया है। यह बिल्कुल ठीक है। धीरे धीरे मनको इच्छाशक्तिका आदेश पालन करनेका इतना अभ्यास हो जाता है, कि फिर इच्छाशक्तिको उसपर हुक्म चलानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। जरूरत इसलिये नहीं पड़ती, कि मनमें इच्छा द्वारा सर्वदा अच्छे और उन्नत (बुरे विचारोंका ठीक विपरीत परिणाम) विचारोंके भरे जानेसे क्रमश वह इतना उन्नत हो जाता है अर्थात् उन्हीं विचारोंसे इतना अभ्यस्त हो जाता हैं, कि दूसरे प्रकारके इतर विचार उसमे स्थान ही नहीं पाते। इसलिये इच्छा-शक्तिको फिर विचार निर्वाचनकी जरूरत नहीं पड़ती।

अच्छे विषयोंपर वार वार विचार करनेसे मस्तिष्क और शरीरपर उसका एक ऐसा प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता हैं, जिससे वैसे ही अन्यान्य सुन्दर और अच्छे विचारोंके लिये सर्वदाके लिये द्वार खुल जाता है। फिर अच्छे विचारों को पुचकारकर मस्तिष्कमें प्रवेश करानेकी जरूरत नहीं पड़ती। अच्छे विचारोंके स्थान पा जानेसे बुरे और गन्दे

विचारोंको वहां प्रवेश करना कठिन हो जाता है और यदि वे विचार अपनी प्रबलताके कारण प्रवेश भी कर जाते हैं, तो भीतर उनका स्वागत करनेवाला कोई संगी साथी न होनेके कारण निराश होकर उलटे पैरों उन्हें वापस लौट आना पड़ता है। इच्छा-शक्ति कितनी ही बलवती हो, प्रलोभन उसके कड़े पहरेको रौंदकर मनमें प्रवेश कर ही जाते हैं, परन्तु भीतर जाकर वे जिस विचारके स्थानपर अधिकार जमाकर बैठ जाना चाहते हैं, वह यदि शक्तिशाली होता है, तो उन्हे तुरंत परास्त कर खदेड़ देता है और यदि स्वयं निर्बल होता है, तो प्रलोभनों का ही मनपर आधिपत्य हो जाता है।

अंगरेजीमें एक कहावत है कि We cannot stop the birds flying over our heads, but we can prevent them from making nests in our beards अर्थात् हम अपने सिरपरसे पक्षियोंका उड़ना नहीं बन्द कर सकते, परन्तु इतना अवश्य कर सकते हैं कि कोई चिड़िया हमारी दाढ़ीमे घोसला न बनाने पाये। इसी प्रकार बुरे विचार भी मनपर अधिकार जमा सकते हैं, और वे भी अपने अनुरूप विचारों के लिये मनमें आब-हवा तैयार कर उनके लिये क्षेत्र तैयार कर देते हैं, जिससे इच्छाकी

चेष्टा मात्रसे ही मस्तिष्क बुरे विचारोंका आगार बन जाता है। बुरे और भले विचार सर्वदा ही आते रहते हैं, जिसकी जब शक्ति अधिक होती है, मनपर वही प्रभाव विस्तार करता है। इस प्रकार आजीवन मस्तिष्क परस्परके विरोधी विचारोंके घातप्रतिघातसे गठित होता रहता है और इच्छा शक्ति चिन्ताके लिये जैसा आहार देती है उसीको परिपाक करता रहता है। प्रत्येक मनुष्यके मनमें कुछ न कुछ भले बुरे विचारोंका बीज रहता ही है, जो जिसकी सबसे अधिक चाहना करता है, वही सारे मस्तिष्कपर अधिकार कर लेता है। प्रत्येक मनुष्यको पहले अपने हृदयमें ही स्वर्ग तैयार करना चाहिये, फिर बाहरी स्वर्ग वह अपने आप ही प्राप्त कर सकता है।

जब मन चेष्टा और परिश्रम द्वारा दृढ़ और सुपरिचालित इच्छाशक्तिके शासनाधीन कर दिया जाता है, तो उसका अमूल्य पुरस्कार हाथोंहाथ मिल जाता है। क्योंकि इस प्रकार इच्छाशक्तिपर वश्यता प्राप्त करनेसे ही आत्म दमनकी शक्ति आती है और आत्म दमनकी शक्तिसे ही परदमन की शक्ति प्राप्त होती है।

जीवनका विकास आभ्यन्तरिक होता है। जिसको हम बहुत प्यार करते हैं और जिसकी हम सबसे अधिक

चिन्ता करते हैं, उसीके अनुसार धीरे-धीरे हमारा जीवन ढल जाता है। इसी प्रकार पिता माताकी चिन्ताप्रणाली- को सन्तानें भी उत्तराधिकार सूत्रसे प्राप्त होती हैं। माता पिताकी जो चाहना और आकांक्षाकी वस्तु होती है, सन्तानें भी मातापितासे उन्हीं प्रवृत्तियोंको प्राप्त करती हैं। इतिहास और विज्ञानका अनुभव इस बातके साक्षी हैं। वास्तवमे विचार ही कार्यका कारण है। मनुष्य विचा- रोंकी समष्टि है। इस जन्ममे जो वह सोचता है, दूसरे जन्ममें वही वह होता है। स्त्री और पुरुष सभी जैसा सोचते हैं, वैसा ही करते है, और कार्यके अनुसार ही उनका जीवन गठित होता है। यही क्यों, विचारशक्ति एक ऐसी दुर्दमनीय शक्ति, एक ऐसा गतिशील ताड़ित यन्त्र है, जो एक मस्तिष्कसे दूसरे-तीसरेके मस्तिष्कमें अलक्षित भावसे आता जाता रहता है और इस प्रकार वह अपने अनु- कूल वायुमण्डल ही तैयार कर लेता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यके मस्तिष्कके सामने विचार-समुद्रका विस्तृत वायुमण्डल प्रस्तुत होता है और हृदयमे भले या बुरे विचारोका ताड़ित यन्त्र लगा रहता है।

प्रत्येक स्त्री जिसमे भले या बुरे विचार स्वभावतः प्रवा- हित हो रहे हैं, अपने आसपासके वायुमण्डलमे वे ही विचार

छोड़ेगी जैसे विचारोंसे उसका अपना मस्तिष्क भरा हुआ है। इस प्रकार उसकी इच्छा हो या न हो, उसके विचार अपनी शक्ति और समझदारीके अनुसार दूसरे मनुष्योंको अवश्य ही प्रभावित करेंगे। इस प्रकार जो प्राणी—चाहे वह मनुष्य हो चाहे पशु, स्त्रीके विचार-वायुमण्डलमें प्रवेश कर जाता है, वह उसीकी विचार-धारामे ढल जाता है। कार्लाइलका कथन है, कि प्रकृतिका विधान यह कितना सुन्दर है, कि मनुष्य मरणशील होते हुए भी उसके विचार अमर होते हैं। आज तुमने जिस विचारकी सृष्टि की है, उसको तुमने अतीत और वर्त्तमानके अनुभवसे संग्रह किया है और जाते समय तुम भी भविष्यके लिये उसको छोड़ते जा रहे हो।

इसलिये यह प्रत्येक भावी माताका कर्त्तव्य होना चाहिये, कि सबसे पहले वह इसी बातपर ध्यान दे, कि किस प्रकार वह सुखी, शान्त और सहनशील हो सकती है। यदि सुखकी प्राप्तिमें मनुष्यका अविचल विश्वास रहे, तो सुख मिले बिना नहीं रह सकता। सभी अच्छी वस्तुयें और गुण उन मनुष्यको प्राप्त हो सकते हैं, जो उनकी सम्भावनामे अविचलित रूपसे विश्वास करते हैं। चूंकि स्त्री ईश्वरके सृष्टिकार्यमें हाथ बटाती है, इसलिये उसका प्रत्येक

कार्य सुखकर और आनन्दवर्द्धक होना चाहिये। साथ ही उसके प्रत्येक स्वजन सम्बन्धियों—विशेषकर उसके पतिका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये, कि उसके सुख, आराम और स्वास्थ्यपर विशेष ध्यान रक्खे।

गर्भावस्थामें स्त्रियोंके सभी अपराध क्षम्य गिन जाने चाहिये, क्योंकि वह उस समय दया और सहानुभूतिकी मूर्त्ति होती है। गर्भावस्थाकी कठिन यन्त्रणासे यदि उसके स्वभावमें किसी प्रकारकी रुखाई भी आ जाय, तब भी उसके सगे-सम्बन्धियोंको चाहिये, कि धैर्यके साथ उसको सह लें, परन्तु उसके मनपर किसी प्रकारकी चोट न पहुंचने दें। सीधेसादे भावसे रहने और खुली हवामें वायुसेवन करनेसे झुंझलाहट और ऐसे ही अन्य प्रकारके मनको कष्ट देने-वाले रोगोंसे परित्राण पाया जा सकता है। जरा साधारण बुद्धिसे काम लेकर आत्मदमनका अभ्यास करने हीसे इस प्रकारके सभी उत्तेजित, चंचल और विरक्त करनेवाले विचारोंको दूर हटाया जा सकता है और साथ ही अपने मनको कोमल बनाकर सुख, सुन्दरता और प्रेमको आयत्त करनेकी चेष्टासे ही उसका चेहरा क्रमशः प्रेम और आनन्दका दर्पण बन सकता है, जिसमें स्वीडेनबर्गके कथनानुसार स्वर्गीय प्रभा झलकने लगती है।

जीवन-विज्ञान

इमर्सन कहते हैं,—"आन्तरिक प्रसन्नता सबसे अच्छी पौष्टिक औषधि है।" मनको आनन्द देनेवाली चीजें स्वास्थ्य वर्द्धक होती हैं। प्रतिभा खेलकूदमे ही काम करती है और अन्तमे उसका अच्छापन प्रकट होता है। यह प्रकृतिका नियम है, कि वह अपनी सुन्दरताकी रक्षाके लिये ही अपनी सुन्दरताको बखेरती रहती है। जो लोग प्रकृतिके इस नियमपर लक्ष्य करते हैं, वे कभी हतोत्साह न होकर सर्वदा उच्चाकांक्षा और महत्प्रयत्नसे हृदयको प्रोत्साहित करते रहते हैं। प्रसन्नता और खुशमिजाजी ऐसी अमूल्य चीजे हैं, कि वह जितनी ही खर्च की जाती हैं, उतना ही उनका मूलधन बढ़ता जाता है। जिस प्रकार चकमक पत्थरकी गुप्त अग्नि कभी नष्ट ही नहीं होती—उसके ऊपर सैकड़ो बार लोहा रगड़कर जलाते रहो, वह ज्योकी त्यों बनी रहती है, उसी प्रकार किसीके मनकी प्रसन्नताकी शक्तिको कोई छीन या खींच नहीं सकता।

ऐसा भी देखनेमे आया है, कि मानसिक अवसाद और निरुत्साहतासे व्यक्तियो और कभी-कभी जातियोमे भी महामारीका कीटाणु पैदा हो जाता है। प्रसन्नतासे शरीरमें शक्ति आती है। आशासे मनमे काम करनेका हौसला उठता है। दूसरी ओर निरुत्साहतासे मन खिन्न

वना रहता है, और काम करनेकी शक्तियां वेढुरी हो जाती हैं। प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि वह अपने जीवन और प्रकृतिको संसारके सामने सुखी बनाकर रक्खे, नहीं तो उसके जन्म लेनेका कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा।

गर्भावस्थामें स्त्री जिस प्रकारसे जीवन व्यतीत करती है, उस नियमसे शिशुके जीवन और चरित्रपर अवश्यम्भावी प्रभाव पड़ता है, यह विश्वास अब अधिकाधिक फैलता जाता है और इसकी जड़ भी अब मजबूत होती जा रही है। इसलिये गर्भिणी चाहे जिस विषयपर अपने मनको अधिक सन्निबद्ध करे, उस विषयका अनुराग उसके शिशुके मनमें होना बिलकुल स्वाभाविक है। ऐसा देखा गया है, कि गर्भिणीके संगीत-चर्चा करनेसे उसके शिशुमें भी संगीतका अनुराग आ जाता है। माता यदि चित्रकारी जानती है, तो बालकका मन भी उधर ही झुकता है। ज्ञान विज्ञान सभी विषयोंमें यही बात पायी जाती है। इटाली देशमें प्रायः देखा जाता है, कि वहांके बालक शैशवावस्थामें ईसा मसीहके चित्रों और मूर्त्तियोंसे मिलते जुलते होते हैं, इसका कारण यह है, कि गर्भावस्थामें वहांको स्त्रियां मेडोनास (Madonnas) की पूजा किया करती हैं। नेपोलियनकी माता, जो कि अपने पुत्रसे भी अधिक उल्लेखनीय

हैं, गर्भावस्थामे और प्रसव होनेपर भी नैपोलियनको लिये हुए अपने पतिके साथ फौजमे घूमा करती थीं। इसी प्रकार पौराणिक ग्रन्थोंमें नारद, अभिमन्यु और प्रह्लादके जो गुण वर्णित हैं, वे उन्होने अपनी सुयोग्य माताओंसे ही प्राप्त किये थे।

इस प्रकार गर्भावस्थामे नियमित शारीरिक व्यायामसे न केवल शिशुका शारीरिक चरित्र ही गठित होता है, बल्कि किसी मानसिक ज्ञान चर्चासे शिशुका मानसिक चरित्र भी विशेष रूपसे प्रभावित होता है।

गर्भिणी जैसे उचित सावधानीसे अपने शरीरको स्वस्थ बनाती है, उसी सावधानीसे अपनेसे अधिक उपने शिशुका स्वास्थ्य पुष्ट करती है। उसी प्रकार कोई विशेष गुण, विद्या या ज्ञानकी आलोचनासे जितना वह स्वयं लाभ उठाती है, उससे कहीं अधिक लाभ वह अपने शिशुको देती है।

इसी प्रकार यदि कोई स्त्री गर्म मिजाजवाली या खराब स्वभाववाली हो, तो धीरे धीरे अपने स्वभावको बदलनेकी चेष्टा करनेसे उसकी सन्तान उसके उस अवगुणसे बच जा सकती है और बदलनेकी चेष्टा न करनेपर उसके शिशुमे वे ही अवगुण पूरे जोरोंसे प्रकट हो सकते हैं।

कभी कभी जब किसी बालकमे कोई खास बुराई दिखाई देती है, तब यह निश्चय करना कठिन हो जाता है, कि इस प्रकारका स्वभाव कोई बालक क्योंकर प्राप्त करता है। हो सकता हैं कि माताने वैसी बातोंकी कल्पना भी न की हो। माता पितामे वे अवगुण तनिक भी दृष्टिगोचर न होते हो, परन्तु शिशुमें वही पूर्णरूपसे पाये जाये। इसका कारण यह है, कि पिता माताके स्वभावमे वह गुण न प्रकट होनेपर भी उनमे किसी अधःपतित उर्ध्वतन पूर्वजका वह दूषित रक्त अवश्य ही वर्तमान रहता है, वही बालकमें सहसा फूट निकलता है, जो उसके चरित्रमें धब्बा लगा देता है और कभी कभी वह उसका जीवन ही नष्ट कर डालता है। ऐसी कोई बात नहीं, कि पिताके पाप पुत्रको भोगने ही पडें, बल्कि बहुधा दो दो तीन तीन पीढ़ीके बाद पापका बीज सन्तानोमें प्रकट होता है। कभी कभी यह दूषित बीज बहुत दिनोके बाद प्रकट होता है, जिससे यह निश्चय करना कठिन हो जाता है, कि किस पूर्वजका उपार्जित किया हुआ यह पाप बीज है।

यह भी बहुत सम्भव है, कि माताके शरीर या मनमें कोई कठिन आघात लगे, तब भी बालक बेदाग बच जाय। माता कोई विशेष प्रकारका भोजन चाहती हो, परन्तु नहीं पा

सकती हो, इसका किसी प्रकारका असर वालकपर पड़ेहीगा, ऐसी कोई वात नहो। इस प्रकारकी आकांक्षा और चाहनाके वुरे प्रभाव पर वहुत लोग विश्वास करते हैं और वहुत लोग नही भी करते, परन्तु आत्मदमन करनेवाली स्त्रियां इस प्रकारकी चिन्तासे कभी अपने मनको अशान्त नहीं करतीं; उनके ऊपर जो अवश्यम्भावी परिणाम आ जाता है, उसको वे यथासम्भव प्रसन्नताके साथ सहन कर लेती हैं और तुरंत अपने मनको दूसरे विचारोमे लगा देती हैं। जहांतक सम्भव हो, दुःखदायक विचारोको सदा मनसे हटाये रखना ही अच्छा हैं, क्योकि व्यर्थकी आपद सिरपर लेना मूर्खताके सिवा और कुछ नही है। परन्तु दैवात् या अपरिहार्यरूपसे ऐसी कोई घटना हो ही जाय, तो स्त्रीको चाहिये, कि वह अपने मनको उससे विल्कुल अशान्त न होने दे। पहले और पीछले महीनोंके सिवा किसी विशेष घटनासे वालकपर प्रभाव पड़नेकी वहुत कम सम्भावना है परन्तु माता यदि सावधानी और सयमसे काम ले, तो वह सम्भावना भी नहीं रह सकती।

गर्भावस्थाके आरम्भसे ही माताको चाहिये, कि वह सुन्दर चित्र और मूर्त्तियां आदि देखे और जहांतक सम्भव हो, उन्हें ध्यानसे देखकर हृदयमे उसकी कल्पना करे।

जनन-विज्ञान

अवकाशका समय गान, वाद्य और सद्ग्रन्थ पढ़नेमे विताना चाहिये—परन्तु पढ़ते समय खूब धीरे धीरे पढ़ना चाहिये और उसका पूरा पूरा अर्थ समझते जाना चाहिये। पढ़ना ही सबसे अधिक उपकारी है, क्योंकि वह चिन्ताको भी उत्तेजित करता है। सखी सहेलियां और जान पहचानकी स्त्रियां जो झूठी कथा कहानियोंद्वारा मूर्खतापूर्ण और संकीर्ण विचारोका विना मांगे दान करती हैं, उनसे जहांतक सम्भव हो, गर्भिणीको दूर ही रहना चाहिये। जिस प्रकारका गुण माता अपने शिशुमें देखना चाहे, उसी प्रकारका भाव सदा उसको अपने मनमें रखना चाहिये और शक्ति-भर अपने भीतर उस सद्गुणका विकास करना चाहिये। शरीरकी सुन्दरता, मनका वल, भावकी मधुरता और पवित्र आकांक्षायें, ये सभी गुण पिता माताके द्वारा पुत्रको मिल सकते हैं, परन्तु यह पिता माताके देनेकी इच्छा और चेष्टापर निर्भर करता है।

यदि माता चाहती हो, कि उसका बच्चा उसके प्रति स्नेहवान, और भक्तिमान हो तो उसे चाहिये, कि गर्भावस्थामे वह उसके प्रति प्रेम और स्नेह भाव बढ़ाती रहे। वास्तवमें भाग्यशाली वे ही माता पिता हैं, जिनकी सन्तानोको उनके उत्तराधिकारसे पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता।

जनन-विज्ञान

गर्भसंचारके वादसे ही सन्तानके ऊपर पिताका प्रत्यक्ष प्रभाव रहित हो जाता है। तथापि उस अवस्थामें भी उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव—वल्कि यों कहिये, कि वरावर दायित्व रहता है। उसके व्यवहारसे स्त्री और सन्तानके स्वास्थ्य और सुखमें सहायता भी मिल सकती है, उसके व्यवहारसे हानि भी पहुंच सकती है। शिशुके चरित्रपर उसके निजी आचरण और शिक्षा दीक्षाका महत्वपूर्ण प्रभाव रहते हुए भी यह वात विल्कुल ठीक है, कि उसकी साधारण प्रवृत्तियां उसे अपने माता पितासे ही मिलती हैं। जव शिशु माताके उदरसे प्रसूत हो जाता है, तव माता पिताका दान वहीं रुक जाता है। इसके वाद जो कुछ वह प्राप्त करता हैं, वह उसे स्वयं संग्रह करना और खरीदना पड़ता है। पिता माताके दानोंको भी उपयोगी और मूल्यवान वनानेके लिये पहले उनको यत्नपूर्वक स्फुटित और विकसित करनेकी आवश्यकता पड़ती है।

यह ध्यानमें रखनेको वात है और प्रत्येक युवतीको जो स्त्रीत्वकी अवस्थापर पहुच गयी हैं, यह ज्ञान रखनेकी आवश्यकता है, कि गर्भावस्थाके दिनोंमे माता जैसे अपनेको वनाती है, और जैसा करती है, वह वालकके लिये महत्व-पूर्ण तो है ही, विवाह किंवा गर्भावस्थाके पहले वह अपने

चरित्र और जीवनके स्वभावको जैसा बनाये रहती है, उसका प्रभाव बालकके लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मस्तिष्ककी अभ्यस्त अवस्था ही बालकको सबसे अधिक प्रभावित करती है। हां, गर्भके नव महीनेमे भी बहुत कुछ किया जा सकता है, परन्तु उससे भी अधिक उन वर्षोंमे किया जा सकता है जो उसके पहले बीत गये होते हैं।

पैतृक गुणोका उल्लेख करते हुए और मनकी नैसर्गिकतापर सन्देह प्रकट करनेवालोका प्रतिवाद करते हुए हेनरी ड्रामण्ड अपने एसेण्ट आफ मैन नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—"माता यदि अपने शिशुके मुखड़ेको देखकर यह कल्पना करे, कि यही ईश्वरको सदेह मूर्त्ति है, और इसके शरीरमे उसी भगवानकी श्वासा चलती है, तो उसकी कल्पनामें किञ्चित् भी झूठका लेश नही हैं, परन्तु साथही अपने शिशुको देखनेपर उसके मनमे यह भी भाव अवश्य उठेगा, कि यह मुखड़ा किसका है, उसीका तो है। काली काली भौंह भी उसीकी है। भौंहोके नीचे अभिमान, तिरस्कार और घृणाका जो भाव झलकता है वह किसका है? हाय हन्त! यह भी उसीका है। इसके बाद ज्यो ज्यो वर्ष बीतने लगते है और शिशुकी मुकुलित कली खिलने लगती हैं, त्यो त्यो उसको प्रत्यक्ष होने लगता है, कि इस बालकके सभी

चित्र नं० ३०

तीन मासका भ्रूण।

[देखो पृष्ठ १००]

हाव भाव, संकेत और लक्षण उसीके दिये हुए है! परन्तु यह लक्षण उसने कहांसे पाये थे? अपनी मांसे। उसकी मांको कहांसे मिले थे? उसकी भी मांसे।"

कहनेका तात्पर्य यह है, कि बच्चोंको रूपरंग और गुण अवगुण आदि सभी बाते अपनी माताकी ओरसे उत्तराधिकारमें मिलती हैं। मातामें जो कुछ भलाई या बुराई होती है, वह ज्योकी त्यो बच्चेमे उतर आती है। माताये इस रहस्यको नहीं जानती, अतः वे अपने बच्चोंको अच्छा दान नहीं दे पातीं। यदि इस रहस्यको हृदयंगमकर वे अपने दूषणोको दूर करनेकी चेष्टा करें, तो उनके बच्चे भी उन बुराइयोसे बहुत कुछ बच सकते हैं।

यह असम्भव है, कि कोई मनुष्य अपने पूर्वजोंके कुलक्षणोंसे छुटकारा पा जाय या माता पितासे मिले हुए काले धब्बोंको अपने चेहरे या खूनसे उठा दे। ऐसा प्रायः देखनेमें आता है, कि एक ही परिवारके कितने ही लड़कोमे भिन्न भिन्न प्रकारके गुण अपने भिन्न भिन्न पूर्वजोंके पाये जाते है और बहुत समय ऐसा भी देखा जाता है, कि कोई विशेष अवगुण सिलसिलेसे वंशके किसी विशेष सदस्य—जैसा बड़ा या छोटा पुत्र—के साथ ही चला आता है और परिवारके अन्यान्य सदस्य उससे बिल्कुल

बचे ही रहते हैं। कभी कभी हमलोग अपने सगे साथीके स्वभावमें कोई परिवर्त्तन देखते हैं, तो कहते हैं, कि इसपर किसीकी छाया पड़ गयी है। मनुष्य घड़ी घड़ी अपने कितने ही पूर्वजोंके स्वभावोंका अनुसरण करता रहता है। मानो आठ दस पूर्वज अपना स्वभाव और गुण लेकर बराबर मनुष्यके शरीरमें बारी बारीसे अपना चक्कर लगाया करते हैं और उसके जीवनकी रागिनीमें नये नये सुर भरते रहते हैं। सारांश यह कि मनुष्यका वंशगत स्वभाव दुरतिक्रमणीय होता है, नहीं तो जुलाहा भी लोहारका काम कर सकता था, और लोहार भी पद्य रचना कर सकता था।

उत्तराधिकारका प्रभाव जैसे शिशुकी शारीरिक और मानसिक अवस्थापर पड़ता है, उसी प्रकार उसके अधः-पतनपर भी वही परिणाम और प्रभाव पड़ता है। कोई भी व्यक्ति विशेष जो संसारमें आता है, वह कभी अपने सगे सम्बन्धियोंसे परित्यक्त होकर अकेला नहीं होने पाता बल्कि वह स्वजनोंकी एक ऐसी लम्बी जंजीरसे बंधा रहता है, जिसका समयके प्रभावसे कहीं ओरछोर ही नहीं मिलता। उस जंजीरकी कड़ियां एक ओर अतीतमे लोप होती रहती हैं और दूसरी ओर भविष्यके गर्भसे निकल कर उत्तराधिकार सूत्रसे जुड़ती रहती हैं। यदि मनुष्य

अच्छे और योग्य वंशमें उत्पन्न होता है, तो वह स्वभावतः कुछ ऐसे संगठित गुणका अधिकारी होता है, जो उसके जीवन-संग्रामको सफलतापूर्वक परिचालित करनेमें सहायक होते हैं। परन्तु इसके विपरीत यदि वह उस अध:पतित श्रेणीसे निकलता है, जो रोग, शक्ति और असभ्यताके अन्धकारमें गिरी हुई होती हैं, तो उसके लिये जीवनमे सफलता प्राप्त करनेकी कोई भी पूंजी नहीं रहती।

गर्भ-काल

बच्चा जितने समयतक गर्भमे रहता है, उतने समयको गर्भकाल कहते हैं। साधारणतया लोग इसे नव मासका मानते हैं, परन्तु वास्तवमे यह नव महीनेसे कुछ अधिक दिनोंका होता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके मतानुसार ४० सप्ताह किंवा २८० दिन बच्चा गर्भमें रहता है। परन्तु गर्भसंचारका दिन ठीक ठीक मालूम न होनेके कारण हिसाब ठीक नहीं उतरता, अतः अनेक बालकोंका जन्म दो एक सप्ताहके पहले और अनेक बालकोंका दो एक सप्ताहके बाद भी होता है।

हमारे यहां वैद्यक और कामशास्त्रमें स्त्रियोंका स्वाभाभाविक ऋतुकाल १६ दिनोंका माना गया है। (देखिये दाम्पत्य-विज्ञान, दसवां अध्याय) इसमेंसे चार दिन ऋतुस्राव होता है अतः बहुधा गर्भस्थिति नहीं होती। इसके

बाद बारह दिन गर्भसंचार होनेकी सम्भावना रहती है। पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस बातको स्वीकार करते हैं। उनका कथन हैं, कि ऋतुस्राव होनेके बाद जो डिम्ब गर्भाशयमें आते हैं, वे प्रायः वहां आठ दस दिन तक ही जीवित रहते हैं। इसके बाद वे चेतना रहित हो जाते हैं, अतः गर्भसंचार बहुधा इन्हीं आठ दस दिनोंमें होता है। किन्तु इसके साथ ही उनका यह भी कहना है, कि जो डिम्ब ऋतुस्राव होनेपर गर्भाशयमें आते हैं, वह कभी कभी ऋतुस्रावके चार पांच दिन पहले भी उतर आते हैं, अतः उस अवस्थामें भी पुरुषका योग होनेपर स्त्रियां गर्भवती हो जाती हैं।

अधिकांश पाश्चात्य वैज्ञानिक यद्यपि गर्भकाल २८० ही दिनका मानते हैं, परन्तु हिसाब लगानेके समय उनमेंसे बहुत रजस्राव बन्द होनेके दिनसे हिसाब लगाते हैं और बहुतसे तीन दिन अधिक मिलाकर ऋतुस्राव आरम्भ होनेके दिनसे हिसाब जोड़ते हैं। हिसाब जोड़नेका सबसे सहज तरीका उन्होंने यह निकाला है, कि जिस तारीखको ऋतुस्राव आरम्भ हुआ हो, उसमें ७ दिन मिलाकर नव महीने जोड़ने या ३ तीन महीने घटानेसे ठीक २८३ दिन आते हैं। इसमेंसे तीन दिन वे ऋतुस्रावके घटा देते हैं और चौथा दिन गर्भसञ्चारका मानकर उसी दिनसे २८० दिनका हिसाब

जोड़ते हैं। यदि गर्भकालमे फरवरी महीना आता है, तो दो दिन अधिक मिला लेते हैं, क्योंकि वह २८ ही दिनका होता है। हर चौथे साल फरवरीमे २९ तारीखे होती है अतः उस साल केवल एक ही दिन अधिक जोड़ते हैं। *
मान लीजिये, कि एक स्त्री १० मार्चको रजस्वला हुई और बादको वह गर्भवती हो गयी, तो उसके प्रसवकालका हिसाव इस तरह लगाना होगाः—१० मार्चमे सात दिन मिलानेसे १७ मार्च हुआ। १७ मार्चमेसे ३ महीने घटाने या ९ महीने मिलानेपर १७ दिसम्बरका दिन निकला। यही उसके प्रसवका दिन समझना चाहिये। इसी तरह ५ जनवरीको रजस्वला होनेवाली स्त्रियोंका प्रसव दिन १२ अक्टोवर होना चाहिये, परन्तु वीचमें फरवरी महीना पड़ता है, इसलिये उसमें २ दिन अधिक जोड़ने होंगे फलतः उनके प्रसवका दिन १४ अक्टोवर होगा।

परन्तु गर्भसंचारका दिन ठीक मालूम न होनेके कारण यह हिसाव सच्चा नहीं उतरता। बच्चोंका जन्म उस

* जिस साल फरवरीमें २९ तारीखे होती हैं उस सालको अंगरेजीमें (Leap year) लीप इयर कहते हैं। जिस सनकी सख्याको चारसे भाग देनेपर शेप कुछ भी न बचे वह लीप इयर होता है। जैसे कि १९२४, १९२८, १९३२, १९३६, इत्यादि।

तारीखके दस पांच दिन पहले भी होता है और बादको भी। अधिकांश बच्चे २७४ से लेकर २८० वें दिनके बीच हीमें भूमिष्ठ होते हैं। इसलिये २८० वे दिनकी अपेक्षा ४० वे सप्ताहको प्रसवकाल समझना अधिक अच्छा है।

पाश्चात्य डाक्टरोंने यह समय निश्चित करनेके लिये हजारो स्त्रियोंका हिसाव रक्खा है और अनेक प्रकारसे जांच की है, किन्तु फिर भी वे इस सन्दिग्ध समयके अतिरिक्त कोई निश्चित समय नहीं वतला सके। इसका प्रधान कारण गर्भ संचारके दिनका ठीक ठीक न मालूम होना ही है। यदि गर्भसंचारका दिन स्थिर करनेका कोई उपाय होता, तो प्रसवका दिन भी पहलेसे ही वतलाया जा सकता। इङ्गलैण्डके एक डाक्टरने एक वार ११४ बच्चो-का हिसाव रक्खा था। किस सप्ताहमे कितने बच्चे उत्पन्न हुए इसका व्यौरा वह इस प्रकार देते हैं :—

३	बच्चे	३७	वे	सप्ताहमें
१३	,,	३८	,,	,,
१४	,,	३६	,,	,,
३२	,,	४०	,,	,,
२२	,,	४१	,,	,,
१५	,,	४२	,,	,,

१० बच्चे	४३ वें सप्ताहमें	
४ "	४४ "	"

इस ब्यौरेसे भी यही मालूम होता है, कि अधिकांश बच्चे ४० वें सप्ताह अर्थात् २७४ से २८० दिनोंके बीचमें ही उत्पन्न होते हैं। जिन्होंने अधिक दिन लिये, संभव है कि उनके गर्भाधानका दिन वास्तविक दिनके बहुत पहले मान लिया गया हो। इसके अतिरिक्त माता पिता और गर्भस्थ बच्चेकी शारीरिक अवस्थाके कारण भी कुछ दिनोंका अन्तर पड़ जाना असम्भव नहीं है।

यह तो हुई आधुनिक डाक्टर और पाश्चात्य वैज्ञानिकों-की बात। अब हम उन ऋषिमुनियोंके कथनपर विचार करेंगे, जो जंगलमें रहते थे, कन्द मूल खाते थे और जटावल्कल धारण करते थे। उनके पास न तो आजकलके समान यन्त्र ही थे,न अन्यान्य साधन ही। फिर भी हम देखते हैं, कि वे वास्तविक सत्यतक अच्छी तरह पहुंच गये हैं। उनका कथन है, कि जिस नक्षत्रमें गर्भाधान होता है, नव महीनेके बाद ठीक उसी नक्षत्रमें बच्चेका जन्म होता है। माताके किसी रोग या अन्य कारणसे समयके पहले ही जन्म हो जाय यह एक अलग बात है। अन्यथा बच्चोंका जन्म उपरोक्त अवधिमें ही होता है।

पञ्चाङ्ग उलट पलट कर हमने इस कथनकी सत्यतापर विचार किया, तो हमें मालूम हुआ कि प्रायः नव महीने और नव दिनमें उस नक्षत्रकी पुनरावृत्ति होती है। हमने देखा कि कार्त्तिक वदी १ को यदि अश्विनी नक्षत्र है, तो वह नव महीनेके बाद १ बदले ८-६ दिन बाद अर्थात् श्रावण वदी नवमी या दसमीको पड़ता है। इस तरह नक्षत्र और देशी महीनोंके हिसाबसे बच्चेका जन्म ६ महीने ६ दिनमें होता है। यदि प्रत्येक मासको हम ३० दिनका मान ले तो यह समय २७६ दिनका होता है। परन्तु हम लोगोंके महीने पूरे ३० दिनके नहीं होते। उनमे तिथियोंकी घटा बढी हुआ करती है। अंग्रेजी तारीखसे मिलान करनेपर हमने देखा, कि यह समय प्रायः २७४ दिनका ही रह जाता है। इससे हम इस परिणामपर पहुचे कि जिस नक्षत्रमें गर्भ-संचार होता है, नव महीनेके बाद ठीक उसी नक्षत्रमें जो साधारणतया ६ महीने और ६ दिनमें और अंग्रेजी तारीखों-के हिसाबसे करीब २७४ दिनोंमें पड़ता है—बच्चेका जन्म होता है। इससे हमने यह निष्कर्ष निकाला, कि गर्भकाल किंवा गर्भकी अवधि २७४ दिनकी है। रोग या किसी अन्य कारणसे इसके पहले जन्म होना सम्भव हैं, परन्तु यदि इससे अधिक समय लगे तो उसे हिसाबकी भूल समझना चाहिये।

हम पहले ही कह चुके, कि हमारे यहां स्वाभाविक ऋतुकाल १६ दिनका माना गया है। प्रथम चार दिन ऋतुस्राव होता है, अतः उन दिनों सहवास करना मना है और सहवास करनेपर भी प्रायः गर्भसंचार नहीं होता। बादके बारह दिन गर्भ संचार होनेका समय है। यदि मान लिया जाय, कि किसी स्त्रीको अश्विनी नक्षत्रमें ऋतुदर्शन हुआ और उसने चौथे दिन अर्थात् रोहिणी नक्षत्रमे स्नान कर सहवास किया और उसी दिन गर्भ रह गया, तो वह नव महीने नव दिनमे जब रोहिणी नक्षत्र पड़ेगा तब सन्तान प्रसव करेगी; परन्तु गर्भ-संचारका दिन आसानीसे नहीं मालूम किया जा सकता। इसलिये उचित यह है, कि जिस दिन स्त्री स्नानकर शुद्ध हो उसी दिनको गर्भ संचारका दिन मानकर हिसाब रक्खे। यदि गर्भस्थिति दो चार दिन बाद होगी, तो बच्चेका जन्म भी दो चार दिन बाद होगा।

इस तरह हम देखते है, कि गर्भकी अवधिके सम्बन्धमें हमारे ऋषिमुनि और पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रायः एक ही स्थानमें जा पहुंचे है। बल्कि ऋषिमुनियोंका सिद्धान्त वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तसे कहीं अधिक प्रमाणिक है, क्योंकि वे इस बातको डंकेकी चोट कहते हैं, कि जिस नक्षत्रमे गर्भा-

धान होगा उसी नक्षत्रमे बच्चेका जन्म होगा और वह नक्षत्र प्राय: नव महीने नव दिनमे पडेगा।

यहां हम एक बातकी ओर अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना परम कर्त्तव्य समझते हैं। हमारे यहां अमुक नक्षत्रमे उत्पन्न होनेवाली सन्तान बुरी और अमुक नक्षत्रमें उत्पन्न होनेवाली सन्तान अच्छी समझी जाती है। जब यह बात निश्चित हैं कि जिस नक्षत्रमे गर्भ रहता है उसी नक्षत्रमें बच्चेका जन्म होता हैं, तब माता पिता चाहे तो निषिद्ध नक्षत्रोंको बचाकर किसी बलिष्ठ नक्षत्रमें गर्भाधान कर सकते हैं ताकि बच्चा अच्छे ही नक्षत्रमे उत्पन्न हो।

प्रसूति-गृह

दुर्भाग्यवश यह बड़े ही खेदकी बात है, कि हमारे देशमें प्रसवके लिये गन्दासे गन्दा और बुरासे बुरा स्थान पसन्द किया जाता है। लोग समझते हैं, कि प्रसूतिकाको दस पांच रोज कहीं गुजर करना है, इसलिये जो स्थान किसी काममें न आता हो, वह उसके लिये अलग कर देना चाहिये। फलतः मकानके किसी कोनेमें, अंधेरी कोठड़ी या किसी ऐसे ही स्थानमे प्रसूतिकाकी खटिया डाल दी जाती है। लोगोंको इस बातका पता ही नहीं, कि वास्तवमें प्रसूति-गृह कैसा होना चाहिये और इसीलिये प्रतिवर्ष लाखो बच्चे और अभागिनी प्रसूतिकायें मृत्यु मुखमे पतित होती हैं। दुर्भाग्यवश उन्हें इस विषयकी कोई शिक्षा भी नहीं देता। यदि उन्हें इस सम्बन्धकी मोटी मोटी बातें भी समझा दी जायँ, तो हजारों बच्चे और उनकी माताओंके प्राण बच

सकते हैं, क्योंकि अज्ञानतामे चाहे जो हो जाय, जान बूझकर हम नहीं समझते, कि कोई मनुष्य अपनी बहू बेटी या स्त्री और उनके बच्चोंको बिना मौत मरने देगा। प्रसूतिकाके लिये अच्छे प्रसूति गृहका प्रबन्ध न करना, मानो उसे मृत्युके हाथमें सौंपना है। जिन स्त्रियोंके लिये अच्छे प्रसूति गृहका प्रबन्ध नहीं किया जाता, वे और उनके बच्चे प्रसूति-गृहसे जीते भले ही निकल आये, पर स्वस्थ और निरोग अवस्थामे नहीं निकलते। कोई न कोई रोग उन्हें अवश्य ही लग जाता है। इसलिये प्रसूतिकाके लिये निम्नलिखित सूचनाओंके अनुसार जहांतक हो, अच्छे से अच्छे प्रसूतिका गृहका प्रबन्ध करना चाहिये।

प्रसूतिकागृहके लिये मकानमें जो सबसे अच्छा कमरा हो, वही पसन्द करना चाहिये। इसकी लम्बाई कमसे कम आठ दस और चौड़ाई पांच छः हाथ होनी चाहिये। इस कमरेमें सबसे पहले यह बात देखनी चाहिये, कि वह खूब मजेका हवादार हो, चारों तरफ या कमसे कम दो तरफ आमने सामने खिड़कियां रहनेसे हवा अच्छी तरह आ सकती हैं। प्रसूतिकाको सर्द हवासे हानि पहुंचती है, इसलिये यदि हवा सर्द हो, तो खिड़कियां बन्द रखना चाहिये और केवल झंझरियोंसे ही शुद्ध हवा आ सके ऐसा

प्रबन्ध करना चाहिये। यदि हवा बहुत ठंढी या सर्द न हो, तो खिड़कियां खुली रखनी चाहिये, परन्तु प्रसूतिकाको इस तरह सुलाना चाहिये, कि उसके शरीरमें हवाका सीधा झोंका न लग सके। इस तरह हवा लगनेसे प्रसूतिकाको हानि पहुंचती है।)

हवाके समान ही प्रसूतिका गृहमें प्रकाश भी आना चाहिये। प्रकाश न आनेसे प्रसूतिका और बच्चा—दोनों अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। जाड़ेके दिनोंमें पूर्वकी ओर दरवाजेवाला कमरा पसन्द करनेसे प्रकाश भी अच्छा आता है और सर्दी भी कम लगती है। अच्छी तरह हवा व प्रकाश न रहनेके कारण प्रसूतिगृहमें अनेक बच्चे बीमार पड़ते हैं और मर भी जाते हैं। आयर्लेण्डके डब्लिन शहरमें केवल प्रसूतिकाओंके ही लिये एक अस्पताल बनाया गया था। उसका नाम था—"डब्लिन लाइङ्ग इन हास्पिटल"। वह जब पहले पहल बना, तब उसमे उत्पन्न होनेवाले अधिकांश बच्चे अपने जन्मके प्रथम सप्ताहमें ही मर जाते थे। इस मृत्युका कारण खोज निकालनेके लिये बड़े-बड़े डाक्टरों की एक कमीटी बैठाई गयी। डाक्टरोंने भली-भांति जांचकर रिपोर्ट की कि अस्पतालके प्रसूतिका गृहोंमे भली-भांति हवा नहीं आ सकती, इसी लिये अधिक बच्चे मरते हैं।

डाक्टरोंकी सिफारिश ध्यानमें लेकर जब अस्पतालका वह दोष दूरकर दिया गया, तब बच्चोंका मरना बिलकुल कम होगया। प्रसूतिका गृहके लिये हवा और प्रकाश कितने आवश्यक हैं, यह बतलानेके लिये यही एक उदाहरण पर्याप्त है। हमलोगोंके यहां खिड़की रखना तो दूर रहा, चारो तरफ पड़दे लगा लगाकर प्रसूतिका गृह गुफाके समान अन्धकारमय बना दिया जाता है। यदि कहीं प्रकाश आने लायक छेद होता है, तो उसे भी चिथड़े ठूंसकर बन्द कर दिया जाता है। प्रसूतिका-गृहको इस तरह हवा और प्रकाश रहित करनेकी प्रथा बहुत ही शोचनीय और निन्दनीय है। जो लोग प्रसूतिका और अपने बच्चोंका कल्याण चाहते हों, उन्हें यह प्रथा तुरन्त ही बन्द कर देनी चाहिये। क्योंकि हवा और प्रकाश यह मानव-जीवनके लिये अन्न और जलसे भी अधिक उपयोगी पदार्थ हैं और एक स्वस्थ मनुष्यके लिये इनकी जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक नवजात शिशु और प्रसूतिकाके लिये यह आवश्यक हैं।

हवा और प्रकाशके बाद प्रसूतिका-गृहकी जमीन या फर्श देखना चाहिये। गीली, गन्दी, सीलवाली और पचपची जमीनवाले प्रसूतिगृहमें बच्चोंको रखनेसे उन्हें ऐसा भयंकर रोग हो जाता है, कि वे देखते ही देखते चल बसते

हैं। लोग कहते हैं, कि भूत या चुड़ैलने उसे मार डाला, परन्तु बात कुछ दूसरी ही होती है। जो बच्चा माताके पेटमें पेटकी गरमीमें नव महीने रहता है, वह एकायक इतनी सर्दी कैसे बरदाश्त कर सकता है। गीली, गन्दी और सीलवाली जमीनपर सोनेसे बड़ी उम्रके लोगोंको भी जब सर्दी लग जाती है, जुखाम व खांसी हो जाती है, हाथ पैर दर्द करने लगते हैं, गला बैठ जाता है और बुखार आ जाता है, तब फूल जैसे कोमल बच्चे उस सर्दीमे निरोग कैसे रह सकते हैं?

परन्तु लोग इन बातोंपर ध्यान नहीं देते। उनसे हजार बार कहो वे नहीं सुनते। आँखसे देखते हैं, फिर भी नहीं मानते। उनके मतानुसार बापदादेके समयसे जिस कोठड़ी या कोनेमे प्रसव कार्य होता आया है, वही स्थान उसके लिये सर्वोत्तम है। स्थान या रीत बदलना वे पाप समझते हैं। ऐसी अवस्थामे बच्चों या प्रसूतिकाओंके कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

संसारमें केवल बातोंसे काम नहीं चलता। हमलोग बातें तो बड़े-बड़े विद्वानोंकी तरह करते हैं, परन्तु हमारे आचरण राक्षसोंके समान होते हैं। गीली, और गन्दी गोबरी जमीनमें बच्चेको रखनेसे वह मर जायगा, यह जानते

चित्र नं० ३१

अंकोसे भ्रूणोकी आयु सप्ताहोंमे बतलाई गयी है।
१५ के सामनेवाला चित्र १५ सप्ताहके भ्रूणका है।

[देखो पृष्ठ १०१]

हुए भी यदि हम अच्छे प्रसूतिगृहका प्रबन्ध न करें तो निःसन्देह हम राक्षसोसे भी बढ़कर क्रूर और निर्दय हैं। जिस बहू, बेटी या स्त्रीको गर्भ रहते ही घरभरके लोग आनन्द मनाने लगते हैं, नव दस महीनेतक जिसकी प्राणपणसे रक्षा करते हैं, उसे प्रसवके समय ऐरागैरा प्रसूतिका गृह देकर मानो उसे वे मृत्युके हाथमें सौंप देते हैं। इससे अधिक नादानी और दूसरी क्या हो सकती है?

यदि हम यह कहें, कि लोग यह बात जानते ही नहीं—करें कैसे, तो वह भी ठीक नहीं है। हमलोग सदा हवा और प्रकाशवाले कमरोंमे ही रहना पसन्द करते हैं। गद्दे पर गद्दे बिछाकर जबतक बिछावन गुदगुदा नहीं होता, तबतक नींद नहीं आती। कोई कभी गीली, गन्दी और कालकोटड़ी समान कोठडियामे नहीं सोता। ऐसे स्थानमें सोनेसे जवान और स्वस्थ मनुष्य भी रोगी हो जाता है, फिर भला उन प्रसूतिका और बच्चोंने क्या अपराध किया है, जो उन्हें उनकी विषमावस्थामे—उनके जीवनको सबसे नाजुक घड़ीमें—ऐसे निकम्मे स्थानमें डाल दिया जाता है?

यह तो हुई प्रसुतिगृह और उसकी जमीनकी बात, अब उन कपड़ोकी बात सुनिये, जो हमारे यहां प्रसूतिकाओंको प्रसवके समय ओढने व बिछानेके लिये दिये जाते हैं। हम-

लोग जरा भी जाड़ा या सर्दी हुई, तो कपड़ेके ऊपर कपड़े पहनते चले जाते हैं, रुईकी बगलबन्दियाँ या कोट वास्कोट पहनते हैं, गलेमें मफलर लपेटते हैं, शिरमें कनटोप चढ़ाते हैं और ऊपरसे शाल दुशाला ओढ़ते हैं, परन्तु अभागिनी प्रसूतिकाओंको गन्देसे गन्दे, न जाने कबके फटे पुराने गुदड़े ओढ़ने व बिछानेको देते हैं। ऐसे कपड़ोंसे प्रसूतिका और बच्चोंका शीत दूर नहीं होता। काफी कपड़े न होनेके कारण, यदि एक कपड़ा गीला हो जाता है, तो उसीपर वे दोनों पड़े रहते हैं। क्या कोई अपने हृदयपर हाथ रख कर कह सकता है, कि हमारे यहांकी अधिकांश प्रसूतायें ऐसी दुरावस्थामें समय नहीं बितातीं? हमारे समाजकी दुर्गतिका यह एक नग्नचित्र है। इसमें लेशमात्र भी अति-शयोक्ति नहीं है। लोग समझते हैं, कि प्रसूतिकाको जो कपड़े दिये जायँगे वह सब अशुद्ध हो जायँगे, इसलिये उनको इस तरह बिना मौत मारा जाता है। जलसे सब चीजें शुद्ध होती हैं। प्रसूतिकाको दिये हुए कपड़े भी धोधाकर फिर काममें लाये जा सकते हैं, और यदि न भी लाये जा सकें, तो कपड़ोंके मोहसे प्रसूतिका व बच्चोंका प्राण लेना कहांका न्याय है? यदि तुम प्रसूतिकाके लिये अच्छे प्रसूतिगृह और कपड़ोंका भी प्रबन्ध नहीं कर

सकते—तुममें इतना भी करनेका सामर्थ्य नहीं है, तो भूल कर भी विवाह न करो। और यदि विवाह कर चुके हो, तो आजन्म योगीयती की तरह ब्रह्मचर्य पालन कर जीवन विता दो—बच्चे न पैदा करो, क्योंकि विना इनके न जाने कितने बच्चे और उनकी मातायें मृत्युमुखमें पतित हो जाती हैं।

बच्चे, आखिर बच्चे हैं। यदि इस तरह सर्दी व जाड़े में वह छोड़ दिये जायँ तो कैसे बच सकते हैं? जाड़े के दिनों में अनेक बच्चे शामको भले चंगे दिखाई देते हैं, परन्तु रातको सर्दी लग जानेके कारण सवेरा होते होते ठंढे हो जाते हैं। लोग इसका वास्तविक कारण नहीं जानते इस-लिये भाग्यको कोसते व दोष देते हैं, परन्तु इसमें भाग्यका नहीं, वल्कि उनका अपना ही दोष होता है। अपने हाथसे ही वे अपने वंशवृक्षपर कुठाराघात करते हैं।

पाश्चात्य देशोमें प्रसूतिगृह और प्रसूतिकाके लिये ओढ़ने विछाने आदिका ऐसा सुन्दर प्रवन्ध किया जाता है, कि यदि प्रसूतिकाके वगलमें नवजात शिशु न पड़ा हो, तो यह जानना भी कठिन हो जाय, कि यह स्त्री प्रसूतिका है। जो लड़का अन्धेरे घरका उजाला और वंश-रक्षक समझा जाता है, उसके उत्पन्न होनेसे स्थान अपवित्र हो जाता

है यह बड़ी ही विचित्र समझ है। घरबार और कपड़े लत्ते बालबच्चोंहीके लिये तो होते हैं। यदि यह उनके काम न आ सकें, तो फिर उनका रखना ही व्यर्थ है।

उचित यह है, कि घरमें जो अच्छेसे अच्छा, हवा, उजाला और धूपके आवागमनवाला तथा सील या सर्दी रहित सूखी जमीनवाला खूब साफसूफ कमरा हो, उसीमें गर्भवतीको प्रसव कराना चाहिये। मैले कुचेले और दूषित वायुवाले स्थानमें प्रसूतिकाको भूल कर भी न रखना चाहिये। प्राचीनकालमें भी यहां अच्छे ही स्थानमें प्रसूतिकाको स्थान दिया जाता था। महाभारत और बाणभट्टकी कादम्बरीमें इसके उदाहरण भी दृष्टिगोचर होते हैं। प्रसूतिका गृहका दूषित होना प्रसूतिका व बच्चेके लिये बड़ा ही हानिजनक है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको इस सम्बन्धमें यथासंभव सावधान रहना चाहिये।

१७
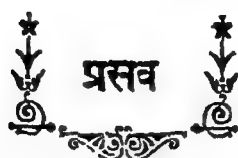
प्रसव

स्वस्थ और परिश्रमी स्त्रियोंके लिये प्रसव एक साधारण कर्म है। जिस तरह मलमूत्र विसर्जन करनेमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार नैसर्गिक जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्रियोंको भी प्रसवके समय किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता। परन्तु जिन स्त्रियोंकी जीवनचर्या अनियमित होती है, जो दुर्व्यसनमें लिप्त रहती हैं, एवम् जो अपने आहार विहारपर नियन्त्रण नहीं रखतीं उन्हे कुछ कष्ट अवश्य होता है। दाई और डाक्टरोंकी सृष्टि उन्हींके लिये हुई है, बड़े बड़े अस्पताल उन्हींके लिये बनाये गये हैं और नानाप्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार भी मानो उन्हींके लिये हुआ है।

डाक्टर ट्रालका कथन है, कि बुरी आदतों और विकृत अवस्थामें ही प्रसव वेदनाका होना सम्भव है, अन्यथा

प्रसव वेदना होनेका कोई कारण नहीं है।* यह कथन हमें उस समय सत्य मालूम होता है, जब हम मजूर किंवा कृषकोंको स्त्रियोंको विना किसी कष्ट और दाई डाक्टरोंकी सहायताके ही प्रसव करते देखते हैं। देहातोंमें, देशके उन भागोंमे जहां ऐसे लोग रहते हैं, जिन्हें हम "जंगली" कहते हैं, आसामके चाय-वगीचोंमें और श्रमजीवी सभी जातियोंमे हम ऐसे अनेक उदाहरण अपनी आंखोंसे देख सकते हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश शहरोंमें, सभ्य और उन्नत कहलानेवाली जातियोंमे और उन लोगोंमे, जिनका जीवन कृत्रिम, आडम्बरपूर्ण, विलासमय और अनियमित होगया है, यह बात नहीं दिखाई देती। इसका प्रधान कारण हमलोगोंकी अज्ञानता और अनियमित जीवनचर्याके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

आजकल सौमेंसे शायद ही दस स्त्रियां विना किसी कष्टके प्रसव करती हो। शेष स्त्रियोको कुछ न कुछ कष्ट अवश्य होता है। सौमेंसे पचीस और शायद इससे भी अधिक स्त्रियोंकी जान प्रसवके समय खतरेमें आ पड़ती है और प्रतिशत दस

---

* "And there is certainly no reason, except in abnormal habits and conditions, why parturition should be painful"—Dr Trall

पांच स्त्रियां, ऐसी मन्दभागिनी होती हैं, जिन्हें प्रसवके समय अपने और अपने बच्चोंके जीवनसे हाथ धोना पड़ता है। यदि आप जनसंख्याका विवरण (Census Report) देखेंगे, तो आपको मालूम होगा, कि अधिकांश स्त्रियां अपने यौवनकालमे ही स्वर्ग-यात्रा करती हैं। विचार करनेपर मालूम होता है, कि उनकी इस असामयिक मृत्युका कारण उनका प्रसव और तद्‌जनित रोग ही हैं। ऐसी अवस्थामें लोगोंको जनन-विज्ञानसे—उस विज्ञानसे जिसके कारण वे अपने जीवनको नैसर्गिक बनाकर प्राणघातक कष्टोंसे परित्राण पा सकते हैं—अवगत करना परम कर्त्तव्य है। हमारा विश्वास है, कि हमलोग जो अनर्थ करते हैं, वह केवल अज्ञानताके ही कारण करते हैं। यदि हमें वास्तविक बातोंका ज्ञान हो, तो हम अपने जीवनको ऐसे सांचेमें ढाल सकते हैं, जिससे हम असमयमें ही कालके ग्रास न हों।

हाँ, तो हम यह कह रहे थे, कि शहरमें रहनेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा ग्रामीण स्त्रियोंको प्रसव अधिक सुगमतापूर्वक होता है। शहरकी स्त्रियां अपनी चंचलता और बुद्धिमत्ताके कारण बुद्धिमान बच्चोंको जन्म देती हैं, परन्तु वे उनकी अनियमित जीवनचर्या और अस्थिर आचार विचारके कारण, बहुधा रोगी, प्रपञ्ची और दुराचारी होते हैं। ग्रामीण

स्त्रियां सुगमतापूर्वक प्रसव करती हैं और हृष्ट-पुष्ट तथा निरोग बच्चोंको जन्म देती हैं। उनके बच्चे वुद्धिके मोटे परन्तु दुराचार या दुर्गुणसे रहित होते हैं। इन सब बातोंपर विचार करनेसे हम इस सिद्धान्तपर पहुंच सकते हैं, कि जीवनचर्या जितनी ही सादी होती है, प्रसव कष्ट उतना ही लाघव होता है और जीवनचर्या जितनी ही अनियमित होती है, प्रसव कष्ट उतना ही अधिक होता है।

मल और मूत्र विसर्जन स्वाभाविक क्रियायें हैं—प्राकृतिक वेग हैं। जिस प्रकर इनके त्यागमे मनुष्यको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार प्रसवमें भी कष्ट न होना चाहिये। परन्तु रुग्नावस्थामे—व्याधि विशेषके कारण जिस प्रकार मल और मूत्र विसर्जनमें मनुष्यको कष्ट होता है, उसी तरह यदि प्रसव वेदना भयंकर रूप धारण करे, तो उसे भी रोग ही समझना चाहिये। विना किसी भूल या प्रकृति विरुद्ध आचरणके ऐसा नहीं होता।

मानव समाज नैसर्गिक जीवन और स्वास्थ्यवर्धक दिन चर्यासे जितना ही दूर होता जा रहा है, उतना ही उसके जीवनकी विडम्बनायें बढ़ती जा रही हैं। प्रसव वेदना भी एक प्रकारकी विकृति है और हमलोगोंकी अनियमित

जीवनचर्या पर निर्भर करती है। प्रसव वेदना होना या न होना, कम या अधिक होना यह गर्भिणीकी शारीरिक स्थिति, गठन और पति पत्नीके आचरणपर निर्भर करता है। गर्भिणी-का शरीर जितना ही निरोग और गठित होता है, प्रसव वेदना उतनी ही कम होती है। इस पुस्तकके भिन्न भिन्न अध्यायोंमें गर्भिणी और पति पत्नीके लिये जो नियम अंकित किये गये हैं, उनके अनुसार आचरण करनेपर, हम नहीं समझते कि प्रसव वेदना किसीके लिये घातक सिद्ध हो।

बच्चा गर्भमें साधारणतया कितने दिन रहता है, यह हम पहले ही बतला चुके हैं। वह अवधि पूर्ण होनेके पहले ही प्रसूतिगृह, दाई तथा अन्यान्य आवश्यक चीजोंका प्रबन्ध करना चाहिये, ताकि समय उपस्थित होनेपर दौड़ धूप और हायहत्या न करनी पड़े। प्रसवके समय दौड़ धूप करना—आग लगनेपर कूआ खोदनेकी चेष्टा करना है।

दाई—हम लोगोंके यहां दाइयोंके सम्बन्धमें बड़ा अज्ञान फैला हुआ है। नाइन, चमारिन या डोमड़ोंकी स्त्रियां यह व्यवसाय करती है, परन्तु उन्हें अपने कर्त्तव्यका किञ्चित भी ज्ञान नहीं होता। गर्भिणीको सुगमतापूर्वक प्रसव करानेके लिये किस समय क्या करना चाहिये, किस समय किस तरह बैठाना या सुलाना चाहिये, प्रसव होनेपर

बच्चे व प्रसूताका किस प्रकार यत्न करना चाहिये, किस प्रकार नाल काटना चाहिये, किस तरह कमल गिराना चाहिये, प्रभृति बातोंके सम्बन्धमे वे कुछ भी नहीं जानतीं। फल यह होता है, कि प्रसव वेदना और अन्यान्य कष्टोंके कारण जितनी स्त्रियोंका शरीरान्त नहीं होता, उनसे दसगुनी स्त्रियोंका प्राणान्त उनके रोगोंका उपचार करनेवालोंकी अज्ञानताके कारण होता है। उनके उपचारोंसे रोग घटनेकी अपेक्षा और बढ़ जाता है।

यह बात हम इसलिये नहीं कह रहे, कि दाइयां अस्पर्श्या जातिकी होती है, बल्कि इसलिये कह रहे हैं, कि उन्हें अपने कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं होता। दाई चाहे जिस जातिकी हो, परन्तु वह ऐसी होनी चाहिये, जिसे अपने कर्त्तव्यका—प्रसूतिशास्त्रका सम्पूर्ण ज्ञान हो। प्रसवके समय प्रसूतिका-का प्राण दाईके हाथमें रहता हैं। वह चाहे तो उसे मार सकती हैं और चाहे तो जिला सकती है। यद्यपि यह ठीक है कि वे जान बूझकर किसीका प्राण नहीं लेतीं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उनकी अज्ञानता ही प्रसूतिकाके लिये घातक हो पड़ती हैं।

हमारे यहाँ शिक्षित दाइयोंका बड़ा अभाव है। बड़े शहरोंमें तो वे आसानीसे मिल जाती हैं, परन्तु देहातमें

रुपये पैसे खर्च करनेपर भी ऐसी दाइयां नहीं मिलतीं, जो अभागिनी प्रसूतिकाओंका कष्ट दूर कर सकें। हमने अपनी आँखों ऐसी अनेक घटनाये देखी हैं, कि कुछ गड़बड़ हो जानेपर स्त्रियां दो दो चार चार दिनतक पड़ी चिल्लाया करती हैं और अन्तमें प्राण तक खो देती हैं, परन्तु कोई ऐसी दाई नहीं मिलती, जो उनके प्राण बचा सके। हमारे देशमें सुशिक्षित दाइयोंकी बहुत ही आवश्यकता है और इसके लिये बहुत अच्छा हो, यदि लोग अपनी बहू बेटियोंको—खासकर उन बहू बेटियोंको जो विधवा हो जायें अथवा जो स्त्रियां अनाथ हों, उन्हें यह काम सिखाकर स्त्रियोंपर उपकार करनेके लिये छोड़ दें। गांवमें किसीके यहां भी आवश्यकता पड़नेपर यह बिना बुलाये और बिना कुछ लिये ही जायें और अपनी सेवा अर्पण करें। इससे उनका जन समाजमें सीमातीत आदर और ख्याति हो सकती है, यश मिल सकता है, और चाहें तो इससे वे अपना उदर-निर्वाह भी कर सकती हैं।

खैर, कहनेका तात्पर्य यह है, कि दाई ऐसी होनी चाहिये, जिसे अपने कर्त्तव्यका ज्ञान हो। यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है, कि बहुत बूढी दाईको कभी न पसन्द करना चाहिये। बूढी दाईको अनुभव तो अधिक अवश्य होता है,

परन्तु उसके शरीरमें फुर्ती नहीं होती। वह सब काम धीरे धीरे करती हैं। काम करते समय उसके हाथ पैर कांपते हैं, फलतः कोई काम ठीक समयपर और अच्छी तरह नहीं होता। युवा दाईको बुलानेसे इस प्रकार अनर्थ होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

प्रसूतिकाके संरक्षकोंको चाहिये, कि जिस दाईको बुलाना स्थिर करें, उसे प्रसव-समय उपस्थित होनेके पहले ही कई बार अपने यहां बुलाकर प्रसूतिकासे उसका परिचय करा दें। प्रसवके समय एकायक अपरिचित दाईको बुलानेसे प्रसूतिका लज्जाके कारण सकुच जाती है, इससे प्रसव कार्यमें बाधा पड़ती है। ऐसा न हो, इसलिये नवें मासका आरम्भ होते ही दाईको दो चार बार बुलाकर प्रसूतिकासे मेल मिलाप करा देना चाहिये। दाईके अति-रिक्त उन स्त्रियोंसे भी मेल करा देना चाहिये, जो कई बच्चोंकी माता हो चुकी हों, जो गर्भिणी स्त्रीपर प्रेम रखती हों, मधुर वचनों द्वारा मनोरञ्जन कर सकती हों और जिनका स्वभाव आनन्दी हो। ऐसी स्त्रियोंसे परिचय और मेल रहनेसे उनकी उपस्थितिसे प्रसवके समय प्रसूतिका लज्जित नहीं होती, बल्कि उसके चित्तको बहुत कुछ शान्ति मिलती है।

प्रसव चिन्ह—प्रसवका समय निकट आनेपर स्त्रियोंका

शरीर कुछ दुर्बल सा दिखाई देता है। गर्भ नीचेकी ओर खिसकनेसे पेट नीचेको लच पड़ता है और इससे गर्भिणीको कुछ आराम मालूम होता है। पहले श्वास लेनेमे उसे जो कष्ट होता था, वह अव नहीं होता। यह लक्षण देखते ही समझ लेना चाहिये, कि प्रसवकाल समीप है और अब इस कार्यमें चार छ'—ज्यादासे ज्यादा आठ दस दिनसे अधिक समय नहीं लगेगा।]

इसके बाद प्रसवकाल उपस्थित होता है और उस समय निम्नलिखित चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं :—

(१) मूत्राशय और वस्तीमे दाह होता है और मूत्राशय तथा अन्त्रावलीपर दवाव पड़नेसे गर्भिणीको बारं-बार दस्त और पेशाव करनेकी इच्छा होती है।

(२) जननेन्द्रियसे एक प्रकारका चिकना और सफेद द्रव निकलने लगता है और कभी-कभी उसमें रक्तविन्दु मिले हुए दिखाई देते हैं।

(३) गर्भिणीका जी मिचलाता है फलत. उसे उब-काइयां आती हैं और कभी कभी क़ुय भी होती है। यह लक्षण गर्भिणीके लिये श्रेयस्कर समझा जाता है, क्योंकि इससे गर्भाशयका मुंह खुलनेमें सहायता मिलती है और उसके कारण प्रसव कार्य्यमें सुविधा हो पड़ती है।

(४) कभी कभी गर्भिणी इस तरह कांप उठती है मानो उसे बड़ी ठंढ लग रही है, उसके दाँत भी कटकटाने लगते हैं, परन्तु उसे ठंढ नहीं लगती। यह केवल प्रसवकाल उपस्थित होनेके कारण होता है।)

प्रसव वेदना—न्यूनाधिक परिमाणमें उपरोक्त लक्षण दृष्टिगोचर होनेके बाद प्रसव वेदना आरम्भ होती है। प्रसव वेदना गर्भाशयकी मांसपेशियोंके सिकुड़नेके कारण उत्पन्न होती हैं। ज्यों ज्यो मांसपेशियां सिकुड़ती हैं त्यों त्यों गर्भाशयका मुंह खुलता जाता है। मांसपेशियोंकी यह प्रक्रिया लगातार किंवा अनवरत रूपसे नहीं होती। गर्भाशय पहले सिकुड़ता है और फिर कुछ देरके लिये ढीला पड़ जाता है। जिस समय सिकुड़ता है, उस समय पीड़ा उठती है, और जिस समय ढीला पड़ जाता है, उस समय पीड़ा शान्त हो जाती है।

यह पीड़ायें दो प्रकारकी होती हैं—सच्ची और झूठी। झूठी पीड़ा केवल पेट हीमें होती है, परन्तु सच्ची पीड़ा कमरसे आरम्भ होकर क्रमशः पेट और जंघाओंतक फैलती है। इसके अतिरिक्त सच्ची पीड़ाके समय प्रसवद्वारसे कुछ पानी भी निकलने लगता है और पेटपर हाथ रखनेसे गर्भाशय कठोर मालूम होता है। यह पीड़ा बड़ी तीव्र

और असह्य होती है। जो स्त्रियां आहार विहारपर नियन्त्रण नहीं रखतीं और अनियमित जीवन व्यतीत करती हैं, उन्हें इनके कारण बहुत ही कष्ट होता है, परन्तु जो स्त्रियां स्वस्थ और निरोग होती हैं, उन्हें अधिक कष्ट नहीं होता। पहलौठी स्त्रियोंको भी अन्यान्य स्त्रियोंकी अपेक्षा यह कष्ट अधिक मालूम होता है, क्योंकि उनके गर्भाशयका द्वार कठिन होनेके कारण उसे खोलनेके लिये मांसपेशियोंको बड़ा जोर लगाना पड़ता है, फलतः प्रसववेदना भी अधिक होती है। गनीमत यही है, कि यह वेदना रह रहकर होती है। यदि लगातार होती रहे और प्रत्येक वेदनाके बाद प्रसूतिका को शान्ति न मिले, तो निःसन्देह उसे प्राण धारण करना कठिन हो जाय।

प्रसव वेदना आरम्भमें बहुत धीमी मालूम होती है और आध या पौन पौन घण्टेके अन्तरसे होती है, परन्तु कुछ देरके बाद तीव्र वेदना आरम्भ होती है और वह कुछ अधिक समयतक ठहरती है। इन वेदनाओंके कारण शीघ्र ही गर्भाशयका मुंह खुलकर बच्चेका जन्म होता है।

यह आवश्यक नहीं है, कि गर्भिणी प्रसववेदना आरम्भ होते ही लेट या बैठ रहे। यदि वह चलती फिरती रहे, तो बहुत ही अच्छा है और यदि उसकी इच्छा हो तो वह छोटा-मोटा काम भी कर सकती है।

जनन-विज्ञान

जो स्त्रियां स्वस्थ और निरोग होती हैं, उन्हें प्रसव वेदना अधिक समयतक नही होती, अन्यथा यह कई घण्टो और कभी कभी दो तीन दिनोंतक हुआ करती है। गर्भिणी को इस अवस्थामे वारंवार मलमूत्र विसर्जनकी चेष्टा करनी चाहिये और जहांतक हो सके कोठा साफ रखना चाहिये। यदि वहुत समयसे दस्त न आया हो, तो बस्ती द्वारा भी पेट साफ किया जा सकता है। पेट साफ रहनेसे प्रसव मार्गको प्रशस्त होनेमे सुविधा रहती है, फलतः वच्चेका जन्म भी आसानीसे हो जाता है। गर्भाशयका मुंह खुल जानेपर एक तीव्र वेदनाके साथ वच्चेका सिर निकलता है और कुछ देरमे उसी तरहकी वेदनाके साथ बच्चेका धड़ बाहर आ जाता है।

जन्मके समय प्रतिशत ९६ वच्चोंका पहले शिर निकलता है और वादको धड़। जिन वच्चोंका शिर पहले निकलता है, वे वहुधा कवर पेजपर प्रदर्शित चित्रकी गतिसे भूमिष्ट होते हैं। कभी-कभी वच्चोंका मुंह और ललाट भी पहले निकलता है, परन्तु उनके प्रसवमे उतनी कठिनाई नहीं पड़ती, जितनी पहले हाथ, कंधा, पैर, चूतड़ या पीठ निकलनेपर पड़ती है। यह विषम प्रसव कहलाते हैं और वड़े कष्ट-दायक होते है। प्रसवकी विषमावस्थामे कभी कभी

चित्र नं० ३२
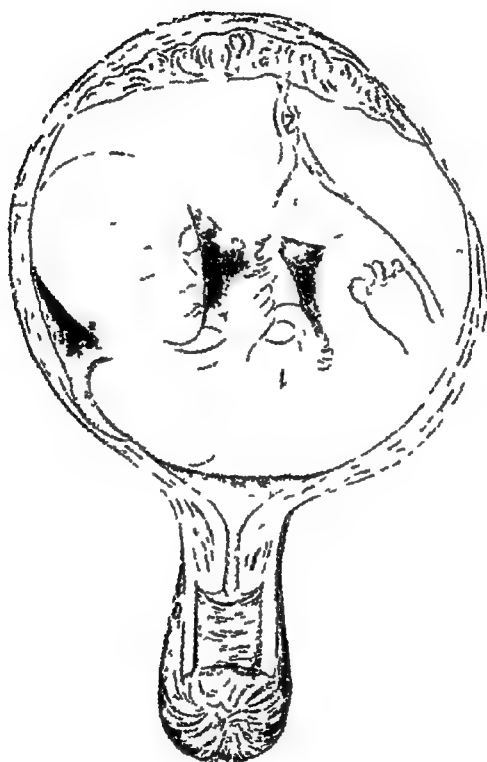
पांच मासका गर्भ ।

एकका अंक बच्चेका शरीर, दोका अंक नाल और तीनका अंक कमल बतलाता है ।

[देखो पृष्ठ १०१]

बच्चेको घुमाकर सीधा करना पड़ता है और कभी कभी यन्त्रोंकी सहायता लेनी पड़ती है। यह काम बिना सुशिक्षित दाई और डाक्टरोंके नहीं हो सकता, इसलिये इस पुस्तकमे हमने उसका विस्तृत विवेचन नहीं किया। ईश्वर न करे किसीको विषम प्रसव हो, क्योंकि इस अवस्थामे दाई और डाक्टरोंकी सहायता न मिलनेपर बहुधा गर्भिणी या उसके बच्चेको और कभी कभी दोनोंको तड़प-तड़प कर प्राण खोना पड़ता है।

कुछ औषधियां—प्रसव वेदनाका अन्त लाकर शीघ्र ही बच्चा उत्पन्न करनेके लिये "इपीका क्यु आना" नामक एक विलायती दवा बहुत ही लाभप्रद प्रमाणित हुई है। यह औषधि साधारणतया "इपीका"के नामसे सम्बोधित की जाती है और विलायती दवा वेचनेवालोंके यहां मिलती है। यह अमेरिकाके एक वृक्षके मूलकी छाल है और वहांसे इंगलैण्ड होकर भारत आती है। इसे कूट और कपड़ छानकर तीन तीन ग्रेनकी पुड़िया बना लेनी चाहिये। एक ग्रेन गेहूंके एक दाने भर होता है। यदि औषधि अच्छी और ताजी होती है, तो प्रसूताको एकसे अधिक खुराक देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यह औषधि प्रसूताओंके लिये सञ्जीवनी रूप है। इसके समस्त गुण

अभी मालूम नहीं हो सके, जो मालूम हो सके हैं वह यह हैं :—

(१) यदि जरायुका मुंह कठिन होता है, तो नरम हो जाता है और बन्द होता है तो खुल जाता है (२) यदि वेदना नहीं होती, तो उसका आरम्भ होता है, यदि वेदना बहुत धीमो होती है, तो वह इतनी तीव्र होती है, कि उससे गर्भद्वार खुल सके और यदि वेदना अस्वाभाविक होती है तो वह स्वाभाविक बनतो है। इससे प्रसूतिकाका प्रसव कष्ट लाघव होता है। (३) जरायुका मुंह कठिन होनेसे पीड़ा उठनेपर वहां इतनी वेदना होती है, कि प्रसू-तिकाके लिये वह असह्य हो पड़ती है। इस वेदनाके कारण वह खूब चिल्लाती और व्याकुलता प्रदर्शित करती है यहांतक कि उसे पकड़ रखना भी कठिन हो जाता है। इस अवस्थामें प्रसूतिकाको यह औषधि देनेसे इतना लाभ होता है, कि आधे घण्टेमें ही वह शान्त हो जाती है। मानों किसीने जलती हुई अग्निपर पानी छोड़ दिया हो। (४) यह औषधि प्रसव वेदना आरम्भ होनेके समयसे लेकर प्रसवके अन्ततक चाहे जिस अवस्थामें दी जा सकती है। प्रत्येक अवस्थामे यह अपना अद्भुत गुण दिखाती है। (५) इसे खिलानेसे जरायुको मांसपेशियां इतनी

क्रियाशील हो जाती हैं, कि वे बच्चेको तुरन्त बाहर निकाल देती हैं। फलतः बच्चेका जन्म इस तरह होता है, जैसे धनुषसे बाण छूटता है। (६) इस औषधिको व्यवहार करनेसे न केवल बच्चेका ही जन्म आसानीसे होता है, बल्कि कमल या खेढी वगैरह भी तुरन्त गिर जाती है। और (७) प्रसव करनेके बाद भी प्रसूतिका इतनी स्वस्थ रहती है, मानो उसे बच्चा ही नहीं हुआ।

इपीकाके इन गुणो के कारण दिन प्रतिदिन उसका उपयोग अधिकाधिक होता जा रहा है। डाक्टरोंको बुलाने पर वे यही औषधि देकर दो चार रुपये पेंठ ले जाते हैं परन्तु घरमें रखनेसे यह काम पैसो से ही निकल जाता है। हमारी समझमें यह औषधि प्रत्येक घरमे हरवक्त मौजूद रहनी चाहिये, ताकि वक्त पड़नेपर अपने अड़ोसी-पड़ोसियोंके काम आ सके। इसके अतिरिक्त गर्भाशयका मुँह खोलने व मांसपेशियोंको क्रियाशील बनाकर बच्चेको बाहर निकालनेमें निम्नलिखित औषधियां भी बड़ा काम करती हैं :—

(१) गर्भिणीके प्रसव द्वारमें सर्पकी केचुलीकी धूनी दी जाय।

(२) सर्पकी केचुली मिट्टीके बरतनमें रखकर जलाई

जाय और जलानेपर जो राख तैयार हो, उसमें शहद मिला कर वही अञ्जनकी तरह गर्भिणोकी आंखमे आंज दी जाय। इससे बच्चा तुरन्त पैदा होता है।

(३) अलसी, और तिल, शहदमें पीसकर दोनों जंघाओं व नलोंपर लेप किया जाय।

(४) नौसादर और पुदीनेको पीसकर, उसकी बत्ती प्रसव मार्गमे रक्खी जाय।

(५) पुठकण्डा या चिरचिटेकी जड़ भली भांति पीस कर नाभीके नीचेसे लेकर जंघाओं तक लेप कर दिया जाय। इससे भी तत्काल लाभ होता है।

(६) घोड़ेके सुमको धूनी दी जाय।

(७) इन्द्रायणकी जड़ या बीज पीसकर, प्रसव मार्गमें उसकी बत्ती रक्खी जाय।

(८) गाजरके बीज, सौंफ, सोआ, मेथी, बरगदकी जड़, बनफसा, और मुलहठी सब चीजें तीन तीन माशे ले, काथ बनाकर पिलाया जाय।

प्रसूताको शीघ्र प्रसव करानेके लिये इन सब औषधियों-का प्रयोग किया जाता है, परन्तु वैज्ञानिकोंका कथन है, कि दवाका प्रयोग उसी समय करना चाहिये, जब प्रसूतिकाको घण्टोंसे पीड़ा हो रही हो और प्रसव होनेका कोई लक्षण

न दिखाई देता हो। जो स्त्रियां बहुत ही स्वस्थ और परिश्रमी होती हैं, उन्हें प्रसव वेदना घण्टे दो घण्टेसे अधिक नहीं होती, परन्तु साधारण स्त्रियां कमसे कम चार छः घण्टे तक इससे पीड़ित रहती हैं। हम यह पहले ही कह चुके हैं, कि प्रसव वेदनासे गर्भाशयका मुँह खुलता है। यदि पीड़ा उत्तरोत्तर बढ़ती है, तो गर्भाशयका मुँह शीघ्र ही खुलकर बच्चेका जन्म हो जाता है और यदि शान्त हो जाती है, तो विचारी प्रसूता बीचहीमें लटक जाती हैं। न वह इधरकी होती है न उधर की। इसलिये यदि प्रसव वेदना उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हो, और गर्भाशयका मुँह खुलता जाता हो, तो किसी प्रकारकी चिन्ता या औषधोपचारकी कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु यदि प्रसव-वेदना एक वार आरम्भ होकर शान्त हो जाय, तो तुरन्त औषधोपचार द्वारा उसे पुनः जाग्रत कर गर्भिणोको प्रसव करानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

प्रसव वेदना आरम्भ होनेपर गर्भिणी और उसके संरक्षकोंको क्या करना चाहिये यह हम अगले अध्यायमें वर्णन करेंगे। यहां अब हम केवल यही कहना चाहते हैं, कि प्रसवके समय जिन चीजोंकी आवश्यकता पड़ती है, वे पहलेसे ही तैयार रखनी चाहिये, ताकि काम पड़नेपर तुरन्त

मिल सके। प्रसवके समय तैयार रखने लायक खास खास चीजें यह हैं :—

✓ (१) लेधरक्लाथ या मोमजामेके एक या दो टुकड़े, जो प्रसूता और बच्चेके नीचे बिछाये जा सकें, ताकि बिछौना खराब न हो। (२) शरीर, पेट या हाथमे लगानेके लिये मीठा या कड़ुआ तेल (३) गरम और ठंढा पानी (४) नाल बांधनेके लिये मोटा धागा या फीता (५) नाल काटनेके लिये एक कैंची या तेज छूरी (६) बच्चेको लपेटनेके लिये एक फलालैन या साफ कपड़ेका टुकड़ा (७) प्रसूताका पेट बाँधनेके लिये पट्टी (८) बच्चेका शरीर साफ करनेके लिये बेसन या बढ़िया साबुन (९) बच्चेको नहलानेके बाद ओढ़नेके लिये कम्बल या गरम कपड़ा (१०) बच्चेको नहलानेके लिये एक टब या बड़ा सा बरतन (११) प्रसूताको पहननेके लिये साफ कपड़े (१२) रुई, छोटे मोटे टुकड़े, पट्टियां, दाई, डाक्टर, सहेलियां इत्यादि।

प्रसव वेदना जोरोंसे आरम्भ होनेपर स्त्रियां खूब घबड़ाती हैं और उन्हें मालूम होता है, कि अब किसी तरह हमारा प्राण न बचेगा। उस अवस्थामें उन्हे ढाढस बँधानेकी बड़ी आवश्यकता रहती है। हमलोगोंके यहां ढाढस बंधाना और दिलासा देना तो दूर रहा, अड़ोस पड़ोसकी तमाम

स्त्रियां इकट्ठी हो जाती हैं और ऐसी ऐसी बातें कहती हैं कि बिचारी प्रसूताका रहासहा धैर्य भी गायब हो जाता है। कोई कहती है कि फलानेकी बहूको चार दिन तक पीड़ा हुई थी, कोई कहती हैं कि फलानीका बच्चा कलेजेमें चढ़ गया था और कोई कहती हैं, कि फलानेके यहां बच्चा पैदा होते ही उसे चुड़ैलने मार डाला था। यह सब बहुत ही बुरा है। प्रत्येक गृहस्थको अपनी बहू बेटियोंको सदा और खासकर प्रसवके समय ऐसी स्त्रियोंसे बचाना चाहिये। प्रसवके समय प्रसूताके पास एक कार्यदक्ष दाई और उसे सहायता देनेके लिये अधिकसे अधिक दो स्त्रियां—यही तीन मनुष्य रहने चाहिये। दाईके अतिरिक्त जो स्त्रियां रहें, वह ऐसी हों, जो प्रसूताको दिलासा दे सकें, उसका मनोरञ्जन कर सकें और दाईको आवश्यकतानुसार समुचित सहायता दे सकें।

यदि किसी प्रसूताकी अवस्था—ईश्वर न करे—चिन्ता-जनक हो जाय और उसके प्राणपर आ बने तो शर्म छोड़कर डाक्टरको बुलाना चाहिये या प्रसूताको अस्पतालमें पहुचाने-का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि डाक्टरको बुलानेकी आवश्यकता पड़े, तो उसे बुलानेको लिये जो आदमी जाय, उसे डाक्टरको प्रसूताकी हालत अच्छी तरह समझा देनी

चाहिये, ताकि वह आवश्यक दवायें या औजार अपने साथ ही लेकर चले। ऐसा न करनेसे आने जानेमें बड़ा समय लग जाता है और विचारी प्रसूता उतने ही समयमें इस लोकसे चल बसती है।

गर्भाधानसे लेकर प्रसव पर्यन्त जिस प्रकारका आहार-विहार और दिनचर्या रखनेकी इस पुस्तकमें सलाह दी गयी है, उसके अनुसार रुपयेमे आठ आने भर भी आचरण रखनेसे, हम नहीं समझते, कि प्रसूताको प्रसव कष्ट भोगना या परेशान होना पड़े। यह सब नियम ऐसे हैं, कि इनके अनुसार आचरण करनेपर प्रसूता विना किसीकी सहायताके ही प्रसव और अपने व अपने बच्चेकी प्राण-रक्षा कर सकती है। फिर भी यह सब तैयारी और सावधानी इसलिये रखनी चाहिये, कि दुर्भाग्यवश यदि कोई आपत्ति आ पड़े तो आसानीसे उसका मुकाबला किया जा सके।

प्रसवकी प्रथमावस्था

पीड़ाके आरम्भसे लेकर भलीभांति जरायुके मुँह खुलने तकके समयको प्रसवकी प्रथमावस्था कहते हैं। इस अवस्थामें प्रसूतिकाको खड़ी होकर इधर उधर टहलना चाहिये। इससे पीड़ा बढ़ती हैं। पीड़ा बढ़नेसे जरायुका मुँह शीघ्र खुलता है और मुँह खुलनेसे बच्चा आसानीसे उत्पन्न हो जाता हैं। अज्ञान दाइयां यह रहस्य नहीं जानतीं, अतः वे प्रसूतिकाको सौरी घरमें बैठाल कर उसे खूब जोर करनेको कहती हैं। इससे विचारी प्रसूतिका अधमरी हो जाती हैं। जोर करते करते उसकी आंखें निकल आती है, मुँह लाल हो जाता हैं, शक्ति क्षीण हो जाती है और शरीर शिथिल हो जाता है, फिर भी कोई लाभ नहीं होता।

इस अवस्थामें केवल वही कार्य करना चाहिये, जिससे

जरायुका मुँह खुले। इपीका इसके लिये अच्छी दवा है। उससे इस अवस्थामें बड़ा उपकार होता है। प्रसूतिका को उसकी एक मात्रा इस समय अवश्य खिला देनी चाहिये। इस औषधिके अतिरिक्त कुछ ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे प्रसूतिकाको उवकाई आवें, परन्तु कै न हो। उवकाइयां आनेसे जरायुका मुख खुलनेमें सहायता मिलती है। प्रसूतिकाके मुखमें उसके केश पकड़ानेसे उसका जी मिचलाकर तुरन्त उवकाइयां आने लगती हैं। अनेक स्त्रियोंको विना किसी उपचारका अवलम्बन किये ही उव-काइयां आने लगती हैं। यह प्रसूतिकाके लिये वहुत ही अच्छा है। जी मिचलते देखकर किसीको किसी प्रकारकी चिन्ता न करनी चाहिये।

जबतक जरायुका मुँह नहीं खुलता, तबतक प्रसूतिकाको प्रसव करानेकी समस्त चेष्टाये व्यर्थ प्रमाणित होती हैं, इसलिये, इस अवस्थामें प्रसव करानेकी कोई चेष्टा न कर दाईको चुपचाप वैठ रहना चाहिये। जरायुका मुँह खुलते ही पानीकी थैली फट जाती है और पानी वाहर निकलने लगता है। यहींसे द्वितीयावस्था आरम्भ होती है, परन्तु चतुर दाईको पानी निकलनेके भरोसे वैठ नहीं रहना चाहिये। कभी कभी पानीकी थैली नहीं भी फटती और थैली समेत

बच्चेका जन्म हो जाता है। इसलिये दाईको चाहिये, कि थोड़ी थोड़ी देरसे हाथ डालकर देखती रहे, कि जरायुका मुँह खुला है या नहीं। जरायुका मुँह खुलते ही बाहर तक बच्चेके निकलने लायक एक पथ तैयार हो जाता हैं। इस अवस्थाका आरम्भ होते ही प्रसवकी द्वितीयावस्थाके उपचारोंका अवलम्बन करना चाहिये।

जिस समय जरायुका मुँह खुलता है, उस समय उसकी चौड़ाई पन्द्रह अंगुलके करीव हो जाती है। जरायुके मुँहपर पानीकी थैली आते ही फट जाती है और उससे जल निकलने लगता है, परन्तु हम पहले ही कह चुके, कि कभी कभी इस थैली समेत वच्चेका जन्म हो जावा है। इस अवस्थामें थैलीको चट नाखून या चाकूसे फाड़कर बच्चेको वाहर निकाल लेना चाहिये। इस कार्यमे जरा भी देर होनेसे वच्चेकी मृत्यु होनेकी सम्भावना रहती है।

पानीकी थैली फटनेपर वहुधा थोड़ासा जल निकल जाता है और तुरन्त ही प्रसव द्वारपर वच्चेका शिर आ लगता है। ऐसी अवस्थामें वहुत सा जल अन्दर रह जाता है और बच्चेको वाहर ढकेलनेमें सहायता पहुँचाता है। परन्तु अनेक वार दाईके आदेशानुसार जोर करने या हाथ डालकर देखते समय झिल्लीमे हाथका नख लग जानेसे

जरायुका मुंह भलीभांति खुलनेके पहले ही गर्भजल बाहर निकल जाता है। इस अवस्थामें प्रसूतिकाको प्रसव करनेमें बड़ा ही कष्ट होता है और फिर बहुधा बच्चेका शिर पहले बाहर न आकर हाथ या पैर बाहर आते हैं, फलतः प्रसूतिकाकी जान आफतमें पड जाती है। पानीकी थैली अन्ततक सुरक्षित रहनेसे वह धक्का दे देकर जरायुका मुंह खोल देती है और इससे प्रसवके कार्यमे बहुत कुछ सुगमता रहती है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि जबतक जरायुका मुंह भलीभांति न खुल जाय, तबतक पानीकी थैलीका न फटना ही वाञ्छनीय हैं और इसलिये न तो प्रसूतिकासे जोरही कराना चाहिये, न किसी प्रकारसे झिल्लीमे धक्का ही लगने देना चाहिये। इसीलिये इस काममें पड़नेके पहले दाईको अपने नख उतार लेना उचित है।

प्रसवकी इस प्रथमावस्थामें प्रसूतिकाको गरम दूध पिलाना लाभदायक है। इससे एक तो जरायुका मुंह खुलनेमें सहायता मिलती है और दूसरे गर्भिणीकी क्षुधाग्नि शान्त होती है। अनेक स्थानोमे प्रसूतिकाको दूध किंवा घृत मिश्रित दूध पिलानेकी प्रथा है, परन्तु यह कार्य्य यथा समय होना चाहिये। जरायुका मुंह खुलनेके बाद गरम दूध पिलानेसे कोई लाभ नहीं होता।

बहुत लोग अज्ञानताके कारण प्रसूतिकाको इस अवस्थामें कुछ भी खाने नहीं देते। वे समझते हैं, कि इससे प्रसवकार्यमे बाधा पडेगी, परन्तु यह उनकी भूल है। प्रसवकी प्रथमावस्था बहुधा चार छः घण्टेसे लेकर दस बारह ही घण्टेमे समाप्त हो जाती है, परन्तु कभी-कभी और खासकर जो स्त्रियां पहलीवार गर्भ धारण करती हैं, उनके जरायुका मुंह कड़ा होनेके कारण, यह अवस्था चौवीस या इससे अधिक घन्टोंतक भी ठहरती है। बतलाइये, ऐसी अवस्थामें मर्मान्तक प्रसववेदनाके कारण मरणासन्न प्रसूतिकाको भोजन न देना कितना अन्याय हैं। एकतो वह विचारी आप ही मरती है, तिसपर लोग उसे भूखो मारते हैं। भूखके कारण उसकी वेदना और भी असह्य हो उठती है और उसका समूचा शरीर शिथिल हो जाता है। हमारी अज्ञान दाइयोको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं होता, इसलिये वह खानेका नाम सुनते ही नाम भौं सिकोड़ने लगती हैं, परन्तु प्रत्येक गृहस्थ और पढ़े लिखे मनुष्यको यह बात भलीभांति स्मरण रखनी चाहिये, कि इस अवस्थामें प्रसूतिकाको गरम दूध, साबूदाना या ऐसा ही हलका खुराक दिया जा सकता है। इससे प्रसव कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़कर प्रसूतिकाके शरीरमें बल-संचार होता है

और इससे उसे प्रसववेदना सहन करनेकी क्षमता प्राप्त होती है। किन्तु इस बातका ध्यान रहे, कि इस अवस्थामें जो कुछ खाना दिया जाय, वह गरम हो। ठंढा भोजन लाभके बदले उलटा हानि पहुंचाता हैं। प्रसूतिका यदि जल मांगे तो जलके स्थानमे भी इस अवस्थामें उसे गरम दूध ही देना चाहिये। इससे उसकी तृषा भी मिट सकती है और शक्ति भी सञ्चित रह सकती है।

प्रसवकी द्वितीयावस्था

जरायु किंवा गर्भाशयका मुख खुलनेसे लेकर बच्चेके जन्म होने तकके समयको प्रसवकी द्वितीयावस्था कहते हैं। यह अवस्था बहुत ही भयंकर होती है। जरा भी यत्नमें त्रुटि रहनेसे बच्चे या प्रसूताके जानपर आ बनती है और कभी कभी दोनोंको प्राण खोना पड़ता है। इसलिये इस अवस्थामें बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये और किसी बातमें जरा भी त्रुटि न आने देना चाहिये। सच पूछिये तो दाईकी कार्यदक्षताका परिचय प्रसूतिकाकी इसी अवस्थामें मिलता है।

इस अवस्थामें प्रसूतिकाका बैठ रहना या टहलना ठीक नहीं, क्योंकि साधारणतया, जरायुका मुंह खुलनेके कुछ ही क्षणोंके बाद बच्चा निकल पड़ता है। यदि दैवयोगसे प्रसूता उस समय खड़ी हुई, तो संभव है, कि बच्चा जमीन

पर गिर जाय और उसे करारी चोट आ जाय। इसलिये प्रसूतिकाको इस अवस्थामें लिटा रखना ही उचित और वाञ्छनीय है।

मूर्ख दाइयां बहुधा इस अवस्थामे प्रसूतिकाको लेटनेकी आज्ञा नहीं देतीं। वे समझती हैं, कि लेट रहनेसे प्रसव-कार्यमें बाधा पड़ेगी। यहांतक कि प्रसूता कष्टके कारण चिल्लाती और तड़पती है, फिर भी उसे वे बैठाल ही रखती हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। प्रसूताको लिटा देनेसे भी प्रसवकार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती, बल्कि बिना किसी कष्टके यह कार्य सम्पन्न हो जाता है।

प्रसूतिकाको चित्त सुलाकर प्रसव करानेसे बच्चा निकलते समय बहुधा जननेन्द्रियसे लेकर मलद्वारकी चमड़ी चिर जाती है, क्योंकि बच्चा निकलते समय उस अंगपर बड़े जोरका धक्का लगता है। (अतः प्रसूतिकाको चित्त न लिटाकर बायीं करवट लिटाना चाहिये। लिटाकर उसके दोनो टिहुने छातीकी तरफ सिकोड़ देने चाहिये और दोनों जंघाओंके बीचमें एक गोल तकिया लगा देनी चाहिये। इस प्रकार तकिया लगा देनेसे उसके दोनों पैर एक दूसरेसे अलग रहते हैं और इससे प्रसव द्वार प्रशस्त बना रहता है।)

प्रसूतिकाको इस तरह लिटाकर उसके पेड़ूपर धीरे-

चित्र नं० ३३

आठ मासका गर्भ ।
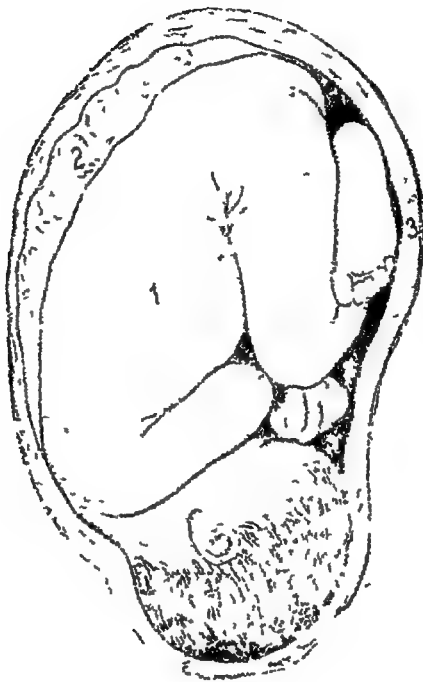
एकका अंक बच्चेका शरीर, दोका अंक नाल और तीनका

अंक वाह्य आवरण बतलाता है ।

[देखो पृष्ठ १०३]

धीरे जरा दबाकर हाथ फिराना चाहिये। इसी तरह जंघा और पैरकी पिंडुरियोंको भी दबाना चाहिये। इससे प्रसूतिकाको आराम मिलता है और क्षणभरके लिये उसकी पीड़ा मानो दूर हो जाती है। चतुर दाईको इस समय अकेले न रहकर मददके लिये दो एक और स्त्रियोको भी आपने पास रखना चाहिये। इससे एक ही साथ अनेक कार्यों को निपटानेमे सुविधा रहती है।

बच्चे का शिर निकलते समय स्त्रियोको बड़ा कष्ट होता है। अनेक स्त्रियां उस समय बड़बड़ाने लगती हैं, अनेक हाथ पैर पटकती हैं और अनेक ऐसा उपद्रव करती हैं, मानो पागल हो गयीं हैं, परन्तु इससे किसी प्रकारकी चिन्ता न कर यह समझना चाहिये, कि बच्चे का शिर निकल रहा है। इस समय अन्त्रावलीपर दबाव पड़नेके कारण किसी किसी स्त्रीको दस्त भी हो जाता है।

बच्चे का शिर दिखाई देते ही दाई या जो स्त्री उस समय उपस्थित हो, उसे अपना एक हाथ प्रसव द्वारके नीचे लगा देना चाहिये। इससे वहांकी चमड़ी फटनेका भय नहीं रहता। जो स्त्रियां पहली ही बार गर्भ धारण करती हैं, उनका शरीर अधिक कोमल होता है, अतः उनकी चमड़ी फटनेका विशेष संभव रहता है। जो स्त्रियां आठ दस वर्ष के

बाद पुनः गर्भ धारण करती हैं, उनके सम्बन्धमें भी यही बात रहती है, परन्तु जो स्त्रियां प्रति दूसरे तीसरे वर्ष प्रसव करती हैं, उनके सम्बन्धमे अधिक चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि उनके प्रत्येक अगोमे यह कष्ट सहन करनेकी क्षमता आ जाती है। परन्तु हाथ रखते समय ध्यान रहे, कि उस स्थानपर जरा भी जोर न लगना चाहिये। जोर लगनेसे बच्चेके निकलनेमे वाधा पड़ती है, अतः ऐसे धक्के लगते हैं कि जिस सियनको बचानेकी चेष्टा की जाती हैं, वह अवश्यमेव फट जाती है। हाथ ऐसा हलका रखना चाहिये, जिससे वेग भी न रहे और उस स्थान पर दवाव भी न पड़े। जब तक बच्चेकी गरदन वाहर न आ जाय तवतक उस स्थानसे हाथ न हटाना चाहिये (देखो चित्र नं० ३५)

बच्चेकी गरदन बाहर निकलनेपर सबसे पहले यह देखना चाहिये, कि उसमे नालका फंदा तो नहीं पड़ा। अनेक बच्चोंके गलेमे एक दोसे लेकर पांच सात ऐसे फन्दे पड़े रहते हैं। जबतक बच्चा पेटमे रहता है, तबतक इन फन्दोसे उसे कोई हानि नहीं होती, परन्तु गरदन बाहर निकलनेपर यदि वह न छुड़ा दिये जांय, तो बच्चेकी मृत्युतक हो जाती हैं। इसका कारण यह है, कि गर्भस्थ वालकको स्वतन्त्र रूपसे श्वास नहीं लेना पड़ता। नाल द्वारा उसे अनायास

ही हवा मिल जाती है, परन्तु जन्म होनेके बाद उसे स्वतन्त्र रूपसे श्वास लेना पड़ता है और ऐसी अवस्थामें गला फँसा रहनेके कारण उसका दम घुट जाता है। दाईको चाहिये कि इन फन्दोंको धीरे धीरे बच्चेके गलेसे निकाल दे। निकालते समय इस बातपर ध्यान रखना चाहिये, कि नाल टूट न जाय। नाल टूटनेसे बच्चा मारा जाता है। किन्तु यदि बच्चेके गलेमें कई फन्दे हों और उन्हें निकालनेमें देर लगे, तो एक बन्द बच्चेकी नाभीकी ओर तथा एक बन्द प्रसूतिकाकी ओर नालमें लगाकर फन्दोंको तेज कैंचीसे काट देना चाहिये। इससे प्रसूता या बच्चा—दोमेंसे किसी को भी भय नहीं रहता।

बच्चेका शिर निकलनेके बाद उसके धड़को निकलनेमें कुछ समय लगता है। ऐसी अवस्थामें हड़बड़ाकर मूर्ख दाइयां बच्चेका शिर पकड़कर उसे बाहर खींचती हैं, परन्तु इससे बच्चेके गलेमें झटका लगनेके कारण उसकी मृत्युतक हो जानेकी संभावना रहती है। इसलिये बच्चेको इस तरह भूलकर भी न खींचना चाहिये।

शिर निकलनेके जरा देर बाद यदि पुनः पीड़ा उठती है, तो बच्चेका जन्म आसानीसे हो जाता है, परन्तु यदि पीड़ा बन्द हो जाय और पुनः न उठे, तो प्रसूतिकाके पेटपर धीरे-

धीरे हाथ फेरना चाहिये।) इससे फिर पीड़ा उठेगी और बच्चेका धड़ निकल आवेगा, किन्तु यदि हाथ फेरने पर भी पीड़ा न उठे, तो एक स्त्रीको प्रसूतिकाका पेट खूब जोरसे दबा रखना चाहिये और दाईको एक हाथ बच्चेकी गरदनमें देकर दूसरे हाथकी दो उंगलियां उसकी बगलमे डालकर या दोनों हाथकी दो-दो उंगलियां दोनो बगलमे डालकर धीरे-धीरे बच्चेको बाहर खींच लेना चाहिये। इस प्रकार बगलमें उंगली डालकर खींचनेसे बच्चेकी गरदनमें झटका लगनेकी सम्भावना नहीं रहती। परन्तु ध्यान रहे, खींचते समय उपरोक्त प्रकारसे प्रसूतिकाका पेट न दबा रखनेसे इतना रक्त निकल सकता है, कि उसके कारण उसकी मृत्युतक हो सकती है।)

प्रसूतिकाके पेटपर इस तरह हाथ लगा रखनेसे अधिक रक्तस्राव नही होता। इसलिये बच्चेकी गरदन निकल आनेके बाद पेट अवश्य दबा रखना चाहिये। गर्भद्वारके नीचेका हाथ इस समयसे हटाया जा सकता है। यदि दो तीन स्त्रियां हों तो एकको पेट दबा रखना चाहिये और दूसरीको बच्चा खींचनेके लिये प्रसव द्वारपर हाथ लगा रखना चाहिये। किन्तु यदि एक ही स्त्री हो तो उसे आवश्यकतानुसार कार्य करना चाहिये। ध्यानमे रखनेकी

बात केवल यही है, कि गरदन निकलनेके बाद प्रसवद्वारके नीचे हाथ रखना व्यर्थ और पेट दवाना परमावश्यक है।

बच्चेका जन्म होते ही उसे प्रसूतिकाकी दाहिनी या बायीं ओर हटा देना चाहिये। ऐसा न करनेसे कभी-कभी प्रसूतिकाके प्रसवद्वारसे जो रक्तधारा निकलती है, वह बच्चेके आंखकान या नाक मुंहमें प्रवेश कर उसे हानि पहुचाती है। बच्चेको एक ओर हटा कर सर्वप्रथम उसका मुंह साफ कर देना चाहिये, क्योंकि बाहर निकलने समय उसके मुंहमें न जाने क्या क्या भर जाता है। इसके बाद यदि वह भली भांति रोता हो, तो उसकी नाल काटनेकी तैयारी करनी चाहिये।

जन्म होनेके बाद यदि बच्चा रोता न हो तो समझ लेना चाहिये, कि या तो वह हांफ रहा है या उसका श्वास रुंध रहा है। ऐसी अवस्थामें उसे सावधान किये बिना ही यदि नाल काट दी जाती है, तो उसकी मृत्यु हो जाती है। इसलिये दाईको सर्वप्रथम बच्चेको सावधान करनेकी ओर ध्यान देना चाहिये।

बच्चेको सावधान करनेके लिये उसके मुंह और नेत्रोंपर ठंढे जलके छींटे देना चाहिये। तीन-चार छींटे देनेपर बच्चा चौंक कर रोने लगेगा और रोने लगे तो समझिये

कि सारा भय दूर होगया। किन्तु यदि छीटे देनेपर भी वह सावधान न हो, तो एक बरतनमें ठंढा जल भरकर उसमे उसे गलेतक धन्वसे डुबो देना चाहिये और डुबोकर तुरन्त उठा लेना चाहिये। यदि इससे भी वह सावधान न हो: तो इसी प्रकार एकबार उसे गुनगुने जलमें और दूसरी बार ठंढे जलमें डुबोना चाहिये। लगातार कई बार इस तरह डुबोनेसे वह अवश्य चौंककर रोने लगेगा, किन्तु यदि इतने पर भी न रोवे, तो उसे गोदीमे चित्त सुलाकर उसके मुंहमे फूंक मारना चाहिये, फूंक मारते समय उसके दोनो हाथ दोनों कानों तक ऊपर उठा देना चाहिये और बादको फिर नीचे लाकर पसलियोंसे सटा देना चाहिये। इसी तरह बारंबार हाथ उठाकर फूंक मारने और फिर उन्हें नीचा करनेसे बच्चेका फेफड़ा काम करने लगता है। फलतः वह पहले अंगड़ाई सी लेता है और बादको श्वास लेने व रोने लगता है। बच्चेको सावधान करनेका यही अन्तिम उपाय है।

कभी कभी इस बेहोशीके साथ यह भी दिखाई देता है, कि बच्चेकी आंखे व मुंह काला पड़ गया है। ऐसी अवस्थामें नाभीके पास करीब तीन अंगुल रखकर नालको शीघ्र ही काट देना चाहिये, परन्तु काटनेके बाद तुरन्त बन्द

न लगाकर उसमेंसे थोड़ा खून वह जाने देना चाहिये। थोड़ा खून निकल जानेपर बच्चेके चेहरेकी श्यामता दूर हो जायगी। इसके बाद यदि बच्चा न रोवे, तो उसे उपरोक्त उपचारों द्वारा सावधान करना चाहिये। कभी कभी नाकमें बत्ती डालने या पीठ थपथपानेसे भी उसकी बेहोशी दूर हो जाती है, परन्तु यह प्रारम्भिक उपचार हैं, अतः पहले ही इन्हें आजमा लेना चाहिये।

बच्चा जब भलीभांति रोने लगे, तब नाल काटनेकी तैयारी करनी चाहिये। नाल काटना एक सहज काम समझा जाता है, परन्तु अनेक बार उसे काटने व बांधनेके दोषसे अनेक बच्चोंका प्राण जाता है। अतः यह कार्य भी बड़ी सावधानीसे करना चाहिये। इसकी विधि यह है, कि एक बन्द बच्चेकी नाभीकी ओर तीन अंगुल पर और दूसरा बन्द उससे एक अंगुल दूरी पर लगाकर, दोनोंके बीच कैंचीसे काट देना चाहिये। ऐसा करनेसे न तो रक्त ही निकलता है, न बच्चेको कष्ट ही होता है। नाल बांधनेके लिये सूतका फीता काममे लाना चाहिये। कड़े धागे या तांतसे नाल बांधनेपर नाल कट जानेकी सम्भावना रहती है और नाल कट जानेपर खून निकलनेके कारण बच्चा दुर्बल हो जाता है। नाल चाकूसे काटने पर ज्यों ज्यों

चाकूकी रगड़ लगती है, त्यों त्यों बच्चा रोता है और कभी कभी इसी कष्टके कारण उसे भयंकर व्याधियां हो जाती हैं। कैंचीसे काटनेपर बच्चाको कुछ मालूम भी नहीं होता और न वह रोता ही है। केवल बच्चेकी ही ओर एक बन्द लगाने और माताकी ओर दूसरा बन्द न लगाकर नाल काट देनेसे यदि माताके पेटमें दूसरा बच्चा होता है, तो वह नाल द्वारा खून निकल जानेके कारण पेटहीमें मर जाता है। इसलिये दूसरा बच्चा हो या न हो, परन्तु नाल काटते समय यही समझ लेना चाहिये, कि पेटमें अभी एक बच्चा और है। ऐसा करनेसे बादको पश्चाताप नहीं करना पड़ता। इसके अतिरिक्त प्रसूतिकाको ओर भी नालमें एक बन्द लगा देनेसे आंवलमें रक्त संचित होता है और उस रक्तके भारसे आंवल जल्दी छूट पड़ती है।

नाल काटनेके बाद बच्चेको गरम जल और साबुनसे अच्छी तरह स्नान कराना चाहिये। स्नान करानेके बाद भलीभांति उसे पोंछ पांछकर गरम कपड़ेमें लपेटकर सुला देना चाहिये। बच्चेका शरीर इस समय साफ न करनेसे वह सदा रोगी सा बना रहता है और न जाने कितनी व्याधियां उसपर आक्रमण करती हैं।

जन्म होनेके बाद यदि बच्चा बहुत दुर्बल दिखाई दे, तो

नालमें माताकी ओर जो रक्त हो, उसे अंगूठा और उसके पासवाली उंगलीके सहारे सरकाकर बच्चेके शरीरमें प्रविष्ट करा देना चाहिये और बादको नियमानुसार बन्द लगाकर नाल काटना चाहिये। गर्भकालमें माताके रक्तसे ही बच्चेका पोषण होता है, अतः इस प्रकार थोड़ा बहुत रक्त उसके शरीरमें प्रविष्ट करा देनेसे उसे कुछ शक्ति अवश्य प्राप्त होती है।

प्रसवकी इस दूसरी अवस्थामें भी प्रसूतिकाको दूध, साबूदाना आदि हलका भोजन दिया जा सकता है, परन्तु इस अवस्थामें उसे जो कुछ दिया जाय, वह ठंढा हो। प्रथमावस्थामें गरम भोजन देनेसे जरायुका मुँह खुलता है, किन्तु इस अवस्थामें गरम भोजन देनेसे अधिक खून जाता है। इस अवस्थामें ठण्ढी चीजें ही लाभदायक होती हैं, क्योंकि उनको खिलानेसे पीड़ा बढ़ती है और शीघ्र प्रसव होता है। प्रसव होनेके पहले और २४ घण्टेके बाद जल भी दिया जा सकता है, परन्तु जहांतक दूधसे काम चले वहांतक दूध ही देना चाहिये।

२०

प्रसवकी तृतीयावस्था

बच्चेके जन्मसे लेकर आंवल गिरने तकके समयको प्रसवकी तृतीयावस्था कहते हैं। इस अवस्थामें प्रसूतिकाको चित्त सुलाकर उसके पेटपर धीरे धीरे हाथ फिराना चाहिये। ऐसा करनेसे आंवल आप ही आप कुछ समयमे गिर पड़ती है। इसके लिये दाई या प्रसूतिकाको कोई विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती।

आंवल गिरनेमे प्रायः एक घण्टा या इससे कम समय लगता है। हमारे यहांकीं स्त्रियां इस वातको न जाननेके कारण वच्चेका जन्म होते ही चिल्लाने लगती है, कि हाय अभी आंवल नहीं गिरी! अज्ञान दाइयोकी भी वही अवस्था होनेके कारण उनके धैर्यका भी अन्त आ जाता है। वे तुरन्त गर्भाशयमे हाथ डाल, तोड़ मिरोड़ कर आंवल

निकाल लेती हैं परन्तु इस तरह आंवल निकालना और प्रसूतिकाका खून करना बराबर है; आंवलको इस तरह खींचनेसे कभी कभी इतना खून गिरता है, कि प्रसूतिकाका प्राणान्त तक हो जाता है और कभी कभी उसका कोई अंश अन्दर रह जानेसे भयंकर व्याधियोंके कारण प्रसूतिकाको आजन्म कष्टित रहना पडता है। यह बाते न घरकी ही स्त्रियां जानती हैं, न दाई ही। वे केवल यही समझती हैं, कि आंवल गिरनी चाहिये—चाहे वह तोड़कर गिराई जाय और चाहे आपसे गिरे। औरोकी कौन कहे, हमारे यहां की स्वयं प्रसूतिकाये भी नहीं जानती, कि इस प्रकार आंवलको खींचकर गिरानेसे उन्हे क्या हानि होती है!

प्रसव होनेके बाद पुनः प्रसूतिकाको प्रसव वेदनाके समान पीड़ा होती है। यह पीड़ा वास्तवमे जरायुके संकुचित होनेके कारण होती हैं। ज्यो ज्यो जरायु संकुचित होता हैं त्यों त्यों आंवल छूटती जाती है और अन्तमे आपही आप बाहर आ जाती है। इस प्रक्रियामे प्राय. एक घण्टेका समय लगता है। किन्तु यदि प्रसूतिकाको पीड़ा नहीं होती, तो आंवलके गिरनेमे बड़ी बाधा पड़ जाती है। अतः ऐसी अवस्थामे अर्गट

आफ राई* या इपीकाकी एक खुराक प्रसूतिकाको देनी चाहिये। इससे तुरन्त पीड़ा उठेगी और आंवल गिर पड़ेगी। यदि दवा देनेपर भी एक घण्टे तक पीड़ा न उठे तो दूसरी खुराक देनी चाहिये और दूसरी खुराक देनेपर भी पीड़ा न उठे तो फिर दूसरा उपाय करना चाहिये।

यदि पीड़ा उठकर आप ही आप आंवल न गिरे, तो दाईको अपने बांयें हाथके अंगूठेके पासवाली उंगली धीरे धीरे टेढी कर प्रसूतिकाके पेटमें इस तरह दवानी चाहिये, कि जिससे जरायुका शिरोभाग उसकी मुट्ठीमें आ जाय। इसके बाद जब जरायु कड़ा मालूम हो, तब उसे अच्छी तरह मसलकर दबाना चाहिये। ऐसा करनेसे जिस प्रकार गाय भैंसका थन दवानेसे दूध निकल पड़ता है, उसी प्रकार जरायुके अन्दरसे आंवल तथा खून वगैरह निकल आता है। यदि एक बार यह प्रक्रिया करनेसे सफाई न हो, तो

---

* यह एक विलायती दवा है। इसकी मात्रा १०—१२ रत्तीकी है। इसमें गर्भाशयको सकुचित करनेका अद्भुत गुण है, परन्तु यह एक प्रकारका विष है, अतः जबतक बच्चा पेटमें रहता है, तबतक यह प्रसूताको खिलाई नहीं जा सकती। खिलानेसे बच्चा मर जाता है।

पुनः दुवारा करना चाहिये, परन्तु बहुधा दुवारा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

कभी कभी आंवल जरायसे छूटकर प्रसवद्वारमें आकर अटक रहती है। इसलिये उपरोक्त प्रकारसे जरायुको दवानेपर यदि आंवल वाहर न निकले, तो यह देख लेना चाहिये कि वह प्रसवद्वारमे तो नहीं अटक रही? इसकी जाँच प्रसवद्वारमें दो एक उंगलियां डालकर की जाती है। यदि आंवल वहां अटकी हुई मालूम हो, तो उसे उन्हीं उंग-लियोंके सहारे वाहर खींच लेना चाहिये। किन्तु यदि आंवलका प्रसवद्वारमें कहीं पता न चले, तो देखना चाहिये कि वाहर जो नाल लटक रही है वह अन्दर जरायु तक है या नहीं। यदि नाल जरायुके अन्दर तक हो, तो समझना चाहिये, कि आंवल अभी जरायुसे विलग नहीं हुई। ऐसी अवस्थामें जरायुको पेटके ऊपरसे गायके थनकी भांति उपरोक्त विधिसे पकड़कर पुनः दवाना चाहिये। इस प्रक्रियासे आंवल अवश्य गिर पड़ती है, परन्तु यह सदैव स्मरण रखना चाहिये, कि आंवल गिरे या न गिरे, उसे खींच कर कभी न निकालना चाहिये।)

यदि उपरोक्त प्रकारसे आंवल गिराई जाय, तो आंवल गिरनेके वाद भी १०-१५ मिनटतक जरायुको इस तरह दवा

रखना चाहिये, कि जिससे उसके अन्दर जो कुछ हो वह सब बाहर निकल जाय। इसके बाद अर्गट आफ राईकी एक पुडिया (१० रत्ती) और खिला देनी चाहिये। इससे जरायु एकदम संकुचित होकर अपनी पूर्वावस्थामें आ जायगा। प्रसवके बाद जरायुका इस प्रकार संकुचित हो जाना परमावश्यक है।)

आंवल गिरनेपर भी पानीकी थैली प्रायः प्रसवद्वारके अन्दर ही रह जाती है। इसे ऐंठते हुए बाहर निकाल लेना चाहिये। ऐंठन देकर निकालनेसे लेशमात्र भी वह अन्दर नहीं रहती।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि बच्चेका शिर बाहर आते ही प्रसूतिकाके पेटपर हाथ रख जरायुका शिरोभाग पकड रखना चाहिये। फिर क्रमश जरायुका शेष भाग भी मुट्ठीमें करते जाना चाहिये। इस तरह जरायुको पकड रखनेसे विशेष रक्तपात नहीं होता। यदि और कोई न हो, तो दाईको ही दाहिने हाथसे बच्चेका शिर और बायें हाथसे पेटपर हाथ रख जरायु थाम रखना चाहिये। बच्चेकी छाती, पेट, पीठ और नितम्ब प्रभृति बाहर निकलते समय इस तरह जरायुको पकड रखनेसे रक्तस्राव होनेका भय नहीं रहता। परन्तु प्रसव होनेके बाद भी वहांसे हाथ

हटाना ठीक नहीं। हाथ हटाते ही रक्तस्राव होनेका संभव रहता है।

आंवल व झिल्ली गिरनेके बाद जब मालूम हो, कि जरायु संकुचित होकर खूब कड़ा हो गया है, तब गरम फलानेलका एक बड़ा सा टुकड़ा लेकर प्रसूताके पेडूसे लेकर छातीके नीचेतकका अंश, उस टुकड़ेको पीठके नीचेसे लेकर भली-भांति बांध देना चाहिये। बांधते समय एक कपड़ेकी गद्दी सी बनाकर जरायुपर रख देनी चाहिये और उसीपरसे पट्टी बांध देनी चाहिये।) इस तरह गद्दी रख देनेसे जरायु-पर अधिक दाब पड़ता है, अतः उसे अपनी पूर्वावस्थामें आते देर नहीं लगती। प्रसूतिकाके पेटपर यह पट्टी १० दिनतक बांध रखनी चाहिये। इससे अनेक लाभ होते हैं। एक तो खून नहीं गिरता और दूसरे पेट बंधा रहनेके कारण प्रसूतिकाको कुछ आराम मालूम होता है। साथ ही पेटकी चमड़ी ढीली न पड़कर ज्योंकी त्यों तनी रहती है।

हमारे यहांकी अज्ञान दाइयां समझती हैं, कि प्रसव होनेके बाद रक्तस्राव होना स्वाभाविक है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। यथाविधि प्रसव करानेसे जरा भी रक्तस्राव नहीं होता। रक्तस्राव होना कोई साधारण बात नहीं है। इससे प्रसूतिका इतनी क्षीण और दुर्बल हो जाती है, कि

महीनो तक उसे उठना बैठना दूभर हो जाता है। प्रसवके समय रक्तस्राव न होनेसे स्त्रियां दस बारह दिनमें भलीभांति स्वस्थ होकर चलने फिरने लायक हो जाती हैं।

प्रसूतिकाके पेटपर उपरोक्त पट्टी दस दिनतक बांध रखनी चाहिये और उस समयतक उसे खाट ही पर सुला रखना चाहिये। सुकुमार स्त्रियां इन दस दिनोंमें एक बार भी खडी होती हैं, तो रक्तस्राव होने लगता है, फलतः उन्हे आराम होनेमे विलम्ब होता है। इस प्रकार प्रसव कार्य सम्पन्न होनेपर २२ वें अध्यायमे लिखे अनुसार बच्चे व प्रसूतिकाकी शुश्रूषा करनी चाहिये।

चित्र नं० ३४

नव मासका गर्भ ।

[देखो पृष्ठ १०३]

जोड़ बच्चे

अनेक स्त्रियां कभीकभी एकसे अधिक बच्चोको भी जन्म देती है। दो बच्चोंका उत्पन्न होना तो एक स्वाभाविक बात मानी जाती है, क्योंकि अनेक स्त्रियोंको दो बच्चे उत्पन्न हुआ करते हैं, परन्तु कभी कभी कोई स्त्री तीन या चार बच्चोंको भी जन्म देती है और यह बात बड़े आश्चर्यके साथ सुनी जाती है।

प्रसव कर्म समाप्त होनेके बाद प्रसूताका पेट हाथसे दबाकर देखना चाहिये। यदि पेट ज्योका त्यो फूला हुआ मालूम हो, तो समझना चाहिये, कि अभी प्रसूताके पेटमे और बच्चा है। इसके अतिरिक्त प्रसूताके पेटमे हाथ डालकर देखनेसे भी इस बातका विश्वास होता है, क्योंकि बच्चेके अग हाथसे टटोलनेपर स्पष्ट मालूम होते है।

यदि इस बातका विश्वास हो जाय, कि प्रसूताके पेटमे दूसरा बच्चा है, तो दाईको आध घंटेके करीब निश्चेष्ट होकर बैठ रहना चाहिये। पहला बच्चा भूमिष्ठ होनेके बाद प्रायः इतने समयके अन्दर एक तीव्र वेदनाके साथ दूसरा बच्चा आप ही आप भूमिष्ठ हो जाता है। यह एक साधारण नियम है, कि पहला बच्चा आसानीसे उत्पन्न होता है, तो दूसरा बच्चा भी आसानीसे उत्पन्न होता है और पहले बच्चेको उत्पन्न होनेमे कठिनाई पड़ती है, तो दूसरा बच्चा भी कठिनाईके साथ उत्पन्न होता है।

यदि आध घण्टेमे दूसरे बच्चेका जन्म न हो, तो दाईको तुरन्त उसे भूमिष्ठ करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। अधिक विलम्ब करनेसे अनेक बार जोरोंके साथ रक्तस्राव होने लगता है और बच्चा पेट हीमे मर जाता है। इसके अतिरिक्त पहले बच्चेको जन्म देते समय गर्भाशयका मुँह वगैरह खुलकर जो प्रशस्त प्रसव-मार्ग तैयार होता है, वह विलम्ब होनेसे क्रमशः संकुचित हो जाता है। इससे फिर बच्चेको उत्पन्न होनेमे बड़ी कठिनाई पड़ती हैं और यदि दुर्भाग्यवश पहले बच्चेका शिर न निकल कर कोई दूसरा अंग बाहर निकलता है, तो प्रसूताको जानके लाले पड़ जाते हैं।

यदि आध घण्टेके अन्दर आप ही आप दूसरा बच्चा उत्पन्न न हो, तो दाईको प्रसूताके गर्भाशयमें हाथ डालकर झिल्ली फोड़ देनी चाहिये। झिल्ली फोड़ देनेसे गर्भोदक किंवा जल निकलने लगता हैं और शीघ्र ही एक तीव्र वेदनाके साथ बच्चा निकल पड़ता है। गर्भाशयका मुँह पहले हीसे खुला रहता है, अतः इस बार गर्भिणीको विशेष कष्ट भी नहीं होता।)

पहले बच्चेका जन्म होनेके बाद प्रसूताको कुछ विश्राम न मिलकर शीघ्र ही एकके बाद एक बच्चा उत्पन्न होता है, तो प्रसूता अधमरी हो जाती है। इस अवस्थामें प्रसूताको अच्छी तरह विश्राम देनेकी आवश्यकता रहती है।

जोड़ बच्चे गर्भाशयमें दो तरहसे रहते हैं। (देखो चित्र न० ३६ और ३७)—एक तो दोनोंके शिर नीचेकी तरफ और दूसरे एकका शिर और दूसरेके पैर नीचेकी तरफ। यदि दोनों बच्चोंके शिर नीचेकी तरफ रहते हैं, तो दोनो बच्चे शिरके बल उत्पन्न होते हैं और यदि एकका शिर और दूसरेके पैर नीचेकी ओर होते हैं, तो एक बच्चेका शिर और दूसरे बच्चेके पैर पहले निकलते हैं। अधिकांश बच्चे इसी तरह उत्पन्न होते हैं (देखो चित्र न० ३८)

शिरके बल पहले बच्चेका जन्म हो जानेके बाद जब

दूसरे बच्चे के पैर निकलते हैं, तब दाईको जरा सावधानीसे काम लेना पड़ता हैं। सावधानी न रखनेसे बच्चेका प्राणान्त हो जानेकी सम्भावना रहती है। चतुर दाईको चाहिये कि यदि झिल्ली फोड़ देनेके बाद भी बच्चेका जन्म न हो, तो उसके पैर पकड़कर धीरेसे नीचेकी ओर उतार ले। यदि पैर नीचेकी ओर न हो और बालक इधर उधर घूमा हुआ हो, तो उसे धीरेसे घुमाकर ठीक कर लेना पड़ता है। ध्यान रहे, कि यह काम बड़ी ही सावधानीसे करनेका है और चतुर दाई ही इसे साङ्गोपाङ्ग पार उतार सकती हैं। चाहे आप ही आप बच्चेके पैर निकलें और चाहे हाथसे निकालने पड़े, परन्तु पैर निकलनेके बाद फिर उसे खींचना न चाहिये। यदि पीड़ा नियमितरूपसे होती रहेगी, तो बच्चा आप ही आप निकल आवेगा। यदि पीड़ा बहुत मन्द हो या बिलकुल ही न हो और बच्चेको निकलनेमे देर हो रही हो, तो तुरन्त प्रसूताको एक रत्ती इपीका खिला देना चाहिये। इपीका खिलानेके बाद प्रसूताके पेटपर धीरे धीरे हाथ फेरते रहनेसे पुनः नियमित वेदना आरम्भ होती है और बच्चा आसानीसे निकल आता है।

बच्चेके पैर पतले होते है अतः आसानीसे निकल आते हैं। उस समयतक प्रसूता या दाईको किसी प्रकारका

कष्ट नहीं होता। परन्तु नितम्ब पैरोंकी अपेक्षा बहुत मोटे होते हैं अतः आसानीसे नहीं निकलते। यदि इनके निकलनेमें देर होती हो, तो दोनों पैरके बीचमें उंगली फँसा कर जिस समय पीड़ा उठे, उस समय बच्चेको धीरेसे बाहरकी ओर खींचना चाहिये। खींचते समय प्रसव-द्वारके नीचे सियनकी रक्षा करनेके लिये हाथका रखना परमावश्यक है।

नितम्ब निकल आनेके बाद दाईको और भी सावधानी रखनी पड़ती है, क्योंकि पेट निकलते समय नालपर दबाव पड़ता है और उस समय नाल ढीली नहीं करदी जाती, तो बच्चेका दम घुट जाता है। इस सम्बन्धमें हम पहले ही कह चुके हैं, कि बच्चा नालहीसे श्वास लेता है। यदि नाल दब जाती है, या उसपर खिंचाव पड़ता है, तो बच्चेकी वही हालत होती है, जो मनुष्यका गला घोंट देनेसे होती है। बच्चेको इस विपत्तिसे बचानेके लिये नालको समेट कर चतुर दाइयां उसे प्रसूताकी पीठके पास अन्दरकी तरफ एक खाली स्थानमे रख देती हैं और बारंबार देखती रहती हैं, कि नालपर दबाव या खिंचाव तो नहीं पड़ रहा। यदि पड़ता हुआ मालूम होता है, तो वे उसे ठीक कर देती हैं।

यदि बच्चेकी नालपर दबाव पड़ता है, तो उसकी धड़कन मन्द पड़ जाती है और बच्चा हाफने लगता है। यदि

दैवयोगसे ऐसा हो जाय, तो फिर विलम्ब न कर तुरन्त हाथसे बच्चेका शिर बाहर निकाल लेना चाहिये। देर करनेसे बच्चेका शरीरान्त हो जाता है।

यदि नालपर दबाव नहीं पड़ता और बच्चेका पेट व छाती आसानीसे बाहर आ जाती है, तो फिर बच्चेका शिर निकलनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं पडती है, क्योंकि पेट और छाती निकलनेसे प्रसवमार्ग इतना प्रशस्त हो जाता है, कि शिर आसानीसे बाहर निकल आता है। अधिकांश मूर्ख दाइयां बच्चेके पैर निकलते ही उसे खींचना आरम्भ कर देती हैं। यद्यपि इससे बच्चेका शरीर शीघ्र ही बाहर निकल आता है, परन्तु कभी कभी शिर निकलते समय झटकेके कारण बच्चेकी गरदन टूट जाती है और वह उसी समय समाप्त हो जाता है।

जब किसी बच्चेके पैर पहले निकलते है, तो उसका शिर निकलनेमे अवश्य कठिनाई पडती है, क्योंकि झिल्लीका समस्त जल बाहर निकल जानेके कारण गर्भमे ऐसी कोई चीज नहीं रह जाती, जो बच्चेको ठेल कर बाहर निकाल दे। इसलिये बच्चेका शिर बहुधा दाईको खींच कर ही निकालना पडता है। खींचकर निकालनेका सहज तरीका यह है, कि बायें हाथकी एक या दो उंगलियां बच्चेके मुंहमे फंसाई

जायं और दाहिने हाथकी दो उंगलियां गरदनके पीछे लगाई जाय। इस तरह दोनो तरफ उंगलियोंका सहारा देकर दोनों हाथोंसे समान बल लगाते हुए धीरे धीरे शिर बाहर निकालना चाहिये। अनेक दाइयां कन्धे पकड कर खींचती हैं, परन्तु इससे गरदन टूट जानेकी संभावना रहती है।

बच्चेके दोनों हाथ उसकी छातीसे सटे रहते हैं। जन्म होते समय यदि बेजा खींचतान नही की जाती, तो वह दोनो बगलसे सटकर बाहर निकल आते हैं, परन्तु अनावश्यक खींचतान या किसी दूसरे कारणसे कभी कभी यह शिरपर चढ़ जाते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें ठीक न कर देनेसे प्रसव बहुत कष्टदायक हो पडता है। दाईको चाहिये, कि पेट निकलनेके बाद यदि हाथ न निकलें, तो मुंहकी ओरसे यत्नपूर्वक हाथ नीचेकी ओर कर दे। जन्म होनेके बाद यदि बच्चा तुरन्त न रोवे, तो उन्हीं उपायोका अवलम्बन करना चाहिये, जो प्रसवकी तृतीयावस्थामे बतलाये जा चुके हैं।

जब गर्भिणीके पेटमे दो बच्चे होते हैं, तो दोनोंकी आंवल किंवा कमल पृथक पृथक होते हैं। पहले बच्चेका जन्म होनेके बाद उसका कमल बहुधा आपहीसे आप गिर पडता है। यदि न गिरे, तब भी किसी प्रकारकी चिन्ता न कर दूसरे बच्चेके जन्म होनेतक राह देखनी चाहिये।

यदि कमल खींचकर निकालनेकी चेष्टा की जाती है, तो प्रसूतिकाको इतना रक्तस्राव होने लगता है, कि उसकी जान खतरेमे पड जाती है। दूसरे बच्चेका जन्म हो जानेके बाद प्रसूताका पेट एक कपड़ेसे बांध देना चाहिये और हाथसे भी दबाये रहना चाहिये। यदि इतना करनेपर आंवल न गिरे, और उत्तरोत्तर देर होती जा रही हो, तो यथानियम उसे गिरानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

एकके बाद एक बच्चा उत्पन्न होनेके कारण गर्भाशयकी मांसपेशियां इतनी शिथिल हो जाती हैं, कि उनमें शीघ्र संकुचित होनेकी शक्ति नहीं रहती। हम पहले ही कह चुके हैं, कि अर्गट आफ राई नामक अंग्रेजी औषधिमें गर्भाशयको संकुचित करनेका आश्चर्यजनक गुण है. अतः दूसरे बच्चेका जन्म होनेके बाद तुरन्त ही दस बारह रत्तीकी पुड़िया पाव भर ठण्डे पानीके साथ खिला देनी चाहिये। इससे शीघ्र ही आंवल गिर जाती है, रक्तस्राव बन्द हो जाता है और गर्भाशय सिकुड़कर अपनी पूर्वावस्थामें आ जाता है।

परमात्माकी लीला अपरम्पार है। कभी कभी उसकी लीलाका निदर्शन करानेके लिये तीन तीन या चार चार बच्चे तक उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्थामे—खासकर जहां शिक्षित दाइयां नहीं मिलती—प्रसूताओंका प्राण संकटमे

पड जाता है। कभी कभी यह वच्चे एकके बाद एक कुछ ही समयके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं और कभी कभी एक बच्चा आज तो दूसरा कल या दो एक सप्ताहके बाद उत्पन्न होता है। कभी कभी ऐसे वच्चे उत्पन्न होते हैं, जिनके चार हाथ पैर या दो शिर होते हैं (देखो चित्र नं० ३६) कभी कभी दो वच्चोंका शरीर पेटके पास एक दूसरेसे जुड़ा होता है। ऐसे वच्चे कष्टके साथ भूमिष्ट होते हैं और बहुधा भूमिष्ट होनेके पहले ही या भूमिष्ट होनेके बाद कुछ ही क्षणमे इहलोकसे चल बसते हैं।

पाश्चात्य देशोमे वच्चे बहुत ही यत्नपूर्वक प्रसव कराये और पाले जाते हैं, अत. वहां एक साथ ही तीन तीन या चार चार वच्चे उत्पन्न होने पर भी वह जीवित रहते हैं; परन्तु हमारे देशमे यदि एक साथ दो वच्चे उत्पन्न होते हैं, तो उन्हें भी जिलाना कठिन हो पडता है। वच्चोका जिलाना तो दरकिनार रहा, प्रसवके समय प्रसूताको भी ऐसी असुविधा और कठिनाइयोका सामना करना पड़ता है, कि वह प्रसूतिगृहसे प्रसूत आदिक प्राणघातक व्याधियां अपने साथ ही लेकर निकलती है। नि.सन्देह यह अवस्था बहुत ही शोचनीय है। इससे परित्राण पाना परमावश्यक है, परन्तु हम अनेक वार कह चुके हैं और फिर भी एक वार

कहते हैं, कि जबतक प्रत्येक स्त्री पुरुष इन सब बातोंका ज्ञान प्राप्त कर स्वयं चेष्टा न करेंगे, तबतक इन यन्त्रणाओंसे वे परित्राण न पा सकेंगे। प्रसव-काल तक प्रसूता और उसके सम्बन्धियोंका क्या कर्त्तव्य होना चाहिये, यह हम अंकित कर चुके। अब प्रसव होनेके बाद प्रसूता और बच्चेका किस प्रकार रक्षण करना चाहिये—यह संक्षेपमें अंकित कर हम पुस्तककी परिसमाप्ति करेंगे।

२२

माताका तत्वावधान
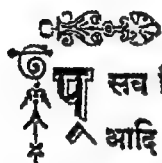
प्रसव क्रिया सानन्द समाप्त होने और कमल आदि गिर जानेके बाद प्रसूतिकाका बिछौना और उसके कपड़े बदल देना चाहिये। इसके बाद उसे गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। स्नान करानेसे क्लान्ति दूर होकर शरीर हलका हो जाता है और इसके फलस्वरूप प्रसूतिकाको गहरी नींद आ जाती है।

प्रसव होनेके बाद प्रसूताका कष्ट बहुत कुछ लाघव हो जाने पर भी उसे विश्रामकी सबसे अधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः पहले कई दिनोंतक दर्शकोंको आने देना उसके लिये बहुत ही कष्टदायक होता है। खासकर जब प्रसूतिगृह बहुत छोटा होता है और उसमे एक ओर धूनी धधकती है, दूसरी ओर कूड़ेका ढेर लगा रहता है और तीसरी ओर टोले महल्लेकी स्त्रियां आकर उसे घेर लेती

हैं, तब प्रसूतिका घबड़ा उठती है। उसे सांस लेनेको खुली और साफ हवा तक नहीं मिलती और इसके फल स्वरूप उसका स्वास्थ्य सुधरनेकी बजाय बिगड़ता ही चला जाता ।

सांस लेनेकी पूरी स्वतन्त्रता मिले विना प्रसूतिका अपनी खोई हुई शक्तिको वापस नहीं लौटा सकती। उस समय वह चाहे जितनी स्वस्थ और प्रसन्न मालूम होती हो, परन्तु उसे पूरी शान्तिके साथ रहना ही अच्छा है। अनेक वार ऐसा भी होता है, कि प्रसूतायें पीडित और दुर्वल होते हुए भी ऊपरी प्रसन्नतासे उसे छिपानेकी चेष्टा करती हैं और व्यर्थके परिश्रमसे अपनी अवस्था और भी खराब बना लेती हैं। इस समय प्रसूताको आरामके साथ लेट रहनेके सिवा और कुछ भी न करना चाहिये। लेटते समय उसे अपने दोनो पैरोंको एक दूसरेसे सटा रखना चाहिये और समूचे शरीरको यथासम्भव स्थिर और शान्त रखना चाहिये। हाथको जरा भी हिलाने या बालोंको संवारनेकी चेष्टा करनेसे शरीरके व्यथित अंगोंपर खिंचाव पड़ सकता हैं और उससे उनकी व्यथामें वृद्धि हो सकती है।

प्रसव होनेके बाद प्रसूताके पेटपर पट्टी बांधनेकी प्रथा है। हम भी बीसवें अध्यायमें इसका उल्लेख कर चुके हैं,

परन्तु हमलोगोंके यहां यह कार्य जितनी बेहूदगीके साथ होता है, उसको देखते हुए इससे कोई वास्तविक लाभ होता है या नहीं, सो नहीं कहा जा सकता। दाई मोटा-झोटा और मैला कुचैला जो कपड़ा मिला वही प्रसूताके पेटपर लपेट देती है और एक ओर गांठ लगाकर अलग हो जाती है। यह बन्धन घंटे दो घ टेमे ढीला पड़ जाता है और पसीनेके कारण उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। इस अवस्थामें उससे सिवा कष्टके प्रसूताको कोई आराम नही मिलता।

प्रसवके कारण पेटके स्नायु दुर्बल और ढीले पड़ जाते हैं। गर्भाशय बड़ा हो जाता है और पेटकी चमडी झूल पड़ती है। इन सब दोषोंको दूर करनेके लिये ही उपरोक्त बन्धनकी योजना की गयी है, परन्तु डाक्टर कावेनका कथन है, कि जो स्त्रियां पूर्ण स्वस्थ और निरोग होती हैं, प्रसवके कारण न तो उनके स्नायु ही ढीले पड़ते हैं, न चमड़ी ही झूलती है। अतः ऐसी स्त्रियोंके लिये बन्धनकी कोई आवश्यकता ही नहीं है; और यदि हो, तो बन्धन ऐसा होना चाहिये, जिससे उपरोक्त दोष दूर किये जा सके।

उनका कथन हैं, कि सूखा कपड़ा लपेटनेकी अपेक्षा एक साफ कपड़ेको ठंढे पानीमें भिगोकर पेड़ू और जननेन्द्रिय-

पर रखना या निचोकर पेटके चारो ओर लपेटना अधिक श्रेयस्कर है। इससे प्रसूतिकाको सर्दी या बुखार नहीं होता, बल्कि आराम मिलता है, क्योंकि यह मानी हुई बात है, कि शीतलताके कारण स्नायु और गर्भाशयको संकुचित होनेमे सहायता मिलती है। खैर, यदि किसीको गीला कपड़ा रखनेमे आपत्ति हो, तो सूखा बन्धन ही काममें ला सकता है, परन्तु यह बन्धन खूब साफ-सूफ, पर्याप्त लम्बा और आवश्यकतानुसार चौड़ा होना चाहिये। उसमे गांठ लगानेकी अपेक्षा उसे आलपीनोंसे अटका देना अधिक अच्छा है, परन्तु बन्धन चाहे गीला हो चाहे सूखा, उसे बारंबार अवश्य बदलते रहना चाहिये। गीले कपड़ेको बारंबार भिगोकर निचोड़ लेना चाहिये और सूखे कपड़ेको बदल देना चाहिये। गरमीके दिनोमे सूखा बन्धन दिनमे कईबार और अन्यान्य ऋतुओंमे कमसे कम एक बार अवश्य बदलना चाहिये, ताकि पसीनेसे वह खराब न हो।

प्रसवके बाद प्रसूताको स्नान कराने, कपड़े बदलाने बिछौना उठाने या बन्धन लगानेके समय उसे किसी प्रकारका कष्ट न हो, इस बातपर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जो स्त्रियां स्वस्थ और निरोग होती हैं, उन्हे यदि कुछ कष्ट भी

-होता है, तो वे आसानीसे सहन कर लेती हैं, परन्तु जो स्त्रियां दुर्बल और क्षीण होती हैं, उन्हें जरासा कष्ट होते ही रक्तस्राव होने लगता है, अतः जहांतक हो सके, उन्हें इस कष्टसे बचाना चाहिये।

हमलोगोंके यहां प्रसूतिगृहमें आग रखनेकी प्रथा है। इसका वास्तविक उद्देश्य प्रसूतिगृहको गरम रखना है, परन्तु यह काम भी इतनी बेवकूफीके साथ किया जाता है, कि लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। पहली बात तो यह है, कि यदि गरमीके दिन हों तो प्रसूतिगृहमें आग रखना ही व्यर्थ है, क्योंकि धूपकी तेजीके कारण जो गरमी पड़ती है, वही इतनी अधिक होती है, कि हमलोग बैठने उठनेके लिये ठंढी जगह पसन्द करते हैं और एक क्षण भी हाथसे पंखा नहीं छोड़ते। ऐसी अवस्थामें प्रसूतिगृहको और गरम बनाना, विचारी प्रसूताका प्राण लेना है।

लोग केवल प्रसूतिगृहमें ही अग्नि रखकर सन्तोष नहीं मानते, बल्कि प्रसूताको उसका सेवन भी कराते हैं। यदि जाड़ेके दिन हों, तो उचित मात्रामें अग्नि सेवनका समर्थन किया जा सकता है, परन्तु गरमीके दिनोंमें प्रसूतिकाकी खाटके नीचे आगसे धधकती हुई अंगीठी रख, जो लोग प्रसूता और नवजात बच्चेको अकारण ही भून डालते हैं, वे

निःसन्देह उनपर अत्याचार करते हैं। प्रसूतिका तो इसे किसी प्रकार सहन भी कर लेती है, परन्तु विचारे बच्चे के लिये यह असह्य हो पडता है—यहांतक कि कभी-कभी उसके समूचे शरीरमे छालेतक पड जाते हैं। लोग इसे गरमी फूटना या और कोई दोष समझते है, परन्तु इस विचित्र प्रथाकी ओर उनका ध्यान आकर्षित नही होता। हमे एक घटना अच्छी तरह याद है, कि एक प्रसूताके नीचे इसी तरह अग्नि रख दी गई थी। रातका वक्त था। घरके सब आदमी सो रहे थे। प्रसूताको भी नींद आ गयी। आगसे पहले खाट और गूदडी जली, बादको बच्चा जला और अन्तमें जब प्रसूता जलने लगी, तब उसकी नींद खुली। वह तो किसी तरह बच गयी, परन्तु अबोध बालक मन ही मन इस प्रथाको कोसता हुआ चल बसा! न जाने इस तरह कितने बच्चोकी दुर्गति होती होगी और कितने बच्चे हमलोगोंकी विचित्र प्रथाओंके कारण प्राणत्याग करते होगे। हमे आशा है, कि यह सब पढ़कर लोग प्रसूतिका पर नही, तो कमसे कम उन मूक और अबोध बच्चोंपर अवश्य दया करेंगे।

एक बात और है। हमलोग जो प्राणवायु अपने सांस लेनेके काममें लाते हैं, अग्नि भी उसी प्राणवायुका भक्षण

चित्र नं० ३५

प्रसूताको लिटाने, सियनकी रक्षा करने और प्रसव करानेका तरीका।

[देखो पृष्ठ २०८]

करती है। इसलिये प्रसूतिगृहमे आग रखनेसे उसमे प्राण-वायुका अभाव हो जाता है और इससे प्रसूतिकाका स्वास्थ्य नष्ट होता है। प्रसूतिगृहमे धुआँ होने देना आग रखनेसे भी अधिक बुरा है, क्योंकि उससे समूचे सौरीघरकी वायु दूषित हो जाती है। इसलिये यदि आग रक्खी भी जाय, तो वह ऐसी होनी चाहिये, जिससे धुआँ न हो। लकड़ीका कोयला इसके लिये सबसे अच्छा है। यदि आगकी आवश्यकता हो, तो सौरीघरके बाहर ही पहले उसे सुलगा लेना चाहिये और जब धुआँ निकलना बन्द हो जाय, तब सौरीघरमे रख देना चाहिये। जाड़ेके दिनोंमे भी सौरीघर गरम हो जानेके बाद उसमेसे अग्नि हटा दी जाय, तो बहुत ही अच्छा है।

हमलोगोंके यहा अग्नि रखनेकी जो प्रथा हैं, वह प्राचीनकालसे प्रचलित है, परन्तु उन दिनो आजकलकी तरह धुआँ देनेवाली लकड़ियां, उपले या कण्डे न सुलगाये जाते थे, बल्कि निर्धूम्र अग्निमे चन्दन, गुग्गुल और लोबान प्रभृति वायुको शुद्ध करनेवाली सुगन्धित चीजे सुलगाई जाती थीं। यह प्रथा परम लाभदायक है, अत फिरसे इसका प्रचार हो तो वह परम वाञ्छनीय है।

प्रसूताको स्नान वगैरह करानेके सम्बन्धमे भी हमलोगोंके

यहां नाना प्रकारकी प्रथायें प्रचलित हैं। कहीं पण्डितोंसे मुहूर्त पूछ पूछकर स्नान कराया जाता है और कहीं दस बारह दिनतक प्रसूताको मैले और गन्दे कपड़ोंमें उसी तरह डाल रक्खा जाता है। प्रसूताको कब स्नान कराना चाहिये, यह पण्डित और ज्योतिषियोंसे नहीं, बल्कि वैद्य और डाक्टरोंसे पूछनेकी बात है। आरोग्य शास्त्रके नियमोंसे अनभिज्ञ बिचारे "पण्डितजी" क्या बतलावेंगे? उनसे इस सम्बन्धमें पूछनाही हमारी विपन्नताका परिचायक है।

जो स्त्रियां अपनी गर्भावस्थामें नियमित रूपसे प्रतिदिन स्नान करती रही हों, उन्हें प्रसव होनेके चार पांच दिन बादसे ही दैनिक स्नान कराया जा सकता है, परन्तु यह उसी अवस्थामें होना चाहिये जब इससे उन्हें हानि होनेकी सम्भावना न हो—उनमें सर्दी गर्मी बरदास्त करनेकी शक्ति हो। किन्तु प्रसूताका स्वास्थ्य अच्छा न हो, तो चाहे जितने मुहूर्त टल जांय, उसे कदापि स्नान न कराना चाहिये। स्नानके सम्बन्धमें यह समझना कि पांचवें, सातवें या ग्यारहवें तेरहवें आदि निर्धारित दिनोंमें ही—चाहे उस समय प्रसूताको ज्वर ही क्यों न आता हो—उसे स्नान कराना चाहिये, नितान्त भ्रममूलक है। आरोग्य शास्त्रमें ऐसा कोई नियम नहीं है। हां, प्रसूताका शरीर साफ रखना

परमावश्यक है, इसलिये यदि उसकी शारीरिक अवस्था स्नान कराने योग्य न हो, तो कमसे कम गरम जलमें एक कपड़ा भिगोकर उसका मैल अवश्य उतार लेना चाहिये।

आधुनिक डाक्टरोंका मत है, कि प्रसूताको कमसे कम दस दिनतक बिछौनेसे उठने भी न देना चाहिये, क्योंकि इससे रक्तस्राव बढ़जानेकी सम्भावना रहती है, हमने भी स्त्रियोंकी शारीरिक क्षीणता देखकर इसी मतका समर्थन किया है परन्तु जो स्त्रियां स्वस्थ और निरोग होती हैं, उन्हें चार पांच दिनके बाद रक्तस्रावका अधिक भय नहीं रहता, इसलिये उन्हें धीरेसे नहलाया जा सकता है। देहाती और जगली लोगोंकी स्त्रियां दस दिनतक शैय्या-सेवन कहां करती हैं? परन्तु नाजुक मिजाजकी कमजोर स्त्रियोंके लिये वास्तवमें रक्तस्रावका भय रहता है, इसलिये उन्हें सुला रखना और उसी अवस्थामे उनका शरीर पोंछ देना श्रेयस्कर है। स्नानके लिये सदैव गुनगुना पानी पसन्द करना चाहिये। बहुत गरम या ठण्ढे जलसे हानि होनेकी सम्भावना रहती है। स्नानके बाद प्रसूतिकाको आराम अवश्य करना चाहिये। यदि नींद आ जाय तो और भी अच्छा है।

प्रसवके बाद प्रसूताकी जननेन्द्रियसे कई दिनों तक एक

प्रकारका स्राव हुआ करता है। इसमे पहले कुछ कुछ रक्त मिला रहता है, परन्तु बादको उसका रंग पीला पड़ जाता है और परिमाण भी घट जाता है। जबतक यह स्राव होता रहे, तबतक जननेन्द्रियको बाहर और अन्दरसे प्रतिदिन दो बार अवश्य धोना चाहिये अन्यथा गन्दगीके कारण रोग होनेकी सम्भावना रहती है।

स्नानकी तरह प्रसूताको पथ्य देनेमे भी हमलोगोंके यहां परम्परागत प्रथाओसे काम लिया जाता है। गुजरातमे हलुवा, पंजाबमे खिचड़ी, बङ्गालमे भात मछली और युक्त-प्रान्तमे गुड़ सोंठ व दशमूलका काढ़ा ही प्रसूताका पथ्य बनाया जाता है। कहीं कहीं दस दिनतक कुछ भी खानेको नही दिया जाता और कही कहीं दूधका देना भी हानिकारक समझा जाता हैं। परन्तु यह सब अविचारपूर्ण प्रथाओंके अतिरिक्त और कुछ नही है। प्रसूताका पथ्य भी उसके स्वास्थ्य, उसकी प्रकृति और ऋतुके अनुसार निश्चित करना चाहिये। गुड़, सोंठ, और दशमूल प्रभृति गरम चीजोंसे प्रसूताको लाभ अवश्य होता है, परन्तु गरमीके दिनोमे, यह चीजें अधिक मात्रामे देनेसे प्रसूताकी जठराग्नि मन्द हो जाती हैं और इस प्रकार उसे लाभके बदले उलटी हानि होती है।

प्रसव होनेके बाद कमसे कम दो दिनोतक प्रसूताका आहार केवल दूध होना चाहिये। इसके बाद साबूदाना, दाल, भात, खिचड़ी प्रभृति हलकी चीजे और विकार-रहित फल दिये जा सकते है। सात आठ दिनके बाद घी और दस बारह दिनके बाद साधारण आहार दिया जा सकता है। दूध और घोका परिमाण उत्तरोत्तर बढ़ाते रहना चाहिये। परन्तु वह इतना न हो जाना चाहिये, कि बदहजमी या अजीर्ण हो जाय। प्रसवके बाद शारीरिक दुर्बलताके कारण प्रसूता घी और मालमसाले वाले पदार्थ हजम नहीं कर सकती, इसलिये इस प्रकारके पुष्टिकर पदार्थ तुरन्त न देकर कमसे कम पन्द्रह दिन बाद देने चाहिये। प्रसूताको भी चाहिये, कि प्रसवके बाद आहार विहारमे खूब नियमित रहे। खट्टी, कडवी और मिर्चमसालेवाली चटपटी चीजोसे दूर रहना चाहिये। भोजन यथा संभव सादा और हलका पसन्द करना चाहिये। बारह दिनके बाद यदि स्वास्थ्य और पाचन शक्ति अच्छी हो, तो पौष्टिक चीजोका भी सेवन करना चाहिये, परन्तु खूब सोच समझकर, गले तक ठूंस ठूंस कर नहीं।

प्रसवके बाद प्रसूताकी मूत्र प्रनाली साफ हो जाना परमावश्यक है। इसलिये उसे पेशाब करानेकी चेष्टा करनी

चाहिये। यदि प्रसव वेदना आरंभ होनेके बाद प्रसूताने पेशाब किया हो, तो प्रसवके बाद विलम्ब होनेपर अधिक चिन्ता न करनी चाहिये। परन्तु २४ घंटेमें यदि पेशाब न हो, तो पेशाब करानेकी कोई दवा देनी चाहिये।

पेशाबकी तरह प्रसूताको दस्त होना भी परमावश्यक है, परन्तु बहुधा प्रसव होनेके बाद दो तीन दिन तक प्रसूताको कब्जियत रहती है। इसके बाद यदि आप ही आप दस्त न हो, तो एक चम्मच अण्डीका तेल पिला देना चाहिये और तेल पिलानेपर दस्त न हो, तो किसी चिकित्सककी सलाह लेनी चाहिये।

प्रसवके बाद तीसरे या चौथे दिन प्रसूताके स्तनोंमे दूध उतरता है। उस समय वे कुछ बड़े और कठिन हो जाते हैं। कुछ कुछ दर्द भी होता है, परन्तु जब बच्चा दूध पीने लगता है और कुछ दूध निकल जाता है, तब यह दर्द अच्छा हो जाता है।

दूध उतरते समय अनेक स्त्रियोंका शिर और हाथ पैर दुखने लगते है और एकाध दिनके लिये बुखार भी आ जाता है। इसे दुग्ध-ज्वर कहते है। यह दूध उतरनेके ही कारण आता है। प्रसव वेदना आरम्भ होनेके समयसे लेकर दुग्ध-ज्वर आने तक प्रसूताको हलका, सादा और

परिमित भोजन देनेसे इसके कारण उसे अधिक कष्ट नही होता।

प्रसवके बाद प्रसूताके लिये आराम परमावश्यक है, अतः उसे कमसे कम दस दिनतक बिछौने पर अवश्य सुला रखना चाहिये। इसके बाद भी यदि सुयोग और सुविधा हो तो वह निश्चेष्टभावसे बिछौने पर पड़ी रह सकती है। यह सलाह इसलिये नही दी जाती, कि प्रसूताके शरीरमे कोई रोग होता है, बल्कि इसलिये दी जाती है, कि उस समय प्रसवके कारण उसके शरीरमे न जाने कितनी क्षीणता, दुर्बलता और थकावट रहती है; और उसपर ज़रा सा भी परिश्रम करनेसे उसका स्वास्थ्य भंग हो सकता है तथा अनेक प्रकारकी व्याधियां उसके शरीरमे प्रवेश कर सकती हैं।

अन्तमें, यह अध्याय समाप्त करनेके पहले हम हिन्दू समाजके एक घोर अन्यायकी ओर लोगोका ध्यान आकर्षित किये विना नही रह सकते। हमलोगोके यहां जच्चा अस्पर्श्य समझी जाती है। धर्मशास्त्रके आदेशानुसार उस समय उसे सूतक लग जाता है, अतः कोई उसके पास नही जाता। सब लोग डरते हैं, कि यदि हम छू लेंगे तो हमें स्नान करना पड़ेगा। फलतः मन्दभागिनी प्रसूतिका

एक अज्ञान दाईके हाथमें सौंप दी जाती है। वह सुबहशाम आती है और तेल वगैरह लगा कर चली जाती है। बादको सारा दिन और रात प्रसूताको अकेले ही बितानी पड़ती है और आवश्यक कार्य अनिच्छा होते हुए भी अपने ही हाथसे निपटाना पड़ता है। यदि उसे किसी चीजकी जरूरत पड़ती है, तो वह उसे दूर हीसे दे दी जाती है। न उसे अच्छा बिछौना मिलता है, न ओढ़ना मिलता है, न कपड़ा मिलता है, न और ही कोई परिचर्या होती है। बतलाइये, वह कितना घोर अन्याय है?

स्त्रियोंके जीवनमें प्रसवसे बढ़कर नाजुक घड़ी और कोई नहीं है। उस समय उनके जीवन मरणका प्रश्न उपस्थित होता है। जरासी असावधानीसे उस समय उनके प्राण पर आ बनती है। ऐसे समयमें उन्हें इस तरह निःसहायावस्थामें छोड़ देना कहांतक उचित कहा जा सकता है। अनेक बार उनकी इस दुरावस्थामें सास, ननँद या देवरानी जेठानीको बदला लेनेकी सूझती है। बस, फिर क्या पूछना है? न तो उन्हे खाना दिया जाता है न पीना। बात बातमें झिडकियां सुननी पडती हैं। यदि दैवयोगसे कहीं लडकीका जन्म हुआ, तो उनका हृदय वाग्बाणोंसे छेद छेद कर जर्जरित कर दिया जाता है।

ऐसी अवस्थामे वे प्रसूतिगृहसे रोगको अपने साथ ही लेकर बाहर निकलती हें और वह रोग ही अन्तमे मृत्युकी शान्तिमयी गोदमें प्रश्रय दिला कर उन्हें इन लौकिक यन्त्रणाओसे मुक्त करता है।

विचारी स्त्रियां अपने इन कष्टोंके लिये फरियाद भी नहीं करतीं। शायद वे जानती हैं, कि हमें दाद न मिलेगी, इसीलिये कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं करतीं। उनका हृदय विदीर्ण हो जाता हैं, परन्तु आंखमे पे आंसू नहीं लातीं। यातना असह्य हो पड़ती है, परन्तु मुँहसे आह तक नहीं निकालतीं। परन्तु यह अवस्था कबतक चल सकती है? हमलोग उनके इन कष्टोकी उपेक्षा कबतक कर सकते हैं? एक न एक दिन उनकी यह नीरव आहें प्रलय उपस्थित कर देंगी और उस समय पुरुष जातिको अपनी इस उदासीनता और कर्त्तव्य भ्रष्टताके लिये पश्चाताप अवश्य करना पडेगा।

प्रसवके समय प्रसूता संकटमे रहती है, अत. उस समय उसके साथ असहयोग कदापि न करना चाहिये। उस समय उसे आवश्यक: सहायता न देना—उसके साथ विश्वासघात करनेके समान है। केवल स्नान करनेके भयसे उसे नि.सहाय अवस्थामें छोड़ देना बहुत ही

अनुचित है। उस समय प्रसूता और उसके बच्चेको शुश्रूषा करना घरवालोंका प्रधान कर्तव्य होना चाहिये। छुआछूतके भयसे उन्हे मैले कुचैले और फटे पुराने कपड़े देना, यह और भी बुरा है। जिस बहू बेटीको आप कुललक्ष्मी और गृहदेवी समझते हैं, जिस बहू बेटी या स्त्रीसे बारहो महीने आप अपनी सेवा शुश्रूषा कराते हैं और जिस सन्तानको उत्पन्न करनेमे आप अपना गौरव समझते हैं, उस बहू बेटी या स्त्रीसे उसकी प्रसूतावस्थामे इस तरह दूर भागनेकी क्या आवश्यकता है? जो आपके दुःखमें सदैव भाग लेती है, उसके दुःखमे आप क्यो नहीं भाग लेते? यदि छुआछूत ही इसका एक मात्र कारण है, तो बारी बारीसे आपलोग उसकी परिचर्या कर सकते हैं। परिवारका प्रत्येक मनुष्य कुछ घण्टोतक उसकी सेवा शुश्रूषा करनेके बाद स्नान कर सकता है। इस तरह करनेसे प्रसूताके दिन आसानीसे कट सकते हैं और वह समझ सकती है, कि इस संसारमे मेरा भी कोई सुख दुःखका साथी है। इससे उसके हृदयको बड़ी शान्ति मिलती है और उस शान्तिके कारण वह शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ कर दूने प्रेमके साथ अपने परिजनोकी सेवा करनेको तैयार होती है। यदि स्त्रियोंके विपत्तिकालमे पुरुष इतना
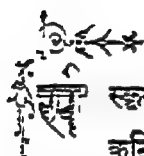
भी न कर सके, तो उन्हें सदैव उनसे दूर रहना चाहिये क्योंकि वे ही अपने पाशविक अत्याचार द्वारा उन्हे गर्भ-धारणके लिये वारंवार बाध्य करते हैं और वे ही उनकी इस शोचनीय अवस्थाका कारण बनते हैं।

संस्कृतमें एक उक्ति है, कि धनोपार्जन करना बहुत कठिन है। उपार्जन करनेके बाद उसकी रक्षा करना और भी कठिन है और रक्षा करनेके बाद उसे सुकृति-में लगाना उससे भी कठिन है। ठीक यही बात सन्तानके सम्बन्धमें भी घटित होती है, क्योंकि इस अज्ञानताके युगमें एक तो अच्छी सन्तानका उत्पन्न होना ही कठिन है, उत्पन्न करनेके बाद उसका पालन करना कठिन है और पालन होनेके बाद उसको चरित्रवान बनाना कठिन है।

हम लोग जिस तरह सन्तान उत्पन्न करना नहीं जानते, उसी तरह उसका पालन पोषण भी करना नहीं जानते। साथ ही यह काम कुछ सहज भी नहीं है, क्योंकि बच्चोंको चाहे भूख लगे, चाहे प्यास लगे चाहे पेट दुखे और चाहे

किसी दूसरे ही प्रकारका मन कष्ट हो—वे हर हालतमें रोनेके सिवा और कोई काम नहीं करते। रोना ही उनका पानी मांगना है, रोना ही खाना मांगना है और रोना ही मन. कष्ट तथा पीड़ाकी शिकायत करना है। उनके एक ही कार्यसे उनकी भिन्न भिन्न आवश्यकताओंको समझना और उन्हें पूर्ण करना सबके लिये साध्य नहीं है। इसीलिये सन्तान-पालनको हम कठिन काम समझते हैं।

सन्तान-पालनका काम इतना कठिन है, कि साधारण मनुष्य उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। हम तो यहांतक कह सकते हैं, कि माताके पूज्य पदपर अधिष्ठित होनेवाली हजार स्त्रियोंमें शायद ही एक स्त्री ऐसी मिलेगी जो उचित रीतिसे अपने बच्चोंका लालन पालन करती हो। यों तो कुतिया भी अपने बच्चोंको दूध पिलाकर गली गलीके टुकड़े खानेके लिये, उन्हें बड़े करके छोड़ देती है, परन्तु यह सन्तान-पालन नहीं है। वास्तविक सन्तान-पालन वह है कि जिससे बच्चेका उज्ज्वल भविष्य उसकी बाल्यावस्था-से ही झलक मारने लगे। सन्तान पालन किया था सती मदालसाने, जिसने अपने तीन पुत्रोंको अपनी शिक्षाके ही प्रभावसे त्यागी और एकको आदर्श नृपति बना दिया था। सन्तान पालन किया था नैपोलियनकी वीर माताने, जिसको

शिक्षाके प्रभावसे नैपोलियनकी नसनसमें वीरताका उष्ण रक्त प्रवाहित होने लगा था, सन्तान पालन किया था, साध्वी जिजाबाईने, जिसकी शिक्षाके प्रभावसे शिवाजीने छत्रपति होकर हिन्दुओंके शिखा सूत्रकी रक्षा की थी और सन्तान-पालन किया था ध्रुव, प्रह्लाद, अभिमन्यु, राम और कृष्ण प्रभृति पुराण प्रसिद्ध पुरुषोंकी माताओंने, जिनकी शिक्षा दीक्षाके प्रभावसे वे अपने देश और जातिका मुख उज्ज्वल कर अपना इहलोक तथा परलोक बना सके थे।

हमलोगोंको सन्तान पालन करना नहीं आता, इसका सबसे जबर्दस्त प्रमाण यह है कि हमारे देशमें आधेसे अधिक बच्चे अपने शैशवकालमे ही परलोकका मार्ग ग्रहण करते हैं। जिस तरह सन्तान उत्पन्न करनेका एक शास्त्र है, उसी तरह सन्तान-पालनका भी एक शास्त्र है। उस शास्त्रके नियमानुसार सन्तानको हृष्टपुष्ट और निरोग रखते हुए समुचित शिक्षा देकर इच्छानुसार बनाया जा सकता है और उसे इच्छित सांचेमे ढाला जा सकता है, परन्तु उस शास्त्रके नियमोंकी विस्तृत विवेचना कर अब हम इस पुस्तककी कलेवर-वृद्धि करना उचित नहीं समझते। हमने सन्तान-पालनके नामसे इस विषयकी एक स्वतन्त्र पुस्तक अपने पाठकोंको भेट करना स्थिर किया है, जिसमें हम इस विषय

~८ समुचित प्रकाश डालेंगे, फिर भी उन बातोंका हम यहा दिग्दर्शन करा देना उचित और आवश्यक समझते हैं, जिनके द्वारा नवजात शिशुके पालनमें बड़ी सहायता मिल सकता है। वह बात यह हैं :—

बच्चेके कोठेकी सफाई—जन्म होनेके बाद कुछ ही देरमे बच्चेको दस्त होता है। यदि न हो, तो समुचित उपचारो द्वारा दस्त करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। जरा सा अडीका तेल शहदमे मिलाकर बच्चेको चटा देनेसे उसे तुरन्त दस्त हो जाता है। दस्त न होनेसे अनेक वार बच्चेके हाथ पैर ऐंठ जाते हैं और उसकी मृत्यु हो जाती हैं। माताके नये दूधमे भी बच्चेको दस्त लानेकी शक्ति होती है, परन्तु दो तीन दिनोतक बहुधा उसके स्तनोमे दूध नहीं आता, अत· बच्चेको दस्त न आता हो, तो रोज एक वार उसे उपरोक्त प्रकारसे जरासा:अण्डीका तेल (Castor Oil) चटा देनेसे उसका कोठा साफ रहता हैं। इस प्रक्रियासे सिवा लाभके किसी प्रकारकी हानि नहीं हो सकती।

नाल—बच्चेकी नाल काटनेके बाद, उसे खूब सावधानीसे साफ कर, उसपर थोड़ी मुलायम रुई रख, एक पट्टीसे बांध देनी चाहिये। यह पट्टी रोज एक वार खोल कर देख लेना चाहिये, कि नाल सूख रही है या नहीं। कभी कभी किसी

दोषके कारण नाल पक जाती है। उस समय उसे खूब साफ रखना चाहिये और तिलका तेल या कोई घाव सुखाने वाला अच्छा पाउडर उसपर लगाते रहना चाहिये। इससे शीघ्र ही नाल सूखकर गिर पड़ती है।

बच्चेका स्नान—जिस समय बच्चेका जन्म होता है, उस समय उसका समूचा शरीर एक प्रकारके चिकने द्रवसे भरा रहता है, अतः बेसन या बढ़िया साबुन लगाकर उसे साफ कर देना चाहिये; और गर्म जलसे बच्चेको अच्छी तरह नहला देना चाहिये। ध्यान रहे, कि वह जल इतना गर्म न होना चाहिये, जिसे बच्चा सहन न कर सके। पीपल, गूलर, या बड़ आदि दूधवाले वृक्षोंकी छालको पानीमें खौलाकर उससे स्नान कराना अधिक लाभदायी है। चांदी या सोनेसे बुझाया हुआ जल भी गुणकारी होता है। जलमें ज़रा सा नमक मिलाकर बच्चेको स्नान करानेसे उसकी शक्ति बढ़ती है। शरीरको साफ करते समय उंगलीमें एक कपड़ा लपेटकर उससे बच्चेका मुंह भी साफ कर देना चाहिये। बच्चेको इस तरह साफसूफ करनेके बाद उसे शहदमें सोना घिसकर चटानेकी जो प्रथा है, वह परम लाभदायी है। इससे बच्चेकी शारीरिक शक्ति, आयुष्य और बुद्धि बढ़ती है। यदि तीन दिन

चित्र नं० ३६
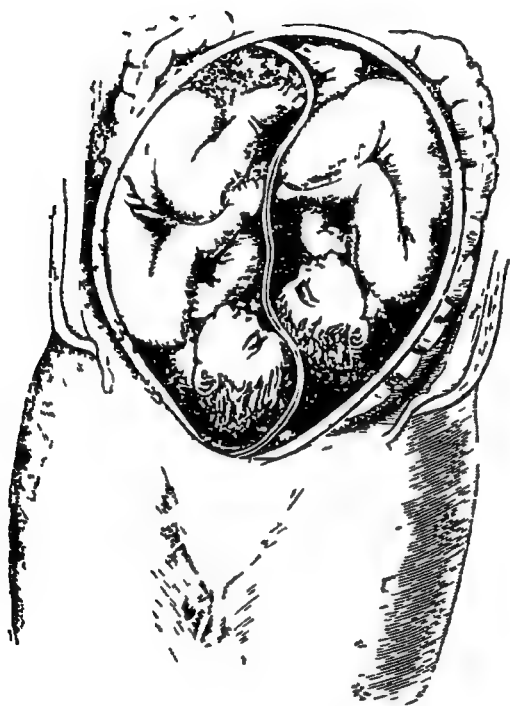
जोड बच्चे।

दोनोका शिर नीचेकी ओर है।

[देखो पृष्ठ २७५]

तक सुबह शाम जरा सा शहद और सोना इसी तरह चटाया जाय तो और भी अच्छा है।

दूध उतरना—दो तीन दिनके बाद माताके स्तनोंमे दूध उतरता है। यह दूध ही बच्चेका स्वाभाविक आहार है, अतः दूध उतरनेमें देरी हो, तो समुचित उपायो द्वारा उसे उतारनेकी चेष्टा करनी चाहिये। एरंडके पांच सात पत्ते एक सेर पानीके साथ मिट्टीके बर्तनमें उबालकर, उस पानीसे आध घण्टे तक स्तन धोने और बादको वह गरमागरम पत्ते स्तनोपर बांध देनेसे स्रोत खुल जाते हैं और दूध आने लगता है। यह प्रक्रिया चार पांच दिनतक करनी होती है। एक बरतनमे पानी खौलाकर, उसमे फलालैन का टुकड़ा भिगोकर वारंवार स्तनोंपर रखनेसे भी स्तन मुलायम होकर दूध उतर आता है। टुकड़ेको स्तनोंपर रखनेके पहले उसे भलीभांति निचोड़ देना चाहिये। प्रसूता-को दूध अथवा खीर प्रभृति दूधके बने हुए पदार्थ खिलानेसे उसके स्तनोंमे अधिक दूध आता है।

दूध न होनेका कारण—यदि प्रसूताका स्वास्थ्य साधा-रणतया अच्छा होता है और प्रसवके बाद उसे आवश्यक आराम मिलता है, तो उसके स्तनोंमें दूध आसानीसे उतर आता है, किन्तु यदि प्रसवके बाद उसे पूरा पूरा आराम

नहीं मिलता अथवा वह पहले हीसे क्षीणकाय किंवा व्याधि-ग्रस्त होती है, तब आसानीसे दूध नहीं उतरता। दूध उतरने पर भी यदि प्रसूता सौरीघरसे निकलते ही दुनिया भरका झमेला अपने सिरपर उठा लेती है, तो उसकी शक्ति अनेक भागोंमें बँट जाती है और उस अवस्थामें या तो दूध घट जाता है या उसके गुणमें अन्तर पड़ जाता है। इसलिये माताको अपने स्वास्थ्य एवम् पथ्यपर पूरा ध्यान रखना चाहिये और शरीर तथा मनको पूरा आराम और शान्ति देनी चाहिये, क्योंकि माताको अच्छा आहार और आराम मिलने एवम् सभी प्रकारसे उसका स्वास्थ्य सुधार-नेसे ही बच्चेको अच्छा दूध मिलनेकी सम्भावना रहती है।

बच्चेका आहार—माताका दूध ही बच्चेका स्वाभाविक आहार है, क्योंकि माताके दूधसे बच्चोंका जो उपकार होता है, वह और किसी चीजसे नहीं हो सकता। परन्तु माताके स्तनोंमे जबतक दूध न उतरे, तबतक बच्चेको गायका दूध दिया जा सकता है। दूधमें जितना दूध हो उतना हो पानी मिला लेना चाहिये, क्योंकि बच्चोंकी पाचनशक्ति स्वल्प होनेके कारण वह खालिस दूध नहीं पचा सकता। गाय बहुत दिनकी ब्याई न हो। दूध ताजा हो और पिलानेके पहले बहुत औटाया न जाय।

गायका दूध न मिलनेपर बकरीका दूध भी इसी तरहसे दिया सकता है।

दूध पिलानेकी विधि—बच्चेको दूध पिलानेके लिये कभी जल्दीमें झटकेसे न उठाना चाहिये, बल्कि जबतक बच्चा छोटा हो, तबतक माताको उसके पास लेट कर ही उसे दूध पिलाना चाहिये। पिलाते समय हाथसे जहांतक सम्भव हो, बच्चेको सारी पीठ पकड़ रखना चाहिये और बच्चेको सांस लेनेकी जगह छोड़ देनी चाहिये। जिन माताओंको दूध पिलाते समय ऊंघनेकी आदत हो, उन्हें इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योंकि बच्चेके फेफड़े बहुत नाजुक होते हैं अतः उनमें अधिक वायु नहीं प्रवेश कर सकती। ऐसी अवस्थामें सांस लेनेकी पूरी सुविधा न रहनेसे बच्चेका दम घुट जानेकी संभावना रहती है।

बच्चा जब दूध पीते-पीते सोने लगे, तो उसे किसी प्रकार जगाकर स्तनोंसे फिर लगा देना चाहिये अन्यथा वह भूखा रह जाता है और उसके आहारका कोई नियम नहीं रह जाता। यदि बालक स्वस्थ और हृष्टपुष्ट हो तो उसे न जगानेसे भी काम चल सकता है, परन्तु क्षीण-स्वास्थ्य वाले बच्चोंको उठाकर दूध पिलानेकी नितान्त आवश्यकता रहती है, क्योंकि शारीरिक दुर्बलताके

कारण वे अपने आप उठकर दूध पीनेका भी चेष्टा नहीं कर सकते।

दूध पिलानेका समय—जिस प्रकार बड़ी उम्रके मनुष्य अनियमित रूपसे दिनभर खाते रहनेसे बीमार पड़ते हैं, उसी तरह बच्चोंको भी बारंबार दूध पिलानेसे क़य,: अजीर्ण और उदरपीड़ा प्रभृति व्याधियां हो जाती हैं। अनेक स्त्रियोंको उन्हें बारंबार दूध पिलानेकी आदत होती है। बच्चा ज़रा भी रोता है, तो वे उसे भूखा समझ कर दूध पिलाने लगती हैं। वे यह नहीं सोचतीं, कि वह भूखके कारण रो रहा है या किसी दूसरे कारणसे। इस प्रकार दूध पिलानेसे बड़ी हानि होती है। मान लीजिये, कि बच्चा पेटमे दर्द होनेके कारण रो रहा है, उस समय उसे दूध पिलानेसे दर्द बढ़नेके सिवा कोई लाभ नहीं हो सकता। इसलिये बच्चा जब रोने लगे, तब इस बातपर विचार करना चाहिये, कि उसे दूध देनेकी आवश्यकता है या नहीं। यदि आवश्यकता हो तो उसे दूध पिलाना चाहिये अन्यथा किसी दूसरे उपायसे उसे शान्त करना चाहिये।

पहले महीनेमें दो घण्टेके अन्तरसे, दूसरे और तीसरे महीनेमें सवा दो से लेकर ढाई घण्टेके अन्तरसे और चौथे महीनेमें तीन घण्टेके अन्तरसे बच्चेको दूध पिलाना

चाहिये। छठे महिनेके बाद साढ़े तीन घण्टेके बाद देना ही यथेष्ट है।

पहले तीन या चार सप्ताहके बाद रातको दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिये। रातको दस बजे अच्छी तरह दूध पिलाकर सुला देनेसे फिर उसे रात भर दूध पिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं। सवेरे पांच या छः बजे फिर पिलाना ही यथेष्ट है। यदि रातको बालक जाग पड़े और रोने लगे तो उसे एक घूट पानी पिलाकर, बिछौना फिरसे झाड़ पोछकर आरामके साथ सुला देना चाहिये। इस प्रकार रातको दूध पीनेकी आदत छुड़ा देनेसे रातके समय बच्चेके वमन करनेकी भी सम्भावना नहीं रहती और माता तथा बच्चे—दोनोंको आरामसे छः सात घंटे सोनेका समय मिल जाता है।

हम लोगोंके यहां बच्चेको माताके साथ ही सुलानेकी जो प्रथा है, वह इस दृष्टिसे बहुत बुरी है, क्योंकि माताके समीप रहनेके कारण बच्चा बारंबार दूध पीनेके लिये लालायित होता है और इसके उससे स्वास्थ्यको हानि होती है। यदि माता अपने बच्चेको अपने साथ ही सुलाना चाहती हो, तो उसे अपने शरीरसे बिलकुल सटाकर सुलानेकी अपेक्षा, कुछ अन्तर पर सुलाना अधिक इच्छा है। इससे

एकतो बच्चेके हाथ पैर दबनेकी संभावना नहीं रहती, वह अच्छी तरह श्वासोच्छ्वास ले सकता है और बारंबार माताको दूध पिलानेके लिये भी बाध्य नहीं करता। रात-दिन दूध पिलाते रहनेसे पेटको विश्रान्ति न मिलनेके कारण न केवल बच्चेका ही स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, बल्कि माताका शरीर भी सूख कर कांटा हो जाता है, क्योंकि दूध और रक्त दोनों एक ही तत्वसे प्रस्तुत होते हैं। जब दूध बहुत निकलता है तब रक्तकी कमी पड़ जाती है।

माताका आहार—बच्चेकी माताको न केवल बच्चेके ही आहारपर ध्यान रखना चाहिये, बल्कि जिस समय वह दूध पिलाती हो उस समय उसे अपने आहार पर भी समुचित ध्यान रखना चाहिये। बच्चेकी माता जब अपने आहार पर उचित ध्यान नहीं देती, तब बच्चेका स्वास्थ्य तो खराब होता ही है, साथ ही माताका स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। बच्चोंको बचपनमें जो बीमारियां होती हैं, उनका मूल कारण बहुधा माताकी भोजन सम्बन्धी अनियमितता ही होती है। इसलिये यह बात सर्वदा ध्यानमें रखनी चाहिये। बच्चेके लालन पालनके साथ, माता यदि अपने आहारपर भी नियन्त्रण रखती है, तो बच्चा निःसन्देह सुखी और निरोग रहता है।

यदि बच्चेके आहार और लालन पालनमें जरा भी त्रुटि होती है, तो उसे रोने चिल्लानेकी आदत पड़ जाती है और अच्छी तरह नींद न आनेके कारण उसका स्वास्थ्य खराब ही बना रहता है। यदि बालक चिड़चिड़ा और रोवन स्वभावका हो जाय, तो इसके लिये उसकी माताको ही दोष देना चाहिये, क्योंकि उसीके आहार और लालन पालनकी त्रुटि अथवा गर्भावस्थामें उसीके चिड़चिड़े स्वभावके कारण बच्चा चिड़चिड़े स्वभावका हो जाता है। माता जैसा करती है वैसा ही उसे फल मिलता है। जिस घरके बालक अच्छे तत्वावधानमें रहते है और मातापिताके प्यार तथा यत्नके कारण जिन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, उनका जीवन सुखमय और स्वास्थ्य पूर्ण होता है—ठीक उसी तरह, जिस तरह बगीचेके फूल और लतापत्र सिंचाई प्रभृति:अच्छी परिचर्याके कारण तेजस्वी और हरे-भरे रहते हैं।

पीनेका पानी—पानी पीनेके सम्बन्धमें यह जानी हुई बात है, कि जिनकी देख रेखमे बच्चे रहते हैं, उनकी नासम-झीके कारण बच्चोंको अनेक बार प्याससे तड़पते रहना पडता है। क्योंकि वे जानने ही नहीं पाते, कि बच्चेको प्यास लगी है। प्यासके कारण जब बच्चा रोता है, तब

अनेक प्रकारसे उसे शान्त करनेकी चेष्टा की जाती है, परन्तु यह सीधी बात किसीको नहीं सूझती, कि उसे थोड़ासा पानी पिला दें, जिससे वह तुरन्त शान्त हो जाय। बड़ी उम्रके मनुष्योंकी तरह बच्चोंको भी प्यास लगती है और गरमीके दिनोंमें तथा ज्वर आनेपर वे भी हमारी ही तरह तृषासे व्याकुल हो उठते हैं। प्यास लगनेपर उन्हें थोड़ासा निर्मल जल पिला देनेसे किसी प्रकारकी हानि न होकर लाभ ही होता है, क्योंकि वह बच्चोंकी अन्त्रावली और नलोंको भी साफ कर देता है।

आराम—बच्चेके भोजन और पानीपर ध्यान रखनेके बाद उसके नियमित आरामपर ध्यान रखना चाहिये। जब कभी बालक रोवे, तब उसका यही कारण नहीं समझना चाहिये, कि वह भूखा है, क्योंकि उसको भी अनेक प्रकारकी असुविधाओंके कारण शारीरिक या मानसिक कष्ट होता है। बिछौना या तकियेकी असुविधा, पीठके नीचे कपड़े की गांठ, आवश्यकतासे अधिक गर्मी या जाड़ा, शारीरिक अस्वस्थता आदि सभी बातें बालकोंके आराममें व्याघात पहुंचाती हैं और उनके कारण वह रोते हैं। अतः माता-पिताओंको उनकी इन असुविधाओंका पता लगाकर उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करते रहना चाहिये। बच्चोंको जो

कपड़े पहनाये जायँ, उनके बटन या बन्धन पीठकी ओर न रख सामने रखना चाहिये। क्योंकि पीठपर रहनेसे वह सोते समय गड़ते हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिये, कि बच्चेमे एक ही आसनसे अधिक समयतक सोनेकी क्षमता नहीं होती, अतः थोड़ी थोड़ी देरके अन्तरसे उनका आसन बदल कर उसे कभी चित्त, कभी दायीं और कभी बायीं करवट सुलाना चाहिये।

धाई—जिस समय बच्चा बहुत छोटा होता है और चम्मचसे दूध नहीं पी सकता, उस समय यदि माताके स्तनोंमें यथेष्ट दूध नहीं होता तो या तो धाई नौकर रखनी पड़ती है या बच्चेको शीशीसे दूध पिलाना पड़ता है। धाइयां बड़ी मुश्किलसे मिलती हैं और सर्वसाधारण उन्हे नौकर भी नहीं रख सकते। परन्तु जिन लोगोंने उन्हें नौकर रखनेका सामर्थ्य हो, उन्हें भी जहांतक हो सके, अपने बच्चोको उनका दूध न पिलाना चाहिये। यदि बच्चेकी दुर्बलता और भग्न स्वास्थ्यके कारण धाईका रखना अनिवार्य हो जाय, तो ऐसी धाई खोजना चाहिये, जिसका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा हो। बिना उसके शारीरिक स्वास्थ्य और चरित्रकी जांच किये उसे नौकर रखना ठीक नहीं। नौकर रखनेके बाद धाईको बच्चेकी माताके घरमें

उसकी आंखोंके ही सामने सुलाना चाहिये। उसे जो भोजन दिया जाय वह स्वादिष्ट, स्वास्थ्यकर और विकार रहित हो। दूध और दूधसे बनी हुई चीजें उसे अधिक परिमाणमें खिलानी चाहिये, क्योंकि इससे दूध अधिक होता है।

धाईके शारीरिक स्वास्थ्य और चरित्र प्रभृति बातोंपर विचार करनेका कारण यह है, कि उसके दूधका बच्चेपर बहुत स्थायी प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि बच्चेकी माता या धाईके खानपान, आचार विचार, गुण अवगुण और स्वास्थ्य प्रभृतिका उसके दूधपर प्रभाव पड़ता है और वह दूध पीनेके कारण वही बातें बच्चेमें उतर पड़ती हैं। इसीलिये दाईको नौकर रखनेपर उसके स्वास्थ्य और चरित्र आदि बातोंपर विचार करना चाहिये, ताकि वही दुर्गुण बच्चेमें न आ जायँ।

शीशी—जब माताके दूध न होने या मर जानेके कारण दूधमुंहे बच्चेका पालन-भार किसी दूसरे पर आ पड़ता है, तब उसे शीशीसे दूध पिलानेमें बड़ी सुविधा रहती है। बाजारमें शीशियां कई प्रकारकी बिकती हैं, परन्तु किश्ती-नुमा जो लंबी शीशियां बिकती हैं, वह कई कारणोंसे अच्छी होती हैं। इन शीशियोंके एक ओर रबर लगाया जाता है

और उसीको बच्चा चूस-चूसकर दुग्धपान करता है। यदि किसीको यह शीशी व्यवहार करनी पड़े, तो उसे व्यवहार करते समय प्रतिदिन अच्छी तरहसे धो लेना चाहिये। रबर भी रोज साफ करते रहना चाहिये। शीशी या रबर भलीभाँति साफ न करनेसे उसमें दुर्गन्ध आने लगती है और अनेक प्रकारके रोगोत्पादक कीटाणु उसमें अपना घर बना लेत हैं।

यदि बालक बहुत जल्दी-जल्दी दूध पीता हो, तो उसकी शीशीके लिये तीन छेदवाला रबर लेना चाहिये, ताकि बालक चूसते समय अधिक दूध पा सके। जिस समय बच्चा दूध पीता हो, उस समय शीशीको इस तरह पकड़ रखना चाहिये, जिससे उसे दूध मिलनेमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े। साथ ही दो चार घूंट पीनेके बाद क्षणभरके लिये बच्चेके मुंहमें दूधका जाना रोक देना चाहिये, ताकि वह सांस ले सके। दूध पिलानेके बाद शीशीको भलीभांति धोकर रखना चाहिये और आवश्यकता पड़ने पर पुनः ताजा दूध भरकर काममे लाना चाहिये।

बच्चोंके नाना पथ्य—बच्चोंके पोषणकी तीन अवस्थायें हैं (१) केवल दूध देनेकी अवस्था। यह जन्मसे लेकर दांत निकलने तक अर्थात् एक वर्षके लगभगकी मानी जाती

है (२) दूधके साथ साथ अन्न देनेकी अवस्था। यह अवस्था तीसरे वर्षतक चलती है और (३) खालिस अन्न देनेकी अवस्था। यह तीसरे वर्षके बादसे गिनी जाती है। इस अवस्थामे बच्चेको यदि दूध न देकर केवल अन्न ही दिया जाय, तब भी उसे कोई हानि नहीं होती।

हमलोगोंके यहां प्रायः छठें महीनेसे बच्चेको अन्न दिया जाने लगता है, परन्तु यह ठीक नहीं। यदि हो सके तो साल भर तक बच्चेको केवल दूध ही देना चाहिये, क्योंकि उस समय तक बच्चोंकी पाचनशक्ति ऐसी नहीं होती जो उसे अन्न हजम हो सके।

अनेक स्त्रियां अपने बच्चेको हृष्टपुष्ट बनानेके लिये उसे नाना प्रकारका पक्वान्न खिलाती है, परन्तु इससे बच्चेकी पाचन क्रियामे व्याघात पड़ जाता है, फलतः बच्चा मोटा होनेके बदले और भी दुबला और रोगी हो जाता है। अनेक माता पिता ओर स्वजन बच्चेको बड़े चावसे मिठाई ला लाकर खिलाते हैं। हम लोगोंमे यह बड़ी बुरी प्रथा है। बच्चेकी उम्र एक वर्षके करीब होते ही लोग हलुवा, पूड़ी, खस्ता, जलेबी, लड्डू ओर पेड़े बरफी आदि चीजें लाला कर खिलाने लगते हैं। शहरोंमे बच्चोंको प्रायः इन्हीं चीजोंसे कलेऊ कराया जाता हैं। बच्चोंको भी यह चीजें खानेकी

आदत पड़ जाती है, अतः बारंबार यही मागते है। लोग समझते हैं, कि बच्चेको यह चीजें अच्छी लगती हैं और इनमे घी व चीनी पड़ी है, अतः इनसे लाभ होगा, परन्तु यह भयानक भ्रम है। इन चीजोंको खिलानेसे बच्चोंकी पाचन शक्ति, उनका स्वास्थ्य और आदत—तीनों चीजें बिगड जाती हैं। इन चीजोंके अतिरिक्त जब देखिये तब बच्चोंकी जेब चनेचबेनेसे भरी रहती है और दिन भर चक्की-की तरह उनका मुँह चला करता है। रास्तेसे कोई फल या मेवेवाली निकलती है अथवा दरवाजेपर फेरिया कुलफी मलाईकी आवाज लगाता है, तो बच्चे मचल जाते हैं और उसे भी लिये बिना नही छोड़ते। सुबह शाम जब रसोई तैयार होती है, तब एक बार वे भूख भूख चिल्लाकर पहले ही खा लेते हैं, फिर बापजी खाने बैठे तो उनके साथ मा खाने बैठी तो उसके साथ और दादा दादी हुए तो उनके साथ भी वह थालीपर बैठे बिना नही रहते। घरमें कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं, जो यह जानते हुए भी कि बच्चा खा चुका है, उसे जबरन अपने साथ खिलाने बैठा-लते हैं। ऐसी अवस्थामे बतलाइये, बच्चोंका स्वास्थ्य और उनकी पाचनशक्ति कबतक अच्छी रह सकती है? निःसन्देह यह सब बातें बहुत ही बुरी हैं और प्रत्येक माता पिताको

इनपर पूरा पूरा विचार करना चाहिये। उन्हें यह कभी न भूलना चाहिये, कि अधिक खानेसे मनुष्य मोटा नहीं होता, बल्कि बीमार पड़ता है। बच्चेको नाना प्रकारके गन्दे आहार देकर उसे जीवन भरके लिये असहाय और भाग्यहीन बना देना बहुत ही निन्दनीय है।

बालक उतना ही हजम कर सकता है, जितना हजम करनेकी उसमें शक्ति होती है। यदि आहार उससे अधिक हो जाता है, तो शूल, वायुरोग, कम्पन और अशान्ति आदि बीमारियां हो जानेके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता।

यदि बच्चा बड़ा हो, तो खाना खानेके बाद जलसे उसका मुंह साफ करा देना चाहिये और यदि बहुत छोटा हो, तो उंगलीमें एक कपड़ा लपेट कर उसीसे भलीभांति पोंछ देना चाहिये। मुंहकी यह सफाई प्रत्येक आहारके बाद अथवा कमसे कम सुबह शाम दो बार अवश्य करनी चाहिये।

बच्चेका पाखाना—पहले बच्चेको काला और पतला पाखाना होता है। फिर वह बंधने लगता है और उसका रंग भी बदलने लगता है। साधारणतया बच्चोंको चौबीस घंटेमें कमसे कम दो बार और अधिकसे अधिक तीन या चार बार पाखाना होना चाहिये। जब हरे पीले और गाढ़े रंगका

पाखाना होने लगे अथवा अजीर्णका लक्षण दिखाई दे, तब बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये। यदि पाखानेमें दुर्गन्ध आती हो, तो एक चम्मच अंडीका तेल पिला देना चाहिये। बीच बीचमें हलका जुलाब और परिमित परिमाणमें नियमानुसार आहार देनेसे बच्चेका पाखाना नहीं बिगड़ने पाता। किन्तु किसी कारणसे जान अनजानमें यदि बिगड़ जाय, तो समझ लीजिये, कि उसके पेटके कल पुरजे खराब होगये हैं। इस अवस्थामें यदि घरेलू दवाओंसे लाभ न हो, तो बच्चेका जीवन बचानेके लिये तुरन्त उसकी चिकित्सा करानी चाहिये।

बच्चेका बिछौना—बच्चेका बिछौना हलका, मुलायम और गुदगुदा होना चाहिये और जब जब वह मलमूत्रके कारण खराब हो जाय, तब तब उसे बदलते रहना चाहिये। माता किंवा दाईकी लापरवाहीके कारण जब बच्चेका बिछौना साफ नहीं रहता, तब बहुधा उसका स्वास्थ्य खराब होजाता है। बच्चेके सभी कामोंका एक नियम बांध रखना चाहिये और उस नियमको कभी भंग न करना चाहिये। अनियमितताके कारण बच्चोंको बहुत ही असुविधा होती है और अनेक बार उनका स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है।

निद्रा—आरम्भमें, कई महीनोंतक बच्चेका अधिकांश समय सोनेमे ही बीतना चाहिये। यदि २४ घण्टेमेंसे वह २० घण्टे सोये तब भी बहुत नहीं है। इस अवस्थामें निद्रा ही उसके लिये सबसे बड़ी पौष्टिक दवा होती है। जितना ही वह सोता है, उतना ही हृष्टपुष्ट और शक्ति-सम्पन्न होता है, परन्तु यह निद्रा बिलकुल स्वाभाविक होनी चाहिये। बच्चेको अफीम आदि नशेकी चीजें या कोई मादक दवा खिलाकर कृत्रिम उपायसे सोनेके लिये मजबूर करना बहुतही बुरा है। अनेक मातायें अपने बच्चोंको सुलानेके लिये इस तरहके जो उपाय अवलम्बन करती है, उनकी जितनी ही निन्दा की जाय उतनी ही कम है। जिन लोगोंके यहां बच्चेकी माताके अतिरिक्त और कोई बच्चेको सम्हालनेवाला नहीं होता, जिन स्त्रियोंके शिरपर काम-काजका बहुत बोझा होता है और जो स्त्रियां अपनी जीविका चलानेके लिये कहीं मजदूरी या कोई काम करने जाती हैं, वे बहुधा इसी तरह अपने बच्चोंको सुलाया करती है, ताकि वह दीर्घकालतक नींदमें पड़ा रहे और उनके काममें किसी तरहकी बाधा न पड़े। हमने भले-भले घरों तककी स्त्रियोंको देखा है, कि वे बच्चोंको सुलानेके लिये अफीम घोल कर पिला देती हैं, ताकि उन्हे दूसरे काम करनेका समय

चित्र नं २७
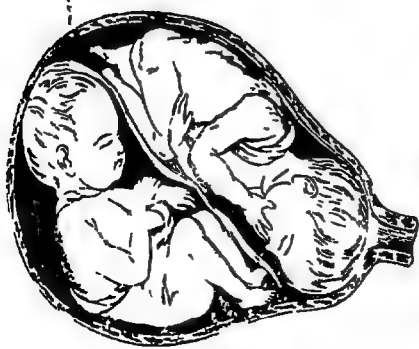
जोड़ बच्चे—एकका शिर और दूसरेके पैर नीचे हैं।

[देखो पृष्ठ २७५]

चित्र नं० २८

जोड़ बच्चोंका जन्म।

[देखो पृष्ठ २७५]

मिल सके, परन्तु यह प्रथा वहुत ही निन्दनीय और हानिकर है। अफीम वगैरह मादक चीजें ऐसी बुरी होती हैं, कि बड़े बूढ़ों तककी बुद्धि भ्रष्ट कर देती हैं, तब बच्चोंके सम्बन्धमें कहनाही क्या है? इससे उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति नष्ट हो जाती है, सभी यन्त्र समूह बिगड़ जाते हैं और कभी-कभी नशा अधिक चढ़ जाने या नशेके कारण कोई बीमारी हो जानेपर उनका शरीरान्त तक हो जाता है। अफीम चाहे थोड़ी हो, चाहे अधिक वह विष है। उसे बच्चोंको खिलाते समय मातापिताओंको सदैव स्मरण रखना चाहिये, कि हम अपने प्राणप्यारे बच्चोंको विष दे रहे हैं और इसका नतीजा अवश्य बुरा होगा।

यदि बच्चेको अच्छी तरह नींद न आती हो, तो सबसे पहले यह देखना चाहिये, कि उसे किसी तरहकी तकलीफ तो नहीं है। यदि कोई तकलीफ हो, तो उसे दूर कर देने पर आप ही आप नींद आ जायगी। सोनेका कमरा साफ-सूफ और हवादार होनेसे, बिछौना गुदगुदा और साफ होनेसे तथा बच्चेका शरीर साफ रखनेसे, उसे बड़ी जल्दी नींद आ जाती है।

बच्चोंकी आंखें अधिक रोशनी नहीं बरदास्त कर सकतीं, इसलिये उनकी आँखोंको तेज रोशनीसे बचाना

चाहिये, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है, कि उन्हें अन्धेरी कोठड़ीमें सुलाया जाय। यदि गरमीके दिन हों, तो बच्चेको खुली हवा अवश्य खिलानी चाहिये। उन दिनों घण्टे दो घण्टे उसे बगीचेमें या कहीं अन्यत्र खुली हवामें सुलानेसे बड़ा लाभ होता है। परन्तु यदि शीत या वर्षाके दिन हों और कोहरा या बदली हो तो बच्चेको बाहर कदापि न रखना चाहिये। इससे उसका स्वास्थ्य नष्ट होनेकी संभावना रहती है।

जबतक बच्चा बहुत छोटा हो, तबतक वह चाहे जागता हो चाहे सोता, उसकी पीठको अच्छी तरहसे आधार देना चाहिये। अच्छे बिछौनेपर चित्त सुलाना, अगल बगल आवश्यकतानुसार छोटे छोटे किन्तु गुदगुदे तकिये लगा देना, शरीरपर हलके और साफ कपड़े रखना, कुरते वगैरहके बन्धन या बटन ढीले कर देना, भीगे कपड़ोंको शरीर परसे उतार देना और शयनगृहमें काफी हवा व प्रकाशके आवागमनकी सुविधा रखना—यही बच्चोंको स्वाभाविक रीतिसे सुलानेके साधन हैं। इन बातोंके कारण बच्चोंको अच्छी और पूरी नींद भी आती है और उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। पालनेमें डालकर झुलाना या हाथमें लेकर हिलाना—यह बच्चोंको सुलानेकी अच्छी प्रथा नहीं

है। यह भी वाञ्छनीय नहीं है, कि बच्चा सारा दिन सोता ही रहे। दिनमें उसे थोड़ी देरतक इधर उधर घुमाना, उसके स्वास्थ्यके लिये परम लाभदायक है। क्षीण स्वास्थ्यवाले बच्चोंका तो इससे बहुत ही उपकार होता है।

यदि माता अपने बच्चेका हित चाहती हो, तो उसे उसपर हदसे ज्यादा दया या कोमलता न दिखानी चाहिये, अन्यथा अनुचित प्यारके कारण उसका स्वभाव खराब हो जाता है। मातापिताओंको यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये, कि कड़ाईसे बच्चोंको उतना नुकसान नहीं होता, जितना अनुचित प्यारके कारण होता है।

जब तक बच्चा छः सात वर्षका न हो जाय, तबतक दो पहरके समय उसे थोड़ी देरतक सोने या आराम करनेकी आदत अवश्य बनाये रखना चाहिये। नींद न आनेपर भी घड़ी दो घड़ी किसी शान्तिपूर्ण स्थानमें, जहां किसी प्रकारकी किचकिच न हो, प्रतिदिन आराम करनेसे उसके स्वास्थ्यमें आश्चर्यजनक वृद्धि होनेके अतिरिक्त उसकी शारीरिक गठन मजबूत और दृढ़ होती है, कि जिसके उपर उसके भावी जीवनका दारोमदार रहता है।

टीका—रजोदर्शनके समय स्त्रियोंको जो रक्तस्राव होता है वह विषाक्त होता है। गर्भ रहनेपर यह रक्त निकलना

बन्द हो जाता है और प्रकारान्तरसे गर्भको पोषण करनेमे काम आता है। कहते हैं, कि रक्तके साथ साथ वह विष भी बच्चेके शरीरमे प्रविष्ट हो जाता है और वही बादको शीतला या चेचकके रूपमें फूट निकलता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोने इस विषको शान्त करनेके लिये टीकेका आविष्कार किया है। टीका लगानेपर देखा गया है, कि बच्चोंको इतने जोरसे शीतलाकी बीमारी नहीं होती, कि उनके लिये घातक हो पड़े।

हमलोगोके यहां टीकाके सम्बन्धमें अभी बहुत अज्ञान फैला हुआ है। लोग यह नहीं जानते, कि टीका क्यों लगाया जाता है और इससे क्या लाभ होता है। अनेक लोग तो समझते हैं, कि इसमें सरकारका कोई स्वार्थ है और इसलिये वे टीका लगवानेसे इन्कार करते हैं। एक बार ऐसे ही एक मारवाड़ी सज्जन अपने मित्रोंसे कह रहे थे, कि सरकारसे किसीने कहा है, कि हिन्दुस्तानमे एक ऐसा लड़का पैदा होगा, जिसके शरीरसे खूनकी जगह दूध निकलेगा और वही सरकारका राज्य लेगा। इसीलिये सरकार प्रत्येक बच्चेको टीका लगाकर देखती है, कि उसके शरीरसे खून निकलता है या दूध? लाल बुझक्कड़की यह बात सुनकर उनके मित्र कहने लगे,—"हां साहब, आप

बहुत ठीक कहते हैं। हम अपने बच्चोंको अब टीका न लगवायेंगे—चाहे जो हो जाय !" बतलाइये, अज्ञानताका कहीं वारापार है ? यह तो एक साधारण उदाहरण है। अज्ञानी लोग न जाने ऐसी ऐसी कितनी बातें कहते हैं। परन्तु लोगोंको समझ रखना चाहिये, कि इन बातोंमें कोई तथ्य नहीं है। यद्यपि यह ठीक है, कि टीकासे उतना लाभ नहीं होता, जितना बतलाया जाता है, तथापि इससे कुछ न कुछ उपकार अवश्य होता है। अनेक वैज्ञानिक इसे हानिकर भी बतलाने लगे हैं, परन्तु जिस दिन यह बात चिकित्सक-संसार स्वीकार कर लेगा उस दिन यह प्रथा आप ही आप बन्द हो जायगी। अभी इसमें हानिकी अपेक्षा लाभ ही समझनेवालोंकी संख्या अधिक है और इसीलिये अभी इसका अच्छा प्रचार है।

कमसे कम जन्मके एक महीने बाद बच्चेको टीका लगाया जा सकता है। टीका लगानेपर करीब चौथे दिनसे उसका विष असर करने लगता है और नवें दिनतक फफोले उठते रहते हैं। जख्मोंकी खुजलाहट और विषकी प्रक्रियाके कारण बच्चेको पांचवे छठें दिन बहुधा ज्वर आ जाता है और कभी कभी बेचैनी भी बढ़ जाती है, परन्तु यह उपद्रव शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं, अतः किसी प्रकारकी

चिन्ता न करनी चाहिये। नवें दिनके बाद धीरे धीरे जलन घटने लगती है और शीघ्र ही जख्म भर जाते हैं। इस समय उनपर पट्टी लपेट रखनी चाहिये और यह देखते रहना चाहिये, कि बच्चा किसी फफोलेको नोचकर फोड़ न दे। बच्चेकी उम्र कुछ बड़ी होने पर भी टीका दिया जा सकता है, परन्तु उस समय उसे इतना ज्ञान रहना आवश्यक है, कि खुजलाहट और जलन उत्पन्न होनेपर वह उसे खुजला न दे। जिस समय बच्चेके दाँत निकल रहे हों, उस समय टीका लगवाना ठीक नहीं समझा जाता। जाड़ेके दिनोंमें टीका लगवानेसे अधिक कष्ट नहीं होता, इसलिये समझदार मातापिताओंको बच्चेका जन्म होनेके बाद पहले ही जाड़ेमें टीका लगवा कर इस कार्यसे निवृत्त हो जाना चाहिये।

बच्चेकी शरीर-वृद्धि—छठें सप्ताहके बाद बच्चा मुस्कुराने लगता है और तीसरे महीनेके बाद हँस सकता है। यद्यपि गरदन उठानेकी शक्ति उसमें तीसरे ही महीनेमें आ जाती है, परन्तु चौथे महीनेमें वह अपनी गरदन सीधी कर सकता है। तीसरे महीने तक रोते समय उसकी आंखसे आंसू नहीं निकलते। सातवें आठवें महीनेमें बच्चा खिसकने लगता है और जो निरोग होता है, वह विना किसी आधारके

कुछ समय तक बैठ भी सकता है। ग्यारहवें बारहवें महीनेमें वह किसी चीजके सहारे खड़ा होने लगता हैं और चौदहवें या पन्द्रहवें महीनेमे धीरे धीरे चलने लगता है। यदि कमजोरी या शारीरिक अस्वस्थताके कारण किसी बच्चेको इन कार्यों में देर लगे, तो चिन्ता न करनी चाहिये, क्योंकि उसकी शक्ति बहुत परिमित होती है और धीरे ही धीरे उसका विकास होता है। उसमें इतनी शक्ति नहीं होती, कि वह एक साथ ही अनेक कामोंमें उसे लगा सके। यही कारण है, कि जब उसके दाँत निकलने लगते हैं या वह खड़ा होना सीखने लगता है, तब उसके साथ ही साथ वह चलने या बोलनेमें भी अपनी शक्तिको नहीं लगा सकता। यद्यपि बहुतसे लड़के ऐसे होते हैं, कि जिनकी अनुकरण शक्ति बहुत प्रबल होती है और वे शीघ्र ही चलना फिरना व बोलना वगैरह सीख लेते हैं, परन्तु साधारण और खास कर अस्वस्थ प्रकृतिके बच्चोको यह सब सीखनेमें कुछ देर लगती है। यदि अपेक्षाकृत अधिक देर लगे, तो तुरन्त किसी चिकित्सकसे सलाह लेनी चाहिये।

नवजात शिशुके नेत्र इतने कोमल होते हैं, कि वह जरा भी रोशनी बरदास्त नहीं कर सकता। दूसरे सप्ताहसे वह रोशनीकी ओर देखने लगता है। चौथे महीनेमें उसकी

नजर अच्छी तरह ठहरने लगती है और छठे महीनेमें वह देखी हुई चीजोंको पहचानने लगता है। जन्म होनेके बाद २४ घण्टे और कभी कभी कई दिनोंतक बच्चोंको कुछ भी नहीं सुनाई देता। बादको यह शक्ति बढ़ते बढ़ते इतनी प्रबल हो जाती है, कि जरा सी आवाज होते ही वे जाग पड़ते हैं। तीसरे महीनेसे वे समझने लगते हैं, कि आवाज किस तरफसे आ रही है। आवाजको सुनते ही वे अपना शिर उठाकर उस ओर देखनेकी चेष्टा करते हैं।

पहले वर्षके अन्तमें बच्चा बोलनेकी चेष्टा करने लगता है। दूसरे वर्षके अन्तमें वह दो तीन शब्द तक साथ बोल सकता है। सबसे पहले वह अपने सगे सम्बन्धियोंके और बादको अन्यान्य चीजोंके नाम सीखता है। यदि दो वर्षकी उम्र तक बच्चा कुछ भी न बोले, तो किसी चिकित्सक द्वारा उपचार करना चाहिये।

दांत निकलना—बच्चोंके मुँहमें केवल २० ही दांत होते हैं। इन्हें "दूध" के दांत कहते हैं। यह सातवें महीनेसे निकलने लगते हैं और ढाई वर्षकी उम्रतक निकलते रहते हैं। पहले पहल नीचेके मसूढेमें और फिर ऊपरके मसूढ़ेमें दो दो दांत निकलते हैं। नवें दसवें महीनेमे इन दांतोंके दोनों ओर एक एक दांत और निकलता है। इसके बाद

नीचे और ऊपर, दोनों ओर एक एक दाढ़ निकलती हैं। इसी तरह दो वर्ष तक यह निकलते रहते हैं और जब बच्चेकी उम्र ढाई वर्षके करीब होती है, तब बीसों दांत पूरे हो जाते है। साधारणतया एक वर्षके बच्चेके ६, डेढ़ वर्षके बच्चेके १२, दो वर्षके बच्चेके १६ और ढाई वर्षके बच्चेके २० दांत होने चाहिये। यदि इस क्रममे बहुत अन्तर पड़े तो उसका कारण जानना आवश्यक है।

बच्चेका वजन—साधारणतया जन्मके समय बच्चेका वजन साढ़े तीन सेरके करीब होता है। पहले सप्ताहमे कभी कभी डेढ़ दो छटांककी कमी हो जाती है। दूसरे सप्ताहमें स्वस्थ बच्चोंका वजन ३ से लेकर ४ छटाक तक बढ़ता है। इसके बाद छः महीनेतक इसी नियमसे वृद्धि होती रहती है। छ. महीनेके बाद बच्चोंके दांत निकलते हैं अतः उस समय उन्हें बड़ा कष्ट होता हैं। कष्टके कारण कुछ वजन भी घट जाता है। परन्तु यह ठीक नहीं। माता पिताओंको समुचित परिचर्या द्वारा सदैव इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, कि बच्चेका वजन कुछ न कुछ बढ़ता रहे। दो महीनेके बच्चेका वजन साढ़े चारसे लेकर पांच सेरतक हो, तो उसे सन्तोषजनक समझना चाहिये। छठें महीनेमें जन्मके समयसे दूना और बारहवे महीनेमें साढ़े

पांचसे लेकर छः सेरतक होना चाहिये। बच्चोंकी खोपड़ीमें जो थोड़ी सी जगह खाली होती है और पुलपुलाया करती हैं, वह बहुधा अठारहवेंसे लेकर चौबीसवें महीने तक भर जाती हैं।

ऊंचाई—साधारणतया जन्मके समय बच्चेकी ऊंचाई २० इञ्चके करीब होती है। छठें महीनेमे २७ और बारहवें महीनेमें ३१ इञ्च ऊंचाईका होना सन्तोषजनक माना जाता है।

दण्ड—बच्चेकी उम्र कुछ बड़ी होनेपर यदि उसकी उद्दण्ड प्रकृतिके कारण उसे मारने धमकानेकी आवश्यकता पड़े, तो माताको स्वयं बच्चेको मारना या धमकाना चाहिये। यह नहीं, कि किसी किरायेकी दाई और नौकरपर यह भार छोड़ दिया जाय और वह हरवक्त उसे झकझोरता या चपत जमाता रहे। इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिये, कि घरका कोई भी आदमी भूत प्रेतकी कहानी या हौव्वाके झूठे भयसे बच्चेको भयभीत न किया करे। ऐसा करना बड़ी भारी निष्ठुरता है, क्योंकि इससे बच्चा "बुजदिल" हो जाता हैं। उसके सामने ऐसी बातें करो, जिससे वह "शेरदिल" हो, उसमें :निर्भीकता, धीरता और बलका सञ्चार हो। बच्चोको बारंबार मूर्ख, बेवकूफ, नालायक, और बदमाश वगैरह कहना भी बुरा है। इससे वह वास्तवमे

नालायक और बदमाश हो जाता है। यह एक साधारण नियम है कि, बच्चोंको बचपनमे जो शिक्षा दी जाती है, जो कुछ उनसे कहा या बतलाया जाता है, वही उनका ध्येय हो जाता है और उनकी प्रतिभा वहीं तक जाकर रुक जाती है। हमलोगोंके यहां बच्चोको "बबुवा" या "बाबू" कहा जाता हैं। माता पिता बड़े अभिमानके साथ कहते हैं, कि हमारा बेटा बाबू होगा। फलतः बच्चोंकी प्रतिभाका विकास "बाबूगीरी" की सीमामें ही पहुचकर रुक जाता है। यदि उनके सामने ऐसी बाते कही जाये, कि यह बड़ा विद्वान होगा, बड़ा व्यापारी या राजनीतिज्ञ होगा, तो वास्त-वमें वे वैसे हो सकते है। बच्चोंके सामने सर्वदा उच्च आदर्श ही रखना चाहिये, सर्वदा इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, कि वे महत्वाकांक्षी बने, क्योंकि महत्वाकांक्षा ही मनुष्यको उन्नतिपथपर ले जाया करती हैं।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि बच्चेको बुजदिल न बना-कर उसे निर्भीक और महत्वाकांक्षी बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह बात बच्चोके प्रति माता पिता और दाई वगैरहके आचरणपर निर्भर करती है। धन्य है वह माता और दाई, जो बच्चोके साथ बच्चेको तरह रहती हैं। ऐसी माताको पाकर बच्चा भी धन्य हो जाता है।

बच्चे अपनी चंचलताके कारण जितनी भूलें नहीं करते, उनसे अधिक वे अपने संरक्षकोंकी भूलोंके कारण किया करते हैं। खैर, बच्चोंको जब कुछ सजा देनी हो, तो खूब दृढ़ताके साथ परन्तु दम्भपूर्ण भावसे देनी चाहिये। कड़े दण्डसे बहुधा उलटा ही फल होता है, इसलिये अपराध गुरुतर होने पर भी अधिक मारपीट न करनी चाहिये। इससे बच्चोंका चरित्र, स्वभाव और स्वास्थ्य सब कुछ खराब हो जाता है। यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है, कि जरा जरासी बातके लिये बारंबार बच्चोंको मारने या धमकानेसे दण्डकी खूबी या ब्यूटी (Beauty) चली जाती है। ऐसा करनेपर फिर बच्चोंपर धाक नहीं रहती, क्योंकि मार खाते खाते और फजीहत सुनते सुनते वे उसके इतने आदी हो जाते हैं, उनमें उसे सहन करनेकी इतनी क्षमता आ जाती है, कि फिर वे उसकी परवाह ही नहीं करते। ऐसी अवस्थामे मातापिताओंका भी गौरव नष्ट हो जाता है और बच्चोंका भी अकल्याण होता है।

यदि बच्चा कोई भूल करे अथवा उसमे कोई दुर्गुण हो, और उसे सुधारना आवश्यक हो, तो उसके लिये उसे दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु ऐसे समय:मातापिताको चाहिये, कि वे आपेसे बाहर न हो जायँ, अन्यथा वे क्रोधके आवेशमें

विना सोचेसमझे अनुचित, कडा और आवश्यकतासे अधिक दण्ड दे सकते हैं।

दण्ड देनेके पहले बच्चे के अपराधके सम्बन्धमें अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिये। क्योंकि विना अपराधके अकारण ही दण्डित होनेपर, जो लडके कुछ समझदार होते हैं, उन्हें बहुत दुःख होता है। आज्ञा पालन और सच्चाई यही दो ऐसे महान् गुण हैं, जिनके ऊपर बालकके चरित्रकी भित्ति खड़ी होती है। अकारण दण्ड मिलनेसे न केवल इस भित्तिकी नींव ही कमजोर हो जाती है, बल्कि स्नेह और भक्ति आदि जो बालकोंके भूषण हैं, वह भी दूषणके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इसलिये मातापिताओंको चाहिये कि यदि बच्चेको दण्ड देना आवश्यक हो, तो खूब सोच समझ कर उसकी अवस्था, क्षमता और अपराधपर विचार करनेके बाद उचित परिमाणमें ही दण्ड दें। इस सम्बन्धमे बच्चोंको अन्याय करनेसे उनकी जीवन धारा पलट कर दूसरी ही ओर प्रवाहित होने लगती है और वह लाख चेष्टा करनेपर भी फिर ठीक नहीं होती।

मातापिताका कर्त्तव्य—आजकल बच्चोकी मृत्यु-संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है, कि चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है देशके हितचिन्तक इसे बड़ी चिन्ताकी दृष्टिसे देख रहे हैं।

समय समय पर सामयिक पत्रोंमे इस सम्बन्धकी चर्चा भी होती है, परन्तु हमे इससे जरा भी आश्चर्य नहीं होता। हम-लोगोंके यहां बच्चोंके लालन-पालनमे जितनी मूर्खतासे काम लिया जाता है, उसे देख कर आश्चर्य होता है, कि इसमें और भी वृद्धि क्यों नहीं होती? सन्तान-पालन कोई सहज काम नहीं है। मातापिताओंको चाहिये, कि अपना दायित्व समझकर पूर्ण सावधानी और यत्नके साथ बच्चेका पालन पोषण करें। इस बातको वे कभी न भूलें, कि बच्चेको भला या बुरा बनाना उनके अधिकारकी बात है। किसी अयोग्य सन्तानके कारण संसारमें हंसी होना—मातापिताके लिये बहुत ही लज्जा और दुःखकी बात है। स्मरण रखिये—बच्चे दो ही तरहसे खराब होते हैं—एक तो मातापिताकी वास्तविक लापरवाही, उदासीनता, मूर्खता और अज्ञानतासे तथा दूसरे जानबूझकर निर्दयता, दुष्टता और मूर्खता दिखलानेसे। दोनो दोष मातापिता चाहें तो दूर कर सकते हैं और अपने बच्चोंको योग्य बना कर इस मृत्युलोकमें ही स्वर्गीय सुख उपभोग कर सकते हैं।

२४

मनुष्यका शैशवकाल

मनुष्य और पशुपक्षियोंके शैशवकालमें बड़ा अन्तर है। पशु और पक्षियोंमें चलने फिरने और खाने पीनेकी स्वाभाविक वृत्तियां जन्मसे ही विकसित रूपमें मौजूद रहती हैं, परन्तु मनुष्यकी उन वृत्तियोंको विकसित होनेमे बहुत सा समय लगता है। पशुपक्षियोको यह वृत्तियां अपनी माताके संस्कारसे ही प्राप्त हो जाती हैं, परन्तु मनुष्यके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। उसमें सब वृत्तियां बीजरूपसे विद्यमान रहती हैं और उन्हें नानाप्रकारके उपायों द्वारा विकसित करनेकी आवश्यकता पड़ती है।

मुर्गीका बच्चा कठिन पीड़ाके साथ जन्म लेकर दम भरते ही घूम फिर कर आहारकी फिक्र करने लगता है। कबूतरका बच्चा जन्म लेते ही दूसरे कबूतरोंका फूदना

देखे बिना ही कूदकूदकर चलने लगता है। काकातुआका बच्चा भाई बहनोंके प्रति स्वाभाविक घृणाका भाव होनेके कारण जन्म होते ही उन्हें घोसलेसे खदेड़ देता है, जिससे खानेमे कमी न हो। सहज वृत्तिके ही संकेतसे टिटिहरीका बच्चा जन्मते ही कीड़ोंको चुनचुन कर खाने लगता है। पशुओमे भी न्यूनाधिक परिमाणमे यही बात पाई जाती है। सिंहके बच्चेको हाथसे नहीं खिलाना पड़ता। उसके मातापिता जो शिकार कर लाते है, उससे वह भी उसी तरह नोंच नोचकर मांस खाने लगता है, जिस तरह उसके माता-पिता खाते है। हरिणके बच्चेको कोई भागना नहीं सिखलाता। जन्म होनेके दूसरे ही तीसरे दिनसे वह ठीक उसी तरह चौकड़ी भरभर कर भागने लगता है, जिस तरह बड़े हरिण भागते हैं।

परन्तु मनुष्यकी अवस्था इससे भिन्न प्रकारकी है। उसे खाना पीना, बोलना चालना, चलना फिरना आदि सभी बातें सिखलानी पड़ती हैं। अनेक पशुपक्षी जन्मसे ही आत्मरक्षा करनेमे समर्थ होते है, परन्तु मानव शिशुकी यदि उसके मातापिता रक्षा न करे, तो उसे एक दिन भी प्राण धारण करना कठिन हो जाय। ऐसा क्यो होता है? पशु और पक्षियोंकी तरह मनुष्यके बच्चे भी इन शक्तियोंको

चित्र नं० ३१

दो शिरका अद्भुत बालक।

[देखो पृष्ठ २८१]

माताके गर्भसे ही लेकर क्यों नहीं भूमिष्ट होते? माता-पिताको उन्हें यह सब सिखलानेकी आवश्यकता क्यों पड़ती है?

वैज्ञानिकोंने इस बातका पता लगाया है। उन्होंने सिद्ध किया है, कि क्षुद्राकृति जीवोंसे ही क्रमशः विकास होते होते उच्च श्रेणीके सुन्दर और सुरूप जीवोंकी उत्पत्ति हुई है। मनुष्य अखिल प्राणी-समूहका सबसे श्रेष्ट और विकसित रूप है। उन्होंने प्राणी मात्रके जीवन और शैशव-कालकी आलोचना कर यह सिद्ध किया है, कि ज्यों ज्यों प्राणियोंकी बुद्धि विकसित होती जाती है, त्यों त्यों उनका शैशवकाल बढ़ता जाता है। इसी नियमके कारण जो प्राणी अधिक बुद्धिमान होते हैं—उनके बच्चोंकी सहज वृत्तिको विकसित होनेमें विलम्ब लगता है। मनुष्य सभी प्राणियोंमें सबसे अधिक परिणत बुद्धिका जीव है, इसीलिये उसके शिशुका शैशवकाल अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक स्थायी होता है।

मानव शिशुमें भी जीवन धारणके लिये दूध पीने, आत्म रक्षाके लिये रोने चिल्लाने और सुख तथा आरामका अनुभव करनेकी सहज वृत्ति जन्मसे ही पायी जाती है, परन्तु इतना होते हुए भी सभी प्राणियोंमें वही सबसे अधिक असहाय

और अक्षम होता है। यद्यपि माता पिताके संस्कारसे उसके शरीरमें कितनी ही शक्तियां जन्मसे ही विद्यमान रहती हैं, परन्तु वे बीजरूपमें होती हैं, अतः उनसे कोई कार्य नहीं लिया जा सकता न बच्चे में उनसे कार्य लेनेकी योग्यता ही होती है। इसीलिये माता पिताकी देखरेखके बिना उसका जीना असम्भव हो पड़ता है। यदि माता पिता या किसी दूसरेकी त्यागपूर्ण प्रेम-दीपिकासे उसका हृदय आलोकित नहीं किया जाता, तो उसका जीवन-प्रदीप बुझ जाता है। माता पिताकी इस छत्र-छायाके अतिरिक्त मानव-सन्तानको अपना जीवन-प्रदीप प्रदीप्त रखनेके लिये आजीवन अपने व्यक्तिगत अनुभवसे भी शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो प्रकृतिके निष्ठुर वारोंसे उसकी रक्षा नहीं हो पाती। कराल काल उसे निर्दयता पूर्वक अपनी चक्कीमें पीस डालता है। दुःखके भयंकर दावानलमें उसका शरीर झुलस जाता है और नाना प्रकारकी विडम्बनाओंके झकोरे उसके जीवन-प्रदीपको अकाल हीमें बुझा देते हैं।

ऐसी अवस्थामें माताका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वह शिशुका यत्नपूर्वक पालन पोषण करे, उसके सुख और आराम पर ध्यान रक्खे और उसकी समस्त

शक्तियोंको विकसित होनेमें सहायता दे, ताकि भविष्यमें वह सुयोग्य नागरिक हो सके और अपने माता पिताका मुख उज्ज्वल करते हुए उस परम पिताके प्रयत्नको सार्थक करे, जो सर्वदा उसकी कायाके साथ छायाकी तरह रहकर उसकी असहायावस्थामें रक्षा किया करते हैं। जो माता भलीभांति अपना यह कर्त्तव्य पालन करती है, उसका भी नारी-जीवन सार्थक और धन्य हो जाता है।

समुचित लालन पालन और शिक्षा दीक्षासे ही मनुष्यकी बुद्धि विकसित होती है। बुद्धि विकसित होनेपर उसे अपने दायित्व और कर्त्तव्यका ज्ञान होता है। कर्त्तव्यका ज्ञान होनेपर उसके जीवनमें स्थिरता आती है और स्थिरताके कारण उसे जीवन-संग्राममें सफलता मिलती है। यदि मातापिता समझदार होते हैं, तो वे अपने दायित्वको समझते हैं और जिस तरह होता है, अपने बच्चोंको उन्नत बनानेकी चेष्टा करते हैं। यदि उनकी इस चेष्टाके कारण बच्चोंको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान हो जाय और उनके जीवनमें स्थिरता आ जाय तो इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात उनके लिये और क्या हो सकती है?

मनुष्यको जीवन-संग्राममें सफलता प्राप्त करनेके लिये बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु इससे किसीको

ऊबना न चाहिये। श्रम ही जीवन है। जो श्रम नहीं करना चाहता, जो अकर्मण्यकी तरह जीवन विताना चाहता है, वह जीता हुआ भी मृतक तुल्य है। कर्मों के अन्तस्तलसे ही ईश्वर प्रदत्त शक्ति प्रकट होती है। कर्मसे ही ईश्वर मनुष्यके शरीरमें स्वर्गीय जीवन-तत्व प्रवाहित करता है। जो कर्म नहीं करते, वह उससे वञ्चित रह जाते हैं। उन्हें ईश्वरसे कुछ मागनेका भी अधिकार नहीं रहता, क्योंकि कर्म करनेपर ईश्वर विना मागे ही मनुष्यको उसका प्रति-दान देता है। जो उसे निर्दय, निष्ठुर और उदासीन कहते हैं, वे अवोध हैं। यदि वह प्रेम और दयामय न होता, तो माताओंको सन्तानरूपी प्रेमकी ज्योति कहांसे मिलती? माताओंको चाहिये, कि वे इस वातपर ध्यान रख, कर्त्तव्य-पालनसे स्वप्नमें भी विमुख न हों, निःस्वार्थ और त्याग-पूर्ण भावसे अपने हृदयका रक्त देकर—अपने शरीरका क्षय करके शिशुका तनमनसे पालन करें। अपने मनमें वे यह विचार भी न आने दें, कि उनका श्रम निष्फल जायगा। जिस प्रकार अच्छे खेतमे उत्कृष्ट बीज वोने और समुचित परिचर्या करने पर कृषक मनमानी फसल काटता है, उसी तरह नियमानुसार आचरण करनेसे मनचाही सन्तानकी प्राप्ति होती है। ईश्वरके दरबारमे किसीका परिश्रम निष्फल

नहीं जाता। जो जैसा करता है, वैसा उसे अवश्य मिलता है।

"राम झरोखे बैठि कै, सबका मुजरा लेहिं।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसा देहिं॥"

समाप्त

क्या आप सुखी हैं ?

यदि नहीं तो अवश्य पढ़िये—

दुःखी जीवनको सुखी बनानेवाली एक अनूठी पुस्तक

दाम्पत्य-विज्ञान

दाम्पत्य-विज्ञान विवाहित स्त्री पुरुषोंके जीवनको सुखी बनानेकी कल है। आजकल भारतवासियोंका विवाहित जीवन बड़ा ही दुःखमय हो रहा है। जबतक विवाह नहीं होता, तबतक लोग समझते हैं, कि विवाह होनेपर आनन्दसे रहेंगे और मौज करेंगे, परन्तु विवाह होते ही उनकी इस आशा पर पानी फिर जाता हैं और मनकी मनहीमें रह जाती हैं। क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है, कि ऐसा क्यों होता है ? जो विवाह सुखके लिये किया जाता है वह दुःखका कारण क्यों हो पड़ता है ? यदि नहीं तो सुनिये :—

विवाह होनेके पहले जिस समय लोग किशोरावस्थामें पदार्पण करते हैं, उस समय बहुतोंको हस्त-मैथुन आदिकी बुरी आदतें लग जाती हैं और बहुतोंको स्वप्नदोष तथा वीर्यस्राव प्रभृति बीमारियां घेर लेती हैं। लोगोंका इन बातोंका नतीजा पहलेसे नहीं मालूम होता। विवाह होने

पर उन्हें सूझ पड़ता है, कि हमने अपना सर्वनाश कर लिया है। इस तरह बहुतोंका जीवन विवाह होनेके पहले ही दुःख-मय हो जाता है और बहुतोंका विवाह होनेके बाद। विवाह होने पर अति विहारके कारण इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं। यौवन और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। किसीको एकके बाद एक—अनेक सन्तानें उत्पन्न होती हैं, किसीको एक भी नहीं होती। किसीको कन्या ही कन्यायें, किसीको दीन-हीन और दुर्बल, किसीको कानी कुबड़ी और कुरूप तथा किसीको अल्पायु सन्तानोंकी प्राप्ति होती है—एक ओर लड़के उत्पन्न होते हैं और दूसरी ओर मरते जातेहैं। ऐसी अवस्थामें कोई अपनेको सुखी कैसे कह सकता है?

दाम्पत्य-विज्ञान ऐसे ही दुःखसे दुःखित मनुष्योंको दुःख मुक्त करनेका साधन है। इसमें वह बातें बतलाई गयीं हैं, जो न तो माता पिता ही बतलाते हैं, न स्कूलमें ही पढ़ाई जाती है और न कोई डाक्टर या वैद्य ही बतलाता है। समूची पुस्तक गुप्तज्ञानसे भरी हुई है। कुल चौदह अध्याय हैं—(१) किशोरावस्था और यौवन (२) ब्रह्मचर्य (३) हस्त मैथुन (४) वीर्यस्राव (५) विवाह (६) शयनगृह (७) प्रेमोपचार (८) सहवास किंवा गर्भाधान (९) सहवास करनेवालोंकी अवस्था (१०) ऋतुकाल (११) सहवासका समय (१२) अतिविहार (१३) वंशवृद्धि और (१४) उत्तम सन्तान।

यद्यपि उपरोक्त अध्यायोंका विषय उनके नामसे ही जाना जा सकता है, तथापि यह बतला देना आवश्यक है, कि प्रत्येक अध्यायमें विवाहकी इच्छा रखनेवाले और विवाहित स्त्री पुरुषोंके जानने योग्य सैकड़ों बातें लिखी गयी है। बाल्यावस्थासे लेकर तरुणावस्था तककी प्रत्येक बातपर विचार किया गया है और अन्तमें यह बतलाया गया है, कि दाम्पत्य-जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है। इस पुस्तकको मँगाकर एक बार पढ़नेसे आप दुर्व्यसन और व्याधियोंसे छुटकारा पा सकेंगे, सहवास किंवा गर्भाधानके तरीके जान सकेंगे, इच्छानुसार कम या अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकेंगे और बच्चोंको सुन्दर सुशील व रूपवान तथा अपने यौवन और स्वास्थ्यको चिरस्थायी बना सकेंगे। आपका दुःखी जीवन सुखमय हो जायगा और आप इस मृत्युलोकमें ही स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगेंगे। हम एक बार फिर आपसे पूछते हैं, कि क्या आप सुखी हैं? यदि नहीं तो आज ही मँगाइये; सुन्दर सुनहली रेशमी जिल्दकी दलदार पुस्तकका मूल्य केवल २) डाक खर्च ।=) पुस्तक किशोर और किशोरीके हाथमें देने लायक है। देखिये इसके सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध पत्र पत्रिकायें और विद्वान लोग क्या कहते हैं:—

(१)

"पुस्तक दाम्पत्य-विज्ञानकी प्रवेशिका स्वरूप है।

लेखकने बड़ी शिष्ट और सुबोध भाषामें अपने लेख्य विषयका प्रतिपादन किया है। यह पुस्तक नवयुवकोंके— उन नवयुवकोंके लिये जो वयः सन्धिमें पदार्पण कर चुके हैं, जिनमे नैतिक दृढ़ता, विचार परिपक्वता नही आई और जो मानव-कमजोरियोंके सरल शिकार बन रहे हैं—बड़ी उपयोगी होगी। पुस्तकमें दाम्पत्य-विज्ञान सम्बन्धी प्रायः सब बातें आ गई हैं। सन्तान-वृद्धि-निग्रहकी बात भी पुस्तकमें हैं। वैसे यह साहित्य कई अंशोंमें आपत्ति-जनक होता है, किन्तु यहां ऐसी सुन्दरता और खूबीके साथ है, कि उससे हानि होनेकी संभावना नहीं। छोटे बड़े सब पढ़ सकते हैं। आवश्यकतानुसार प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंके मतोंका भी अच्छा निरूपण किया गया है।"

'प्रताप' ता० ६ मार्च १६२५

(२)

यह पुस्तक विवाहित और विवाहेच्छुक स्त्री पुरुषोंके लिये लिखी गयी है। सम्प्रति भारतवासियोंका दाम्पत्य-जीवन बड़ा ही दुःखमय और विशृङ्खलित हो रहा है। सर्वत्र बाल विवाहकी प्रथा प्रचलित है। इसके फल स्वरूप स्वल्प कालमें ही अनेक सन्तानोंसे घर भर जाता है, किन्तु विवाहकी उचित अवस्था और सहवासके प्राकृतिक नियम आदिका ज्ञान न होनेके कारण जो सन्तान उत्पन्न होती हैं, वह चिररोगिनी, अल्पायु, निस्तेज़ दीनहीन और

अकर्मण्य होती है। इस पुस्तकमें इन्हीं सब बातों पर विचार किया गया है। विषय बहुत बड़ा और गहन होने पर भी लेखकने आवश्यक बातें बतलानेमें किसी प्रकारकी कसर नहीं रक्खी। पुस्तकको शिष्ट भाषामें लिखनेकी जो चेष्टा की गई हैं, वह सर्वथा सराहनीय है।"

—'मतवाला' ता० २० दिसम्बर १९२४

(३)

"हम समझते हैं, कि हिन्दी भाषामें इस प्रकारका व्यवस्थित सर्वाङ्ग सुन्दर और सम्पूर्ण प्रयास यह पहला ही है। पुस्तककी भाषा, लेखनशैली और उसमें अंकित किये हुए विचार बहुत ही रोचक और हितावह है। दम्पत्ति शास्त्रकी अनेक पुस्तकोंको पढ़कर तथा प्रस्तुत शास्त्रकी कितनी ही अनुभव गम्य बातोका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेखकने हाथमें 'लेखनी ली हो—ऐसा पुस्तकके कुछ पन्ने पढ़नेपर भास होता है। जैसा अंतरंग है वैसा ही बहिरंग है। उत्तम एण्टिक कागज, सुन्दर छपाई और उससे भी बढ़िया बाइण्डिङ्ग तथा जिल्द पर पुस्तक व उसके लेखकका स्वर्णाक्षरोंमें अंकित नाम—यह सब देख, पुस्तक हाथमें लेकर देखनेकी इच्छा हो आती है। लेखन और प्रकाशन विषयक श्रम एवम् अर्थव्यय देखते हुए पुस्तकका दो रुपया मूल्य भी उचित प्रतीत होता है।"

—'रसज्ञ-रंजन' (गुजराती साप्ताहिक) ता० २८-३-२५

(४)

"हर्ष का विषय है कि दिन प्रतिदिन हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धि हो रही है और लगभग सभी विषयोंपर उत्तमोत्तम और उपयोगी पुस्तकें निकलने लग गई हैं। कामशास्त्र और दाम्पत्य-विज्ञान जैसे महत्वपूर्ण और उपयोगी विषय-की पुस्तकें हिन्दी साहित्यमें अभी नहीं बराबर थीं, परन्तु मिश्रजीने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर किसी हदतक इस अभावकी पूर्ति की है। इस पुस्तकमें किशोरावस्था और यौवन, ब्रह्मचर्य, विवाह, गर्भाधान, ऋतुकाल, वंशवृद्धि और उत्तम सन्तान आदि विषयों पर बहुत ही उत्तमरीतिसे प्रकाश डाला गया है। भाषा इसकी खूब ही सरल एवम् सुबोध है। यह पुस्तक प्रत्येक नरनारीको अवश्य पढ़ना चाहिये, क्योंकि गृहस्थीको सुखमय बनानेके लिये दाम्पत्य-विज्ञानका जानना परम आवश्यक है। इसकी रेशमी और सुनहरी जिल्द पुस्तककी शोभाको और भी बढ़ा देती है। कागज और छपाई सफाई भी बढ़िया है। पुस्तक हर प्रकारसे अपनाने योग्य है।"

—'आर्य जगत्' ता० ३ अप्रैल १९२५

(५)

"यह पुस्तक दाम्पत्य-ग्रन्थावलीका प्रथम पुष्प है। इसमें किशोरावस्था, यौवन, ब्रह्मचर्य, हस्त मैथुन, वीर्यस्राव विवाह, शयनगृह, प्रेमोपचार, गर्भाधान, उत्तम सन्तान

इत्यादि नामक विषय दिये गये हैं। पुस्तक बहुत अच्छे ढंगसे लिखी गई हैं। नवयुवकों तथा नवयुवतियोंके लिये बड़ी उपयोगी हैं। पुस्तकको विशेषता यह है, कि प्रत्येक विषय पर इस प्रकार लिखा गया है, कि अश्लीलताकी झलक तक नहीं आने पाई है।" —हिन्दी मनोरंजन, मार्च १९२५

(६)

"यह ग्रन्थ कुमार कुमारियों तथा विवाहित स्त्री पुरुषोंके लिये बड़ी उपयोगी हैं। आजकल भारतमे झूठी शरमके कारण लोग अपनी सन्तान और शिष्योंको उनके गुप्तेन्द्रियों सम्बन्धी ज्ञान तथा उपदेशसे जो अनभिज्ञ रखते हैं, वह बड़ा भारी पाप करते हैं। इस पुस्तकके प्रचारसे युवक मण्डलको एक सच्चो विज्ञानी पिता या गुरुके समान हितकारी उपदेशक मिलेगा। हम चाहते हैं, कि प्रत्येक विद्यार्थी तथा उसके मातापिता इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें।"

—आत्माराम अमृतसरी ('विज्ञापक' दिसम्बर १९२४)

(७)

"आपका दाम्पत्य विज्ञान वेशक एक लाभदायक पुस्तक है। मैं यह खुले दिलसे कह सकता हूँ, कि इसकी एक प्रति प्रत्येक व्यक्तिको रखना चाहिये। मैं अपने लिये तो इसे "Key to success in life" ही समझता हूँ। इसका जितना ही प्रचार होगा उतना ही संसारका उपकार होगा।" —वैद्नारायण प्रसाद, लाल्टुड ेण्ट बाढ-पटना

छप रही हैं !　　　　　　　　छप रही हैं !

शीघ्र प्रकाशित होंगी

दाम्पत्य-ग्रंथावलीकी निम्नलिखित

चार पुस्तकें !

१—काम-विज्ञान

आजकल बाजारमें कोकशास्त्रके नामसे खूब लूट हो रही है। विज्ञापन बाजीके सहारे भोलेभाले लोग खूब ठगे जा रहे हैं। उनके हाथमे 'कोकशास्त्र' के नामसे जो पुस्तकें पहुचती हैं, वे सारहीन, गन्दी और कुमार्गकी ओर ले जाने-वाली होती हैं। उन लोगोको उनमें एक भी बात ऐसी नहीं मिलती, जिससे उनका कुछ वास्तविक उपकार हो। लोग काम-विज्ञानको जाननेकी इच्छा करते हैं, परन्तु उन्हे ऐसा कोई साधन नहीं मिलता, जिससे वे अपनी यह इच्छा पूर्ण कर सकें। हमने यह अभाव दूर करनेके लिये वात्स्यायन मुनिके कामसूत्र, कोका पण्डितके कोकशास्त्र किंवा रतिरहस्य तथा पञ्चशायक, रति मञ्जरी आदि संस्कृत और अन्यान्य भाषाओकी अनेकानेक पुस्तकोंके सहारे यह काम-विज्ञान लिखवा कर प्रकाशित करनेका

आयोजन किया है। इस पुस्तकको कामशास्त्रका निचोड़-कहना चाहिये। प्राचीन कालसे लेकर अबतक काम विज्ञानके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, वह सभी इस पुस्तकमें संग्रहीत है। पुस्तक अप-टु-डेट, शिक्षाप्रद और उपादेय है। प्रत्येक गृहस्थको इसकी एक प्रति अपने घरमें अवश्य रखना चाहिये। मूल्य करीब ३) रेशमी जिल्द ३॥) पुस्तक आधीके करीब छप गयी है।

२—नारी-जीवन

यह पुस्तक एक विख्यात अंग्रेजी पुस्तकके सहारे लिखी गयी है। विवाहिता स्त्रियोंको अपना स्वास्थ्य और यौवन किस तरह सुरक्षित रखना चाहिये—यह इसमे बहुत ही सरल और सुबोध भाषामें उत्तम रीतिसे अंकित किया गया है। साधारण अवस्थामें, रजोदर्शनके समय, गर्भावस्थामे, प्रसवके समय और जिस समय बच्चा दूध पी रहा हो, उस समय किन नियमोंका अवलम्बन करने या किस प्रकारका आहार विहार रखनेसे स्त्रियोंका कल्याण हो सकता है, यह जानना हो तो इसे पढ़िये। स्त्रियोंके लिये यह बड़े ही कामकी चीज हैं। मूल्य करीब २) सजिल्द २॥)

३—मनचाही सन्तान

यह पुस्तक अर्वाचीन वैज्ञानिकोंकी खोजके अनुसार लिखी गयी हैं। इसमें यह बतलाया गया है, कि सन्तान

पैदा करना मनुष्य हीके अधिकारकी बात है। मनुष्य चाहे तो केवल लड़के ही लड़के या केवल लड़कियां ही लड़कियां पैदा कर सकता है। वह चाहे तो दर्जनों और चाहे तो दो ही चार बच्चे पैदा कर सकता है। भली या बुरी; दुर्गुणी या गुणवान—चाहे जिस तरहकी सन्तान पैदा करना भी मनुष्य ही के अधिकारकी बात है। पुस्तक ऐसे ढँगसे लिखी गयी है, कि प्रत्येक मनुष्य इसमें बतलाये हुए नियमोंके अनुसार आचरण कर चाहे जितनी संख्यामें मन-चाही सन्तान उत्पन्न कर सकता है। मूल्य करीब २) सजिल्द २॥)

४—सन्तान-पालन

यह पुस्तक तीन खण्डोंमें विभक्त है। पहले खण्डमें शैशवावस्था, दूसरेमें बाल्यावस्था और तीसरेमें किशोरावस्थाका वर्णन है। किस अवस्थामें बच्चोंका किस प्रकार लालन पालन करना चाहिये, किस तरह उन्हें स्वस्थ और हृष्टपुष्ट बनाना चाहिये, किस तरह शिक्षा देनी चाहिये—आदि बातें इस पुस्तकमें बहुत ही अच्छे ढँगसे लिखी गयी हैं। पुस्तकके अन्तमें एक अध्यायमें यह भी बतलाया गया है कि बच्चोंको किस अवस्थामें किस प्रकार काम-विज्ञानकी शिक्षा देनी चाहिये, ताकि वे किसी दुर्गुणके शिकार न हो

और उचित अवस्थामें, उचित ढंगसे इस विषयकी उचित शिक्षा प्राप्त कर सकें। मूल्य करीब २॥) सजिल्द ३)

यह सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकोंको पौने मूल्यमें मिल सकेंगी।

मिलनेका पता—

पाठक एण्ड कम्पनी

१२।१ चोरबगान लेन—कलकत्ता।